Impact Factor-8.632 (SJIF) ISSN-2278-9308

B.Aadhar

Single Blind Peer-Reviewed & Refereed Indexed

Multidisciplinary International Research Journal

December - 2023

(CDXLVI) 451

आजादी के ७५ वर्ष : हिंदी भाषा, साहित्य, एवं पत्रकारिता चिंतन और चुनौतियाँ

Chief Editor
Prof. Virag S. Gawande
Director
A. S.R. & D.T. I.
Amravati

Executive Editor
Dr. Pradeep Patil
I/C Principal

Editor
Dr. Bhagwan kadam
Dept. of Hindi,

Co-Editor
Dr. Jafar Choudhari
Hod dept.of Hindi,

Master Deenanath Mangeshkar College Aurad Shahajani
Tq.Nilanga Dist Latur,

This Journal is indexed in :
- Scientific Journal Impact Factor (SJIF)
- Cosmos Impact Factor (CIF)
- International Impact Factor Services (IIFS)

For Details Visit To : *www.aadharsocial.com*

Aadhar Publications

Impact Factor – (SJIF) –8.632 **ISSN – 2278-9308**

B.Aadhar

Single Blind Peer-Reviewed & Refereed Indexed

Multidisciplinary International Research Journal

December-2023

(CDXLVI) 451-A

आजादी के ७५ वर्ष : हिंदी भाषा, साहित्य, एवं पत्रकारिता चिंतन और चुनौतियाँ

Prof. Virag.S.Gawande
Chief Editor
Director
Aadhar Social Research &, Development Training Institute, Amravati.

Dr. Pradeep Patil
Executive Editor

Dr. Bhagwan Kadam
Editor

Dr. JAFAR CHOUDHARI
Co- EDITOR

Master Deenanath Mangeshkar College, Aurad Shahjani Tq. Nilanga Dist Latur,

Aadhar International Publication
For Details Visit To : **www.aadharsocial.com**
© **All rights reserved with the authors & publisher**

यशवंतराव चव्हाण महाराष्ट्र मुक्त विद्यापीठ
(महाराष्ट्र शासनाने वर्ष १९८९ मध्ये स्थापिलेले)
ज्ञानगंगोत्री, गंगापूर धरणाजवळ, गोवर्धन, नाशिक- ४२२२२२
दूरध्वनी : कार्यालय (०२५३) २२३१७१४/१५, २२३०२२७, २२३०४५९, २२३००२४/२५/२७/२८

जा.क्र.पी.व्ही.सी./2023
दिनांक : १८.१२.२०२३

शुभकामनाएँ !

मास्टर दीनानाथ मंगेशकर महाविद्यालय महाराष्ट्र की सीमा पर स्थित महाविद्यालय है। महाराष्ट्र, कर्नाटक के छात्रों में शिक्षा के संस्कार तथा मूल्य स्थापित करने का कार्य महाविद्यालयद्वार किया जा रहा है। प्रस्तुत महाविद्यालयमें. ३० दिसंबर २०२३ को **"आजादी के ७५ वर्ष : हिंदी भाषा, साहित्य एवं पत्रकारिता चिंतन और चुनौतियाँ"** विषयपर राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया है। संगोष्ठी के लिए मैं बहुत-बहुत शुभकामनाएँ देता हूँ।

किसीभी राष्ट्रको मुफ्त में आजादी नहीं मिलती, अपने सामर्थ्य के बलपर प्राप्त करनी होती है। साहित्य जनमानसके मनमें चेतना प्रज्वलित करता है। स्वाधीनता आंदोलन के समय साहित्यकारों ने जनमानस के मन में चेतना प्रज्वलित की। आजादी का अमृत महोत्सव संपन्न हुआ इस अवसर पर आयोजित यह संगोष्ठी सार्थक सिध्द होगी। प्रस्तुत संगोष्ठी में संसाधन महानुभाव तथा आलेख वाचकोंद्वारा दिए गए सुझाव समाज तथा राष्ट्र के लिए लाभदायक सिध्द होंगे यह विश्वास है।

मैं पुनश्च संस्था की प्रबंधन समिति, प्रधानाचार्य, संयोजक तथा हिंदी विभाग को हृदय से साधुवाद देता हूँ।

भवतु सब्ब मंगलम्।

(डॉ. जोगेंद्रसिंह बिसेन)
प्र- कुलगुरू

शुभेच्छा संदेश

मुझे यह जानकर अति प्रसन्नता हुई है कि मास्टर दीनानाथ मंगेशकर महाविद्यालय, औराद (शाहजनी) जिला लातूर , महाराष्ट्र के हिंदी विभाग और भारतीय सामाजिक शास्त्र अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली के संयुक्त तत्वावधान में "आजादी के 75 वर्ष : हिंदी भाषा, साहित्य एवं पत्रकारिता चिंतन और चुनौतियाँ" इस विषय पर एक दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया जा रहा हैं। मुझे यह जान कर और भी हर्ष हो रहा है कि इस अवसर पर संगोष्ठी में प्राप्त शोध आलेखों का प्रकाशन स्मरणिका के रूप में आयोजकों द्वारा किया जा रहा हैं। इस स्मरणिका में संकलित सभी लेख विद्यार्थियों, शोधार्थियों तथा प्राध्यापकों के लिए उपयोगी होंगे, समय की चुनौतियों पर तो खरे उतरेंगे ही, शोधार्थियों के मार्गदर्शन के लिए भी मील का पत्थर साबित होंगे। इसके लिए मैं अपनी शुभकामनाएं प्रेषित करता हूं। महाविद्यालय के सभी प्राध्यापक गण का भी आभार व्यक्त करता हूं कि जिन्होंने मुझे इस यादगार संगोष्ठी में बीज वक्ता के रूप में आमंत्रित किया।

सादर

रत्नकुमार साभारया
C-137, महेश नगर
जयपुर, राजस्थान
संपर्क: 9636053497

शुभेच्छा संदेश...

हमारे मास्टर दीनानाथ मंगेशकर महाविद्यालय के हिंदी विभाग और भारतीय समाजशास्त्र अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली के संयुक्त तत्वावधान में होने जा रही "आजादी के 75 वर्ष : हिंदी भाषा, साहित्य एवं पत्रकारिता चिंतन और चुनौतियां " इस राष्ट्रीय संगोष्ठी को मैं हार्दिक बधाई देता हूं। प्रस्तुत संगोष्ठी एक महत्वपूर्ण शैक्षिक उपक्रम है। इस संगोष्ठी में अनेक राज्य के विभिन्न विश्वविद्यालय से आने वाले शिक्षाविद, साहित्यकार,प्राध्यापक और शोधार्थी हिंदी भाषा, साहित्य और पत्रकारिता पर अपना मौलिक चिंतन शोध पत्र के रूप में प्रस्तुत करेंगे।

इस राष्ट्रीय संगोष्ठी में विविध विषयों पर गहन तथा सार्थक चर्चा होगी ।जो हिंदी भाषा और साहित्य की श्री वृद्धि के लिए भी लाभदायक सिद्ध होगी ऐसा मुझे विश्वास है। इस अवसर पर प्राप्त शोधालेखों का का प्रकाशन करने की जो योजना बनाई है। वह अत्यंत प्रशंसनीय है। अतः संगोष्ठी के आयोजक, प्राचार्य और हिंदी विभाग के सभी प्राध्यापक गण और संपादक मंडल का मैं अभिनंदन करता हूं। और इस एकदिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी के आयोजन में जुड़े सभी को हार्दिक बधाई एवं शुभकामनाएं देते हुए, संगोष्ठी की सफलता के लिए शुभकामनाएं देता हूं।

मा.श्री बस्वराज विश्वनाथराव वलांडे
अध्यक्ष,
शारदोपासक शिक्षण संस्था,
औराद, शहाजनी ता निलंगा, जिल्हा लातूर, महाराष्ट्र

शुभेच्छा संदेश ...

हमारे महाविद्यालय के हिंदी विभाग और भारतीय समाजशास्त्र अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली के द्वारा तिथि 30 दिसंबर 2023 को आयोजित एकदिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी से संबंधित हमारे महाविद्यालय के प्रभारी प्राचार्य ,हिंदी विभाग के प्राध्यापक तथा महाविद्यालय के सभी कर्मचारियों को मैं हार्दिक बधाई देता हूं।

इस राष्ट्रीय संगोष्ठी में हिंदी भाषा, साहित्य और पत्रकारिता पर अपने विचार व्यक्त करने वाले, देश के अलग-अलग शहरों से पधारे साहित्यकार, शिक्षाविद, प्राध्यापक और शोधार्थियों का मैं हार्दिक स्वागत करता हूं। शारदोपासक शिक्षण संस्था की ओर से मै इस राष्ट्रीय संगोष्ठी के सफल आयोजन और ग्रंथ प्रकाशन के लिए अपनी ओर से अग्रिम शुभेच्छा देता हूं।

मा. श्री रमेश बगदुरे
सचिव
शारदोपासक शिक्षण संस्था, औराद शहाजनी

प्राचार्य जी का संदेश

'तमसो मा ज्योतिर्गमय' यह ब्रीद लेकर श्रद्धेय स्व. मुकुंददास जी बियाणी, स्व. विश्वनाथराव वलांडे गुरूजी, स्व.बसवणप्पाजी आग्रे, स्व.दौलतगीर महाराज, और किशनलाल शर्मा आदि महानुभावों ने इ.स.1956 में शारदोपासक शिक्षण संस्था की स्थापना कर महाराष्ट्र और कर्नाटक की सीमा पर स्थित देहाती छात्रों को शिक्षा के प्रवाह में लाने के लिए के.जी. से लेकर पी.जी. तक के शिक्षा की व्यवस्था औराद शहाजानी इस सीमांतक गांव में कियी। इस क्षेत्र के ग्रामीण गरीब और होनहार छात्र उच्च शिक्षा से दूर ना रहे इसीलिए संस्थान 1970 में महान कलाकार 'मास्टर दीनानाथ मंगेशकर' 'जी के नाम से मास्टर दीनानाथ मंगेशकर महाविद्यालय का प्रारंभ किया। शरदोपासक शिक्षण संस्था के अंतर्गत हमारे महाविद्यालय के साथ ही एक प्राथमिक, एक माध्यमिक और एक तंत्रज्ञान महाविद्यालय इस ग्रामीण इलाके में ज्ञान दान का कार्य लगन और मेहनत से कर रहे हैं।

हमारा महाविद्यालय स्वामी रामानंद तीर्थ मराठवाड़ा विश्वविद्यालय, नांदेड़ से संलग्न है। जो ग्रामीण क्षेत्र में कार्यरत एक नामांकित महाविद्यालय के रूप में अपनी पहचान विश्वविद्यालय स्तर पर बन चुका है। नॅक समिति बेंगलुरु द्वारा महाविद्यालय का अब तक मूल्यांकन तथा पुनर्मूल्यांकन हो चुका है। दूसरे पुनर्मूल्यांकन में महाविद्यालय को बी+ (सी.जी.पी.ए.2.74) श्रेणी प्राप्त हुई है। शैक्षिक वर्ष 2016-17 में हमारे महाविद्यालय को ग्रामीण क्षेत्र का 'उत्कृष्ट महाविद्यालय' यह पुरस्कार देकर स्वामी रामानंद तीर्थ मराठवाड़ा विश्वविद्यालय, नांदेड़ द्वारा पुरस्कृत किया गया है। सन 2022-23 इस शैक्षिक वर्ष में महाविद्यालय की दो छात्राओं ने विश्वविद्यालय की परीक्षाओं में सर्वोच्च अंक हासिल कर महाविद्यालय की परंपरा को बरकार रखा है। महाविद्यालय में बी.ए., बी.कॉम., बी.सी.ए. इन स्नातक स्तरीय शिक्षा के साथ-साथ एम.ए., एम.कॉम, और एम.एस.सी.एस.ई. तक की स्नातकोत्तर शिक्षा की भी व्यवस्था उपलब्ध है। महाविद्यालय हर साल राष्ट्रीय और राज्य स्तरीय संगोष्टियां,कार्यशालाएं और व्याख्यान मालाओं का सफलतापूर्वक आयोजन करता आया है।

महाविद्यालय के हिंदी विभाग द्वारा आयोजित इस एकदिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी में " आजादी के 75 वर्ष : हिंदी भाषा, साहित्य एवं पत्रकारिता चिंतन और चुनौतियां" इस महत्वपूर्ण विषय पर गहन चर्चा तथा विचार विमर्श हो इस उद्देश्य को लेकर संगोष्ठी का आयोजन किया गया है। इस संगोष्ठी में देश के अलग-अलग हिस्से से आमंत्रित शोध आलेखों का प्रकाशन नामांकित पत्रिका में होने जा रहा हैं। जिसकी सराहना करते हुए मैं संगोष्ठी के सहसंयोजक और संयोजन को संगोष्ठी की सफलता और पत्रिका के प्रकाशन के लिए अपनी ओर से हार्दिक शुभकामनाएं देता हूं।

डॉ. प्रदीप पाटील
प्रभारी प्राचार्य
मास्टर दीनानाथ मंगेशकर महाविद्यालय, औराद शहाजानी

संपादकीय भूमिका

"आजादी के 75 वर्ष : हिंदी भाषा, साहित्य एवं पत्रकारिता चिंतन और चुनौतियां" इस विषय पर 30 दिसंबर 2023 को आयोजित एकदिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी संयोजक के नाते संगोष्ठी में प्राप्त शोध पत्रों के प्रकाशन की भूमिका लिखने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ, यह मेरे लिए अत्यंत हर्ष की बात हैं । प्रस्तुत संगोष्ठी हमारे मास्टर दीनानाथ मंगेशकर महाविद्यालय के हिंदी विभाग और भारतीय समाजिक शास्त्र अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित की गयी हैं।

देश को आजाद होकर 75 वर्ष पुरे होने के उपलक्ष्य में संपूर्ण देश में आजादी का अमृत महोत्सव बड़े ही हर्ष उल्लास के साथ मनाया जा रहा है। आजादी के इन 75 वर्ष के आईने में जब हम हिंदी भाषा, साहित्य और पत्रकारिता पर नजर डालते हैं तो, हमें दिखता है कि, दिल्ली और मेरठ के बीच जन सामान्य द्वारा बोली जाने वाली खड़ी बोली हिंदी आज देश की राजभाषा, राष्ट्रभाषा और प्रमुख संपर्क भाषा का दायित्व सफलतापूर्वक निभाकर विश्व भाषा बन गई है। जो वर्तमान समय में सूरीनाम, मॉरीशस, इंग्लैंड और अमेरिका आदि कई राष्ट्रों में हिंदी भाषा में केवल अध्ययन-अध्यापन ही नहीं हो रहा है, तो उच्च कोटि का साहित्य निर्माण भी हो रहा हैं। तो दूसरी ओर हिंदी साहित्य हजारों सालों से वंचित, अपेक्षित,बेजुबान,दलित, स्त्री, आदिवासी, किन्नर, अल्पसंख्यक, विकलांग, किसान, वृद्ध, और बालक समाज को वाणी देकर उनके प्रश्न ,समस्या और शोषण को व्यक्त कर , उन्हें समाज के मुख्य धारा में लाने का कार्य पूरी शिद्दत के साथ कर रहा है। तीसरी ओर हिंदी पत्रकारिता ने भी अपना आरंभिक स्वरूप छोड़कर आज वैश्विक स्वरूप धारण किया है। हिंदी पत्रकारिता आज प्रिंट मीडिया, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया और सोशल मीडिया इन तीन रूपों में संपूर्ण विश्व में पहुंच गया हैं । इन 75 सालों में हिंदी भाषा, साहित्य और पत्रकारिता का सफर कैसे रहा ? ,वर्तमान में इसकी अवस्था क्या है ?और भविष्य में हिंदी भाषा, साहित्य और पत्रकारिता के सामने कौन-कौन सी चुनौतियां खड़ी हैं ? और उसका समाधान कैसे संभव होगा ?। इस पर एक सार्थक बहस हो, इस महत्वपूर्ण उद्देश्य को लेकर इस एकदिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया हैं।

आजादी के इन 75 सालों में हमारे देश ने अनेक चुनौतियों का सामना कर अपने सशक्तता और सामर्थ्य का परिचय पूरी दुनिया को दिया है। यहां के महान साहित्यकारों ने यहां की भाषा, समाज, धर्म, परंपरा, संस्कृति और प्राकृतिक विविधता में भी सबल एकता का चिंतन प्रस्तुत किया है। समग्र भारत को एकता और अखंडता के सूत्र में समां रखा हैं। तो दूसरी ओर विश्व बंधुता और विश्व मानवता का चिंतन भी विश्व को देकर संपूर्ण विश्व में शांति और अहिंसा बनी रहे इसलिए निरंतर प्रयास भी किया हैं। इस कार्य में देश की आजादी से लेकर वर्तमान अमृत महोत्सवीं वर्ष तक हिंदी भाषा, साहित्य और पत्रकारिता ने भी अपनी एक ठोस भूमिका निभाई हैं। इन 75 वर्षों में भारत और भारतीय समाज के सामने उपस्थित विभिन्न चुनौतियों का चिंतन हिंदी भाषा, साहित्य और पत्रकारिता में किस प्रकार और किस रूप में अभिव्यक्त हुआ हैं। इस पर गहन चिंतन,मनन और विश्लेषण इस पत्रिकाओं में प्रकाशित शोध पत्रों में हुआ हैं। जो हिंदी भाषा और साहित्य के अध्येताओं के लिए अत्यंत लाभदायक सिद्ध होगा ऐसा मुझे पूरा विश्वास हैं।

इस राष्ट्रीय संगोष्ठी में प्रस्तुत शोध पत्रों को संपादित कर उसे पत्रिका में प्रकाशित करने के लिए शारदोपासक शिक्षण संस्था के अध्यक्ष मा. श्री बस्वराज वलांडे, सचिव मा.श्री रमेश बगदुरे, और महाविद्यालय के प्रभारी प्राचार्य डॉ प्रदीप पाटील जी ने हमें प्रेरित किया। सह-संपादक डॉ. जाफर चौधरी (अध्यक्ष, हिंदी विभाग) और संपादक मंडल के सदस्य प्रा. गंगाप्रसाद तोटावार जी ने अत्यंत निष्ठा से कार्य किया। हमारे महाविद्यालय के सभी सहकर्मियों का इस कार्य में अमूल्य योगदान रहा। प्रस्तुत पत्रिका का प्रकाशन कार्य श्री विराग गावंडे ने समय पर जिस सटीकता के साथ किया है । वह अत्यंत सराहनीय है। इसलिए इन सभी के प्रति मैं ऋण व्यक्त करता हूं।

डॉ भगवान रामकिशन कदम
संयोजक तथा संपादक
सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग
मास्टर दीनानाथ मंगेशकर महाविद्यालय, औराद (शहा)
ता निलंगा, जिल्हा - लातूर(महाराष्ट्र)

Editorial Board

Chief Editor -
Prof.Virag S.Gawande,
Director,
Aadhar Social Research &,
Development Training Institute, Amravati. **[M.S.] INDIA**

Executive-Editors -

- **Dr.Dinesh W.Nichit** - Principal, Sant Gadge Maharaj Art's Comm,Sci Collage, **Walgaon.Dist. Amravati.**
- **Dr.Sanjay J. Kothari** - Head, Deptt. of Economics, G.S.Tompe Arts Comm,Sci Collage Chandur Bazar Dist. Amravati

Advisory Board -

- **Dr. Dhnyaneshwar Yawale** - Principal, Sarswati Kala Mahavidyalaya , Dahihanda, Tq-Akola**.**
- **Prof.Dr. Shabab Rizvi ,**Pillai's College of Arts, Comm. & Sci., New Panvel, Navi Mumbai
- **Dr. Udaysinh R. Manepatil** ,Smt. A. R. Patil Kanya Mahavidyalaya, Ichalkaranji,
- **Dr. Sou. Parvati Bhagwan Patil** , Principal, C.S. Shindure College Hupri, Dist Kolhapur
- **Dr.Usha Sinha** , Principal ,G.D.M. Mahavidyalay,Patna Magadh University.Bodhgay Bihar

Review Committee -

- **Dr. D. R. Panzade,** Assistant Pro. Yeshwantrao Chavan College, Sillod. Dist. Aurangabad (MS)
- **Dr.Suhas R.Patil** ,Principal ,Government College Of Education, Bhandara, Maharashtra
- Dr. **Kundan Ajabrao Alone** ,Ramkrushna Mahavidyalaya, Darapur Tal-Daryapur, Dist-Amravati.
- **DR. Gajanan P. Wader** Principal , Pillai College of Arts, Commerce & Science, Panvel
- **Dr. Bhagyashree A. Deshpande**, Professor Dr. P. D. College of Law, Amravati]
- **Dr. Sandip B. Kale,** Head, Dept. of Pol. Sci., Yeshwant Mahavidyalaya, Seloo, Dist. Wardha.
- **Dr. Hrushikesh Dalai** , Asstt. Professor K.K. Sanskrit University, Ramtek

Our Editors have reviewed paper with experts' committee, and they have checked the papers on their level best to stop furtive literature. Except it, the respective authors of the papers are responicible for originality of the papers and intensive thoughts in the papers.

- **Executive Editor**

Published by -
Prof.Virag Gawande
Aadhar Publication ,Aadhar Social Research & Development Training Institute, New Hanuman Nagar, In Front Of Pathyapustak Mandal, Behind V.M.V. College,Amravati
(M.S) India Pin- 444604 **Email :** aadharpublication@gmail.com
Website : www.aadharsocial.com **Mobile :** 9595560278 /

INDEX-A

ANo.	Title of the Paper — Authors' Name	Page No.
1	आदिवासी विमर्श चिंतन और चुनौतियां — **प्रा. डॉ. कल्याण शिवाजीराव पाटील**	1
2	स्त्री-विमर्श का वैचारिक पक्ष और मैत्रेयी पुष्पा का साहित्य — **प्रा.डॉ.खाजी एम.के.**	6
3	हिंदी भाषा चिंतन और चुनौतियाँ — **डॉ.बालाजी श्रीपती भुरे**	10
4	हिंदी उपन्यास साहित्य में चिंतन और चुनौतियाँ — **डॉ . अमलपुरे सूर्यकांत विश्वनाथ**	16
5	हिंदी पत्रकारिता के समक्ष चुन्नौतियाँ — **प्रा. देविदास गणेशराव येळणे प्रो. डॉ. परविंदरकौर महाजन कोल्हापूरे**	22
6	स्त्री विमर्श चिंतन और चुनौतियाँ — **प्रा.डॉ.विजयसिंह ठाकुर**	25
7	अल्माकबूतरी' उपन्याकस में आदिवासी जीवन — **डॉ. व्यंकट किशनराव पाटील**	29
8	हाशिए की जातियों और जानवरों के संघर्ष की दास्तांन है : 'सांप' — **प्रो.डॉ.रमेश संभाजी कुरे**	31
9	पंथ और परिणति' में चिंतन और चुनौतियॉं — **माधवराव गजाननराव जोशी,**	36
10	आधुनिक हिंदी उपन्यासों में दलित विमश्न — **डॉ.दीपक विनायकराव पवार**	40
11	धूमिल के काव्य में राजनीतिक चिंतन और चुनौतियाँ — **प्रा. डॉ. अनिल कुमार रामधन राठोड़**	44
12	दलित विमर्श : चिंतन और चुनौतियाँ — **कु. मन्नाडे रमा धनराज**	49
13	हिंदी काव्य साहित्य में दलित चेतना विमर्श और चुनौतियाँ — **डॉ. माला कुमारी गुप्ता**	51
14	हमारी राजभाषा हिन्दी और उसकी चुनौतियां — **कुमारी प्रेमलता**	56
15	21वी सदी के हिंदी उपन्यास और कृषक विमर्श — **देवयानी झाड़े**	59
16	दूधनाथ सिंह तथा ज्ञानरंजन की कहानियों में वृद्ध विमर्श चिंतन और चुनौतियाँ — **श्रीमती. ज्योति एकनाथ गायकवाड**	62
17	आधी आबादी की आर्थिक स्थिती का बदलता रूप (स्त्री लेखिकाओं के संदर्भ में) — **डॉ. पल्लवी भूदेव पाटील**	66
18	स्त्री विमर्श : हिंदी उपन्यास चिंतन और चुनौतियां — **प्रा. डॉ.पठाण खातून बेगम अकबर खाँन**	70

19	स्वाधीनता संग्राम में हिंदी कविता की भूमिका **डॉ.सहदेव वर्षाराणी निवृत्तीराव**	76
20	हिंदी आदिवासी विमर्श एवं चुनौतियाँ : एक परिचयात्मक अध्ययन **शेख अलीम हबीबसाब**	79
21	दलित अस्मिता, अस्तित्व और संघर्ष का जिंदगीनामा: उजास" **प्रा. डॉ. मारोती भरतराव लुटे**	84
22	हिंदी भाषा चिंतन और उसकी चुनौतियाँ **डॉ. वर्षा मोरे – पावडे**	88
23	प्रेमचंद जी के साहित्य का चिंतन एवं चुनौतियां **डॉ. रेविता बलभीम कावले**	90
24	इक्कीसवी सदी की महिला लेखिकाओं की कहानियों का समीक्षात्मक अध्ययन **प्रा.डॉ. जाधव ज्ञानेश्वर भाऊसाहेब**	95
25	परंपरा और संस्कारों में अपनी ड्योढ़ी में जकड़ी माई उपन्यास की स्त्री पात्र ' माई ' **डॉ. विद्या खाडे**	99
26	अस्मितामुलक विमर्श : अवधारणा और स्वरूप **डॉ ज्योति मुंगल**	102
27	रत्नकुमार सांभरिया के 'साँप' उपन्यास में घुमंतुओं का स्थाई जीवन के लिए संघर्ष **डॉ.सुनील गुलाबसिंग जाधव,**	107
28	दलित उपन्यासों में दर्दनाक सामाजिक स्थिति का चित्रण **डॉ शंकर गंगाधर शिवशेट्टे**	110
29	सामाजिक पत्रकारिता और एकीकरण : संभावनाएं एवं परीक्षण **डॉ. पूजा शर्मा**	116
30	हिन्दी साहित्यिक पत्रकारिता: चिंतन और चुनौतियां **डॉ सीताराम आठिया**	119
31	दशम् दशक के हिंदी उपन्यासों में 'क्रोध' भाव **डॉ. सन्मुख नागनाथ मुच्छटे,**	124
32	दलित साहित्य में अस्मिता मूलक विमर्श' **डॉ.शेख शहेनाज अहेमद**	130
33	'आपका बंटी' उपन्यास में चित्रित बाल समस्या का चिंतन **प्रा. डॉ. गंगा एकनाथ शेळके, (गायके)**	133
34	मुद्रित पत्रकारिता : फीचर लेखन **प्रा.डॉ.बायजा कोटुळे ; साळुंके**	136
35	अकाल में उत्सव उपन्यास में व्यक्त किसान विमर्श **प्रा. राजेगोरे आर.व्ही**	139
36	मुस्लिम होने के मायने : 'सूखा बरगद **प्रो.डॉ. संतोषकुमार यशवंतकर ,डॉ. मुखत्यार शेख**	144
37	नारी मनोविश्लेषण व विघटन का कलात्मक प्रमाण : "कुलटा" **डॉ. सैबाशिरीन हारुनरशीदशेख**	149
38	'21वीं सदी के हिंदी उपन्यासों में मुस्लिम समाज की समस्याएं' **प्रा. डॉ. मुल्ला मुस्तफा लायक**	153

39	देवनागरी लिपि: चिंतन और चुनौतियाँ **डॉ. मुकुंद कवडे**	**156**
40	मालवी बोली और हमारा समाज **डॉ. अशोक बैरागी 'एबी**	**159**
41	!!राष्ट्रभाषा हिंदी चिंतन औरचुनौतियां!! **विजय पाटिल**	**164**
42	हिंदी पत्रकारिता : चिंतन और चुनौतियां **डॉ. मिर्झा अनिस बेग रज्जाक बेग**	**167**
43	बदलते परिवेश में हिन्दी पत्रकारिता : चुनौतियाँ तथा समाधान **प्रा. मजहर एम. कोतवाल**	**170**
44	हिंदी काव्य साहित्य चिंतन और चुनौतियां (राजनीतिक परिस्थितियों के संदर्भ में) **डॉ.रमेश शिवाजी बोबडे**	**173**

B.Aadhar' International Peer-Reviewed Indexed Research Journal

Impact Factor -(SJIF) –8.632, Issue NO, (CDXLVI) 451-A

ISSN : 2278-9308 December, 2023

आदिवासी विमर्श चिंतन और चुनौतियां

प्रा. डॉ. कल्याण शिवाजीराव पाटील

सहयोगी प्राध्यापक, हिंदी विभागाध्यक्ष के.आर.एम.महिला महाविद्यालय नांदेड़

मो. 9764618721 ईमेल - kalyanpatil78@gmail.com

आदिवासी शब्द का अर्थ अधिवासी अर्थात जिसका सबसे पहले निवास हो हो वह आदिवासी। आदिवासी शब्द से तात्पर्य " आदिवासी वनवासी या जंगली, आदिम भी कहते हैं। भारतीय संविधान में इन्हें अनुसूचित जनजाति के रूप में संबोधित किया है। 1" आदिवासी याने किसी प्रदेश या राज्य के मूल निवासी।"2 आदि का अर्थ पहला, आरंभ के रूप में लिया जाता है। प्रो.गिलानी के मतानुसार " एक विशिष्ट भू प्रदेश में रहने वाला, समान बोली बोलने वाला, अक्षरों की पहचान न होने वाला, समूह , गुट, आदिवासी समाज कहलाता है।"3 प्रा.गिलानी की व्याख्या के अनुसार स्पष्ट है कि जो जंगल में रहता है, पिछड़ा अज्ञानी, अंधविश्वासी, अप्रगत, मात्र अपनी संस्कृति का रक्षक है और हर जगह एक समान बोली बोलता है वह आदिवासी कहलाता है। इन्हें 'वनवासी', 'वन्य-जनजाति','जंगली','लंगोटिया','भूमिपुत्र','वन पुत्र, 'आदि संतान, आदि के रूप में भी उनका गौरवपूर्ण उल्लेख किया जाता है।'

अनेक भारतीय एवं पाश्चात्य समाज वैज्ञानिकों ने और विचारकों ने 'आदिवासी कौन?'इस विषय पर अपने ग्रन्थों में कुछ परिभाषाओं को उद्धृत किया है। भारतीय संस्कृति कोश के अनुसार - "आर्य एवं द्रविड़ भारत के इन दो मानव समाज को छोड़कर उनसे भी पूर्व भारत में रहने वाले अथवा दूसरे देश से आकर वन पर्वत इनके आश्रय में निवासीय जातीय समूह को वन्य जाती अथवा आदिवासी कहा जाता है।"4 डॉ.रिव्हर्स कहते हैं कि,"जनजाति अर्थात ऐसा सामाजिक समूह जिसकी एक सामान्य भाषा रहती है और वह सामान्य उद्देश्यों के लिए संगठित रूप से कार्य करता है।"5 डॉ. मजूमदार का मानना है कि," आदिम जनजाति अर्थात सामान्य नाम, सामान्य बोली एवं सामान्य भूभाग को धारण करने वाला समूह, यह समूह विवाह और व्यवहार के बारे में कुछ विशिष्ट निषेध का पालन करते हुए अपने समाज में परस्पर संबंधों और कर्तव्यों के निर्धारण में पहचान का बोध कराता है।"6 भारतीय संविधान में इन्हें ही 'अनुसूचित जनजाति'के रूप में संबोधित किया गया है। आदिवासी अर्थात आदि समय से यानी प्रारंभिक काल से जो लोग निवास कर रहे हैं। वहीं आदिवासी कहलाते हैं। मानव के धरती पर जीवन के अस्तित्व के समय से लेकर आज तक जो लोग चिरकाल से निवासरत है वे ही आदिवासी हैं।

आदिवासी समाज आदिम युग से अपनी मौलिक एवं परिस्थितियों के साथ निवास कर रही हैं। उत्तर और पूर्व क्षेत्र में मुख्य आदिवासी समूह है - भेरिया, थारू,लेपचा,नागा,गारो,खासी,डाफला, गुरुंग आदि। मध्य क्षेत्र में संथाल, मुंडा,खोंड,सवरा,बंगा,कोल,गोंड,भील,चेंचु,कोया आदि हैं। पश्चिम क्षेत्र में वाली,कटकरी,कोली, आदि हैं। दक्षिण क्षेत्र में कोटा,इरुला,कुरूंबा, इत्यादि उल्लेखनीय है। आर्थिक संगठन, सामाजिक संगठन एवं विशिष्ट सांस्कृतिक प्रथाओं तथा धार्मिक संगठन के आधार पर आदिवासी समूह का वर्गीकरण करने का प्रयत्न मानव विज्ञानवेताओं ने किए हैं। उपन्यास साहित्य में गोंड,मल्लाह,संथाल,भील,करनट,मछुआरों हिंदी लबा,कोलियों,गाडियालुहार,महरा,तुरी,महतो,नट,लुशेइयां,धारू,कबूतरा,उराव, आदि आदिवासियों का चित्रण किया गया है। आदिवासी समाज नागर संस्कृति से दूर और अलिप्त रहते हैं। उनकी अपनी अलग संस्कृति होती है।

आदिवासी समाज की अनेक जातियां हैं। सभी जातियों की बोली भाषा अलग-अलग है। आदिवासी समाज अंधश्रद्धालु होता है। प्रत्येक जनजातीय समाज का एक सामान्य व निश्चित निवास स्थान रहता है। जिसमें उनमें सामान्य बोली और सामूहिक भावना दिखाई देती है। सामान्य भौगोलिक स्थान के साथ उनमें एकता की भावना दिखाई देती है। उनकी एक सामान्य बोली रहती है। इस बोली के कारण उनमें सामूहिक भावना निर्माण होती है। आदिवासी जातियों में अपने ही सजातीय में विवाह करने का नियम है। इनमें रक्त सम्बंधों का बहुत महत्व होता है। जो सामूहिक भावना और विकास में सहायक होते हैं। दूसरों के आक्रमणों से अपनी रक्षा हो इस हेतु यह सामूहिक एकता को महत्व देते हैं। इसके लिए उनका एक नेता होता है। और उसे सहायता करने के लिए सलाहकार भी रहते हैं। उनकी अनेक टोलियां होने के बाद भी एक टोली का एक नेता रहता है।जो सभी की सुरक्षा के लिए कार्य करता है। प्रत्येक जनजाति का एक राजनीतिक संगठन रहता है। आदिवासी समाज में धर्म का बहुत महत्व है। धार्मिक नियमों का पालन कठोरता से किया जाता है। अगर किसी ने उल्लंघन किया तो उसे उचित दंड दिया जाता है। एकात्मकता की भावना सामान्य भाषा सामान्य धर्म और राजनीतिक संगठन के कारण उनकी एक सामान्य संस्कृति निर्माण हुई है। अनेक गोत्र मिलकर एकत्र रहने के कारण इन गोत्रों में परस्पर संगठन और सहयोग होता है। प्रत्येक जाति के विवाह व्यवसाय इत्यादि कारणों की पाबंदियों और निषेध को वे कठोरता से पालन करते हैं। इनका जादू टोना पर विश्वास रहता है। उनकी अधिकतर जातियों में और अशिक्षा और पिछड़ेपन का भाव नजर आता है।

"आदिवासियों का धर्म मूलत: निसर्गदत्त है। प्रकृति में वे दैवीय संचार मानते हैं। जमीन, वनस्पति, सूर्य, चंद्र एवं तारों की वह पूजा करते हैं। जनजाति अर्थात निसर्ग का पुत्र, आदिवासी पुरुष प्रकृति की गोद में ही जीता है, रहता है, बढ़ता है, और मरता है, इसलिए प्रकृतिवाद यह जनजाति के धर्म का महत्वपूर्ण अभिभाजित घातक है। वे प्रकृति पूजक है, नैसर्गिक शक्ति की आराधना करना और उस शक्ति को प्रसन्न करके उसे अपनी रक्षा करना इस भावना से उसकी धर्म के प्रति आस्था निर्माण हुई है।"7 आदिवासी समाज की अर्थव्यवस्था अलग प्रकार की होती है। अर्थव्यवस्था में उत्पादन, वितरण और सेवन तीनों घटक महत्वपूर्ण होते हैं। आदिवासी अर्थव्यवस्था में वितरण की व्यवस्था नहीं होती क्योंकि वस्तु का उत्पादन कम होता है। आदिवासी समाज में कृषि उत्पन्न बाजार समिति नहीं होती है। किंतु आज कहीं कहीं आदिवासी क्षेत्र में कृषि बाजार की व्यवस्था दिखाई देती है। आदिवासी जीवन ढांचेबध्द होता है। वे जंगलों में रहते हैं इसलिए अस्त्र-शस्त्र का प्रयोग करते हैं। उनकी पूरी संस्कृति नागर संस्कृति से भिन्न होती है। उनके जन्म संस्कार, विधि- विधान, विवाह प्रथाएं, तीज -त्यौहार, उत्सव पर्व, तलाक, मृत्यु विधि, प्रस्थापित समाज से भिन्न होती है। उनका स्वभाव भोला- भाला और वे मितभाषी होते हैं।

आदिवासी समाज की अनेक समस्याएं हैं। सबसे पहली समस्या है गरीबी। यह लोग अभावों में जीते हैं। उनकी कई बार पुलिस, दरोगा से मुठभेड़ होती है। वे अपने समाज के लिए लड़ते रहते हैं। आदिवासी समाज का दुख- दर्द होता है। वह एक नये मन को बनाने निकला है। राष्ट्रोत्थान के लिए छोटे-छोटे व्यवसाय इनके लिए खोलने चाहिए। जंगली संपत्ति को इन्हीं के द्वारा सुरक्षित रखा जा सकता है। इनके सांस्कृतिक इतिहास को बचाना होगा। भारतीय आदिवासी समाज में जातिगत प्रतिबंध पाए जाते हैं। आदिवासी समाज में विवाह संबंधी नाना प्रकार की प्रथाएं प्रचलित है। कुछ आदिवासी जातियों में नवयुवक एवं नवयुवतियों को अपनी ही जनजाति में स्वच्छंदता पूर्वक यौन संबंध स्थापित करने की स्वतंत्रता रहती है, परंतु यह जनजातीयां विजन जाति के पुरुष अथवा नारी से यौन संबंध स्थापित करने के विरोध में कठोर नियमों का पालन करती हैं। यदि उसने अर्थात लड़की ने विजनजातीय पुरुष से यौन संबंध स्थापित किया तो उस नवयुवती को एवं उसके माता-पिता को आदिवासी जाति से बहिष्कृत किया

जाता है। गोंड एवं मुंडा समाज में नारी पुरुष की जूती के समान होती है। इसका कारण है शिक्षा का अभाव। कई आदिवासी नारियां कुंवारेपन के भटकाव के अभिशाप को मिटाने के लिए ईसाई धर्म स्वीकार कर लेती है। उसे नया नाम धारण करना पड़ता है या पति उसे बेच देता है या तो फिर उसे देह विक्रय करना पड़ता है। आदिवासी जीवन केंद्रित उपन्यासों में नारियों को पति को परमेश्वर या जन्म-जन्मांतर के संबंधों को नकारते हुए दिखाया है। इसके पीछे आर्थिक विशेषताएं है या नयी मूल्य मर्यादा को स्वीकारने का दूस्साहस है।

आज का आदिवासी समाज राजनीति के चक्रव्यूह में फंस गया है।वह जो कुछ चाहता है, उसे प्राप्त नहीं कर सकता। और जो कुछ करना चाहता है उसे करने नहीं दिया जाता। इसीलिए यह एक दृष्टिहीन की तरह राजनीति के हाथ की कठपुतली बना नाच रहा है। बेकारी, बेरोजगारी, साम्प्रदायिकता, पिछड़ी जाति की भावना,शोषक - शोषित का भेद आदि ने उसकी पीड़ा को और अधिक बढ़ा दिया है, क्योंकि इनमें चिंतन दृष्टि और व्यवहार का संतुलन नहीं है। औद्योगिक संक्रमण से उत्पन्न आदिवासी - परिवेश की समस्या, आदिवासी स्त्री पुरुषों में फैले अंधविश्वासों, सामाजिक रुढ़ियों तथा उन पर तरह-तरह अत्याचार होते हैं। जंगल के आदिवासी अपनी स्थिति को प्यार करते हुए भी सामाजिक और राजनीतिक शोषण के विरुद्ध जागरूक हो रहे हैं। भारतीय आदिवासी संस्कृति को सुरक्षा प्रदान करना आवश्यक है।

के.बी. सक्सेना कहते हैं कि -"कोई भी व्यवस्था आदिवासियों को सुरक्षा नहीं दे पाई है। आदिवासियों में व्यवस्था के साथ जोड़-तोड़ करने की योग्यता भी नहीं है। जिसकी मर्जी में जो आता है, वह शोषण करता है। उनकी मांग बस इतनी है कि हमारे वातावरण के अंदर जो संसाधन है, उन पर हमें नियंत्रण दीजिए यह मेरे परंपरागत अधिकार के अंतर्गत आता है।"8

इस तरह आदिवासियों का मनोबल टूटता जा रहा है। जल, जमीन और जंगल पर उनका अधिकार दस्तावेज के अभाव से छीना जा रहा है। अंग्रेजी सरकार के बाद भारत सरकार की भूमि अधिग्रहण अधिनियम के कारण उन पर अन्याय किया जा रहा है। जिससे आदिवासियों का विस्थापन हो रहा है। यह एक गंभीर समस्या आज आदिवासी जीवन पर मंडरा रही है। अपनी अस्तित्व के लिए खेती करने वाला, श्रम के फल खाने वाला, आदिवासी समाज आज बाजार, नौकरशाही और सेठ, साहूकार सभी के शोषण का शिकार हो रहा है।

इस स्वाभिमानी समाज ने कभी अपने पुरुषार्थ को लेकर समझौता नहीं किया। दिन रात मेहनत और मजदूरी करके अपने जीवन को गति देता रहा है। लेकिन आज जब प्राकृतिक संसाधनों से इन्हें बेदखल कर दिया है तो इनकी दशा बहुत ही दयनीय हो गई है। उनके विकास की समस्या अत्यंत जटिल बन गई है। क्योंकि उनके विकास की बात उनकी जीवन शैली, सांस्कृतिक परंपराओं एवं मनोदशाओं को ध्यान में रखकर नहीं की गई है।

अधिकांश भारतीय जनता आज भी इस तथ्य से अनभिज्ञ है कि आदिवासियों की पहचान क्या है ? उनके विश्वास क्या है ? उनकी स्वशासन पर आधारित सामाजिक व्यवस्था क्या है ? प्राकृतिक संसाधनों से उनका क्या संबंध है ? मानव सभ्यता एवं संस्कृति के विकास में उनका योगदान क्या है ? स्वतंत्रता संग्राम में उनकी भागीदारी क्या है ? यहां यह बतलाना आवश्यक हो जाता है कि आदिवासी लोग प्रकृति के निकटतम होते हैं, वे पहाड़ों, जंगलों और प्रकृति के दूर दराज प्रान्तों में पाये जाते हैं। सामाजिक आर्थिक विकास की मुख्य धारा से कटे हुए होते हैं।

स्त्री समस्याओं, दलित समस्याओं, अल्पसंख्यकों की समस्याओं की ओर जिस तरह विभिन्न भारतीय भाषाओं के साहित्यकारों का ध्यान गया है उसे तरह आदिवासियों की समस्याओं पर रचनाकारों का ध्यान नहीं गया है। शायद इसका कारण अधिकांश रचना धर्मियों का मध्य वर्ग से होना ही है। हम राष्ट्रपिता महात्मा गांधी, सरदार वल्लभभाई पटेल, नेताजी सुभाष चंद्र बोस, चंद्रशेखर आजाद, भगत सिंह, झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, तात्या टोपे

आदि की क्रांति धर्मिता से कुछ ना कुछ तो परिचित है किंतु सिद्धू, कान्हूं, बिरसा मुंडा, तेलंगा खाड़िया, बुधु भगत, दुक्खन मांझी, तिलका मांझी, खाज्या नायीक, भीमा नायीक, मांगी कुडा, सिनगी दयी, कोमरल भील आदि आदिवासियों की क्रांति चेतना से परिचित नहीं है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के 75 वर्षों के बाद विश्व की सुप्रसिद्ध लोकतांत्रिक व्यवस्था में इस देश में यदि कोई समुदाय उपेक्षित, अभिशप्त, शोषित, अशिक्षित एवं हाशिए पर है तो वह है - आदिवासी समाज। आज भी कई आदिवासी ऐसे हैं जो मूलभूत सुविधाओं और अधिकारों से वंचित है और गरीबी रेखा के नीचे अपना जीवन यापन कर रहे हैं। वर्तमान समय में यह आदिवासी समाज अपने अस्तित्व और अस्मिता के संकट की लड़ाई लड़ रहा है तथा अनंत, शोषण, दमन और उत्पीड़न का शिकार रहा है।

हमारे लोकतांत्रिक व्यवस्था ने राष्ट्र के सभी नागरिकों को समानता, सामाजिक न्याय, सर्वांगीण विकास का आश्वासन दिया है किंतु अधिकांश आदिवासियों के जीवन के अवलोकन से यह बातें निरर्थक लगने लगती हैं। आदिवासी संपूर्ण भारत में है इनकी संख्या लगभग 8 करोड़ है। यह देश की आबादी के 7.8 % हैं। पूरे देश में आदिवासी समुदायों की संख्या 600 से अधिक है। देश के 72% वनज और अन्य प्राकृतिक संसाधन 90% कोयला खदान 80% खनिज संपदा आदिवासी इलाकों में है। फिर भी 85% आदिवासी गरीबों की रेखा के नीचे गुजर बसर कर रहे हैं। देश के कुल बंधुआ मजदूरों में 83% मजदूर आदिवासी हैं। सरकारों द्वारा प्राकृतिक संसाधनों का दोहन, जमीन और जंगल से आदिवासियों की बेदखली, उनकी सामुदायिक आर्थिक व्यवस्था का नाश आदि कारणों से आज भी आदिवासी पिछड़े हुए हैं।

आज यह भारतवर्ष विविध समस्याओं से ग्रस्त है। एक तरफ सारा विश्व सिमट रहा है। ग्लोबल विलेज की संकल्पना सामने आ रही है। दूसरी और मानवीयता सिमट रही है। मूल्य, नैतिकता, परंपरा, सांस्कृतिक संदर्भ कांच के बर्तन की भांति टूट रहे हैं। पिछड़ा मानव समाज विकास से अछूता और शोषण, अत्याचार, बलात्कार एवं नई सभ्यता के हमलों से गुजर रहा है। आदिवासी समाज व्यवस्था से लड़ रहा है। आदिवासी जीवन संघर्ष चेतना से परिपूर्ण हो रहा है।

आदिवासियों के समग्र विकास के लिए आदिवासियों केजंगल, जमीन, पर अधिकारों का सम्मान किया जाना चाहिए। विशेष भर्ती अभियान द्वारा नौकरियों में स्थान देकर पढ़े लिखे नव जवानों का मनोबल बढ़ाना चाहिए। जिससे आधुनिकता और शहरी जीवन से वह जुड़ जाएंगे और आत्महीनता की भावना का ह्रास होगा। आदिवासियों के परंपरागत समाज एवं सांस्कृतिक क्षेत्र एक आधार पर ही आदिवासी क्षेत्र में प्रशासनिक व्यवस्था सुनिश्चित की जानी चाहिए। ग्राम सुधार योजना द्वारा ग्राम पंचायत को अधिकार सौंप कर आदिवासी कल्याण योजना को लागू करना चाहिए। आदिवासी की सामान्य बोली-भाषा को द्वितीय राजभाषा का दर्जा देकर जनजातीय भाषा के अध्यापकों की नियुक्ति करके मातृभाषा में बच्चों की पढ़ाई करनी चाहिए। आदिवासी भाषा जो अलिखित है, उसे संग्रहित कर प्रकाशित करना चाहिए जिससे कि आदिवासी परंपरा, संस्कृति और लोक साहित्य की रक्षा हो पायेगी।

आदिवासियों का जीवनानुभव और संघर्षरत भावना का एहसास उसके साहित्य में दृष्टिगत होता है। आदिवासी समाज शैक्षणिक दृष्टि से आज स्वाभिमान और आत्मनिर्णय के बल पर अपनी कार्य पद्धति को संवरता हुआ योग्यता हासिल करता हुआ उदासीनता को त्याग रहा है। सामाजिक परिवर्तन के दालान आज खुले हो गए हैं। शिक्षा और योग्यता के कारण वह अन्याय जुल्म और अत्याचार के खिलाफ आवाज उठाने लगा है। अमानवीयता के कठोर षड्यंत्रों से मुकाबला करता हुआ आदिवासी जन-जीवन सत्ता की भागीदारी के महत्व को भी समझ गया है। वह

मात्र मतदाता नहीं नेता की पंक्ति में आज खड़ा हो गया है और मानवीयता की दुहाई देते हुए सभी के कल्याण की कामना कर रहा है।

संदर्भ सूची

1) राजीव लोचन शर्मा, भारत की जनजातियां,पृ.90

2) श्री.ए.वाय. कोंडेकर, भारतीय आदिवासी समाज, पृष्ठ 106

3) नालंदा विशाल शब्द सागर, पृष्ठ 125-126

4) भारतीय संस्कृति कोश, संपा.पं. महादेव शास्त्री जोशी, पृष्ठ 428

5) भारतीय समाज व्यवस्था, ले.प्रा.रा.ना.घाटोले, पृष्ठ 230

6) वही, पृष्ठ 230

7) वही, पृष्ठ 249

8) 1857 की क्रांति में दलितों का योगदान, संपा. मोहनदास नैमिशराय, पृष्ठ 201

स्त्री-विमर्श का वैचारिक पक्ष और मैत्रेयी पुष्पा का साहित्य

प्रा.डॉ.खाजी एम.के.

सहाय्यक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, शंकरराव चव्हाण महाविद्यालय, अर्धापुर तह.अर्धापुर जि. नांदेड, महा.

मो.नं. 9421757842

भारतीय सामाजिक परंपरा के केंद्र में पुरूष प्रधान संस्कृति रही है। अनेक वर्षों की परंपरा को स्त्री ने भी अपनी नियती मानकर स्वीकार कर लिया है किन्तु जब गुलामी और अधिकार की जानकारी शिक्षित स्त्री को महसूस हुई तब से साहित्य में स्त्री विमर्श साहित्य का आरंभ माना जा सकता है। भारतीय परंपरा और सभ्यता विश्व में श्रेष्ठतम परंपरा के रूप में गनना की जाती है, लेकिन यह भी सत्य है कि हमारे यहाँ भी कई बार स्त्री को केवल भोग की वस्तु ही माना गया है। वर्तमान काल में स्त्री आज पुरूष के कंधे से कंधा मिलाकर काम कर रही है, इतना ही नहीं स्त्री ने आज कई क्षेत्रों में पुरूष को पीछे छोड़ दिया है। जो काम परंपरागत रूप से पुरूष का ही माना जाता था उसमें भी स्त्रियों ने अपना कब्जा जमा लिया है। राजनीति, सामाजिक, वौज्ञानिक, तकनीकि, शिक्षा, सुरक्षा, खेल-कूद आदि के साथ जीवन के जटील कामों में भी स्त्री ने अपना कर्तब दिखाया है। आज भारत में सेना, वैमानिक, रेल पायलेट, मोटार ड्रायव्हिंग, ॲटो ड्रायव्हिंग, किसान खेत-खलिहान में स्त्रियों ने कब्जा कर लिया है। वर्तमानयुग में एक ओर स्त्रिया अपने कर्तव्य तथा सक्षमता का परिचय दुनिया भर में दे रही हैं तो दूसरी और एक वर्ग आज भी स्त्री को केवल भोग की वस्तु, मनोरंजन का साधन और मानव-जाति की उत्पादन करने वाली मशिन के रूप में ही स्वीकार्य करने की मानसिकता का गुलाम है। कठिन बंधनों को और वज्रनाओं को सहते हुए स्त्री ने अपने कर्तव्य का पालन करके बेटी, बहन, बहु, और माँ के रिश्तों को निभाने के साथ-साथ अपने कर्तव्य का पालन करके भी अपना जोहर और हुनर दिखा रही है। भारत में स्त्री उध्दार को लेकर संतो के साथ-साथ महात्मा ज्योतिबा फुले और उनकी सहधर्मी सावित्रीबाई फुले आदि ने विधायक और रचनात्मक कार्य किया है। कालांतर में भारतीय समाज सुधारकों और अंग्रेजों ने भी स्त्री उध्दार के लिए विधायक कार्य किया है। उन्नीसवीं शती के उत्तरार्ध में स्त्री को लेकर दुनियाँ भर में चिंतन-मनन का प्रारंभ हुआ है। भारत के अतिरिक्त पश्चिम में भी स्त्री चिंतन की परंपरा दिखाई देती है। बीसवीं शती की अंतीम दशकों और इक्कीसवीं सदी के आरंभ में स्त्रियों के प्रश्नों को लेकर विश्वभर में बुध्दिजीवियों, समाज सुधारकों, राजनीतिज्ञों तथा साहित्य सृर्जनकारों में चर्चा ज़ोरों से शुरू हो गई। विश्व भर में महिला-दिन,मानवाधिकार,स्त्री समानता, स्त्री-हक्क और स्त्री-सुरक्षा को लेकर गंभीरता से विचार किया जाने लगा। प्रसिध्द समीक्षक व्दिवेदी जी ने नारी पक्ष का समर्थन करते हुए लिखा है कि ---

"पति को देवतुल्य हम माने,
बच्चों की भी दासी है
सेवा सदा करे नहि सोंचे
भूखी है या प्यासी है।"[1]

जाति-धर्म की, संस्कारों की कुप्रवृतियों के कारण पुरूष ने उसे दासी बना लिया है। लड़का-लड़की में भेद किया जाता है। इस मानसिकता को बदलना बहुत कठीन कार्य हैं लेकिन आधुनिक स्त्री ने जिस तरह से अपने आपको बदल कर सिध्द कर दिया है तो जरूरत है अब पुरूष और स्त्री दोनों की भी मानसिकता में परिवर्तन लाने

की। "भारतीय समाज पुरूष प्रधान समाज रहा है जहाँ आदिकाल से स्त्री-पुरूषों की इच्छानुसार जीवनयापन करती है। उसे किसी ने कभी सार्थक व्यक्तित्व ही नहीं माना। लेकिन राख के भीतर दबी आग की चिंगारी के समान स्त्री की अस्मिता समय-समय पर अपना रूप दिखाती आई है और आज स्त्री को स्वतंत्रचेता नागरिक के रूप में स्वीकार किया गया है।"[2] इसी संबंध में प्रसिध्द समीक्षक डॉ.सुर्यनारायण रणसुभेजी का कहते है कि "प्रश्न केवल स्त्री की मानसिकता को बदलने का नहीं, पुरूष की मानसिकता में भी मूलभूत परिवर्तन की जरूरत हैं। क्योंकि हजारों वर्षों से उसे यह चेताया गया है कि, स्त्री या तो श्रध्दा की अधिकारणी है (माँ-बहन-नारी तुम केवल श्रध्दा हो) अथवा भोग की पत्नी या वैश्या।"[3]

हिन्दी साहित्य में संतो के प्रयासों के बाद मौथिलिशरण गुप्त, आयोध्यासिंह उपाध्याय, प्रेमचंद, रेणू, प्रसाद, निराला, आदि साहित्यकारों ने स्त्री उध्दार के लिए अपनी कलम चलाई है। मौथिलिशरण गुप्त ने स्त्रियों के अधिकार में दुहार लगाई है। स्त्री संवदेना और उसकी उपेक्षितता को उजागर करते हुए रामकथा' को नए सिरे से रचते हुए लक्ष्मण की पत्नी ऊर्मिला को नायिका की हक्कदार बनाकर कैकयी को भी क्षमा का पात्र बनाया हैं। नारी वेदना और पीड़ा की अभिव्यक्ति करते हुए मौथिलिशरण गुप्त ने अपनी संवेदना व्यक्त की है। इसी तरह प्रेमचंद के समकालीन लेखकों ने अपने उपन्यास, नाटक के माध्याम से दहेज प्रथा, अनमेल विवाह, बाल-विवाह, वेश्यावृत्ति का विरोध करते हुए राजनीतिक एवं सामाजिक रूप से नारी शोषण को यथार्थ रूप से प्रस्तुत किया है। स्त्री के सबला रूप को लेकर अनेक साहित्यकार अपने-अपने तरिके से नए अंदाज़ में लिख रहे है। "नारि नर सम होहि कहकर सर्वप्रथम भारतेंदु ने ही समाज में स्त्रियों के लिए पुरूष की बराबरी का मुददा खड़ा किया था।"[4] स्त्री विषय को लेकर अपने नए अंदाज में साहित्य जगत में अनेक महिला कथाकार का उदय हुआ है।

उषा देवी मिश्रा, श्रीमती रजनी पन्निकर, शिवानी, मन्नु भंडारी, मालती जोशी, कृष्णा सोबती, उषा प्रियवंदा, महेरूनिसा परवेज, शशिप्रभा शास्त्री, सुधा अरोडा, ममता कालिया, मृणाल पाण्डेय, राजी सेठ, प्रभा खेतान, कुसुम कुमार आदि कथाकारों नें आधुनिक महिला के मानसिकता के साथ-साथ ग्रामीण जीवन की सामाजिक समस्याओं का चित्रण प्रभावात्मक रूप से किया है। लेकिन स्त्री विषय और वेदना को लेकर सबसे चर्चित महिला कथाकार मैत्रेयी पुष्पा का उदय होना स्त्री - विमर्श की आगे का पायदान कहा जा सकता है। मैत्रेयी ने अपनी कहानियों एवं उपन्यासों में लोक -चरित्रों के माध्यम से स्त्री जीवन की सामाजिक बिंबों को उभारा है। मैत्रेयी की साँसों में उन गाँवों की स्मृतियाँ है जिनके बीच उनके बचपन से युवावस्था तक की यात्राएँ शामिल हैं। उनके कहानी संग्रहों में चिन्हार, ललमनियाँ, और गोमा हसती है तो उपन्यासों में बेतवा बहती रही, इदन्नमम, चाक, झूलानट, अल्मा कबूतरी, विजन, आगनपाखी आदि कथा साहित्य का निर्माण किया हैं। उन्होंने अपनी माँ कस्तूरी के संघर्षो की कथा उन्होंने अपने आत्मकथा के पहले भाग 'कस्तूरी कुंडल बसौ' में लिखी है। हाल ही में प्रकाशित उनकी आत्मकथा का दूसरा भाग 'गुडिया भितर गुडिया' प्रकाशित हुआ है, जिसमें मैत्रेयी के वौवाहिक जीवन से लेकर लेखकीय जीवन तक की कथा यात्राएँ शामिल हैं। इस आत्मकथा के द्वारा मैत्रेयी के संपूर्ण जीवन को समझा जा सकता है।

मैत्रेयी पुष्पा जिन विषयों को लेकर साहित्य के क्षेत्र में उभरी है वह विषय अत्यंत मार्मिक एवं संवदेनापूर्ण हैं। इनमें स्त्री अस्मिता की आकांक्षा है, पुरूष की मानसिकता को बदलना है जो शिवानी, तसलिमा नसरीन, प्रभा खेतान, चित्रा मुद्गल के आदि लेखिकाओं के साहित्य में भी रहा है, फिर मैत्रेयी कुछ हद तक इन महिला कथाकारों से अलग है। मैत्रेयी एक अच्छी बेटी, सदगृहणी, अच्छी पत्नी, माँ, सास, नानी आदि रिश्तों को निभानेवाली भारतीय महिला है। इसलिए यह भी सत्य है कि वह विवाह संस्था के विरूध्द खड़ी नहीं होती लेकिन विवाह संस्था

के पुरूषवादी विचारों को चुनौती देती हुई दिखाई देती है। इस संबंध में प्रसिध्द आलोचक डॉ.विजय बहादुर सिंह का मत है कि "मैत्रेयी जी की जो तर्क पध्दिति है, उसकी आधार बातें उसी विवाहशास्त्र (विधान) से चलकर आती हैं, जिसकी सप्तप में दोनों को बराबर के अधिकार दिए गए हैं। मैत्रेयी का तर्क है कि फिर भी अगर पुरूष उपपत्नी रखता है, रखेल रखता है और वौश्या गमन करता है तो उसे भी वह दंड दिए जाने चाहिए जो इन स्थितियों में स्त्री को दिए जाते हैं। अगर पुरूष दंडनीय नहीं है तो फिर स्त्री कैसे अपराधिनी और दंडनीय हुई? मैत्रेयी का यह यक्ष प्रश्न हैं, इसका जवाब सामाजिक आदालतों को देना हैं।"[5] यहाँ मैत्रेयी स्त्री-पुरूष समानता की दुहार लगाती हुई दिखाई देती हैं।

मैत्रेयी पुष्पा पुरूष जाति का विरोध नहीं करती बल्कि पुरूषवादी मानिसिकाता का विरोध करती है। वे अपने एक साक्षात्कार में स्वयं कहती है कि "मैं उन उन स्त्रियों को लेकर आऊँगी, जिन्होंने पुरूषों को बहुत प्रसिध्दि दिलवाई और खुद नेपथ्य में चली गई।"[6] यही भाव मैत्रेयी के 'कही ईसुरी फाग' उपन्यास में मिलते हैं। 'चाक' उपन्यासकी सारंग पुरूष प्रधान स्थितियों को चुनौती देती है,वह अपने पति से प्रेम तो करती है,फिर भी स्त्री के अस्तित्व को बचाए रखने के लिए श्रीधर का साथ लेकर उसके प्रति समर्पित होकर पुरूषवादी स्थितियों का प्रतिरोध करती हैं। 'अल्मा कबूतरी' की कथा स्त्री की त्रासदी की गाथा हैं। एक ओर स्त्री द्वारा कही गई त्रासदी को मैत्रेयी ने कई परिदृष्यों में उद्घाटित किया हैं। मैत्रेयी पुष्पा ने उनकी आत्मकथा 'कस्तूरी कुंड़ल बसौ' और दूसरा भाग 'गुडिया भितर गुडिया' जो आत्मविमर्श किया है,उससे सारा साहित्य जगत विस्मयादि हो उठा हैं। इस आत्मविमर्श को रेखांकित करते हुए आलोचक विजय बहादुर सिंह कहते है कि "यह आत्म-विमर्श उस स्त्री का भी है,जो बेटी तो है,लेकिन उसके आगे-पीछे माँ पिता रिश्ते नाते, प्रेमि-पति और पुत्र-पुत्रियाँ भी हैं। इससे यह समझ में आता है कि मैत्रेयी का स्त्री-विमर्श, परिवार विमर्श भी है और सामाज-विमर्श भी है। वह समाज विमर्श अगर है तो आधुनिकता और इतिहास विमर्श भी। तसलिमा ठिक कहती हैं कि मैं न नारीवादी हूँ, न बौध्दिक। समाज की नाइंसाफी, औरत-मर्द में विषमता, पुरूष शासित समाज में औरत को दूसरे दर्ज से भी बदतर बनाए जाने से मेरा जी दुखता हैं।"[7] इस तरह के विषय मैत्रेयी ने उपस्थित कर के साहित्य जगत में अपनी अलग पहचान बनाई है। मैत्रेयी जो स्त्री विमर्श को लेकर साहित्य जगत में उभरी है,उससे यह बात तो निश्चित है कि उन्हें पाठक वर्ग और प्रसिध्दि बहुत मिली है। मैत्रेयी के प्रसिध्दि और पाठक वर्ग को लेकर वरीष्ठ कथाकार राजेंद्र यादव ने अपने संस्मरण में कहा है कि "लेखिकाओं में शिवानी के बाद सबसे अधिक पाठक वर्ग मन्नू भंडारी का है। 'आपका बंटी' और महाभोज मन्नू जी के ये दो ही उपन्यास है,लेकिन बहुत पढ़े जाते हैं। तीसरी लेखिका मैत्रेयी है। पचास साल में केवल यह तीन लेखिकाएँ हैं, जिन्हें सबसे अधिक पाठक मिलें,शायद लाखों में।"[8] समाज एवं साहित्य में जो स्त्री-विमर्श उभर कर आया है, उससे विश्वस्तर पर भारत को देखने का दृष्टिकोन बदल रहा है। यह आधुनिक युग का वरदान है।

सारंश :

भारत में स्त्रियों को देखने का दृष्टिकोन में जिस तरह का परिवर्तन हो रहा है उसी तरह साहित्य में अनेक परिवर्तन होते रहे हैं। हिन्दी साहित्य के साथ विश्व साहित्य में भी स्त्री विमर्श साहित्यकार अपने साहित्य में स्त्री के अधिकार, उसकी दयनीय आवस्था, स्त्री का त्याग, समर्पन और प्रेम के भाव को लेकर चिंता साहित्य में उजागर हो रही हैं। हिन्दी साहित्य के महिला कथाकारों में सामान्यत: वह स्त्री चित्रित है,जो अपने अधिकार और सम्मान के लिए दया की पात्र न बनकर पुरूष के साथ खड़ी होकर अपने अधिकार के लिए प्रतिरोध कर रही हैं। वह पुरूष प्रधान संस्कृति से टक्कर लेकर अपनी राह खोज रही हैं। इन कथाकारों में महिला कथाकार अपनी भावना अधिक

प्रखरता के साथ अभिव्यक्त कर रही है क्योंकि स्त्री के भाव को स्त्री ही अधिक पौनी दृष्टि से नाप सकती है, जो काम मैत्रेयी पुष्पा कर रही हैं। स्त्री विमर्श को लेकर जो विषय चर्चा में आए हैं, उनमें स्त्री स्वातंत्रता, स्त्री-पुरूष समानता, स्त्री अधिकार की दुहार लगाई जा रही हैं। वास्तव में आज के समाज में स्त्रियों में भी दो वर्ग दिखाई देते हैं। एक वह जो परंपरागत अन्याय अत्याचार को अपना नसीब समझकर पुरूष प्रधानता को स्वीकार करते हुए परंपरा का निर्वाह कर रही है तो दूसरी ओर का वर्ग जो अपने अधिकार के लिए पुरूष प्रधान संस्कृति की परंपरागत सामाजिक आदालतों से लड़ रही है, अपनी आवाज़ बुलंद कर रही है। इसी आवाज को लेकर समकालीन साहित्यकार अपनी कलम से जनक्रांति लाने का प्रयास कर रहे हैं।

संदर्भ संकेत :

1. शब्द-ब्रह्म, भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्टीय मासिक शोध पत्रिका, जुलाई-2017, पृष्ठ संख्या-4।
2. डॉ.रूपा सिंह, स्वातंत्र्योत्तर स्त्री विमर्श और स्त्री-अस्मिता, ओमेगा प्रकाशन, नई दिल्ली- 2012, पृ.सं. भूमिका से।
3. डॉ.सुर्यनारायण रणसुभे, आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास, विकास प्रकाशन, कानपुर-2005, पृ.266
4 डॉ.रूपा सिंह, स्वातंत्र्योत्तर स्त्री विमर्श और स्त्री-अस्मिता, ओमेगा प्रकाशन, नई दिल्ली- 2012, पृ.सं. 141।
5. डॉ.विजय बहादुर सिंह, मैत्रेयी पुष्पा स्त्री होने की कथा पृ.7
6. डॉ.विजय बहादुर सिंह, मैत्रेयी पुष्पा स्त्री होने की कथा पृ.39
7. संपादक सत्यवृत, समकालीन साहित्य समाचार(पत्रिका) अक्तूबर-2012 पृ. 35
8. डॉ.विजय बहादुर सिंह, मैत्रेयी पुष्पा स्त्री होने की कथा पृ.59

हिंदी भाषा चिंतन और चुनौतियाँ

डॉ.बालाजी श्रीपती भुरे

प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग शिवजागृती वरिष्ठ महाविद्यालय, नलेगाँव ता. चाकुर जि.लातूर।

मनुष्य सामाजिक प्राणी होने के नाते समाज में रहकर ही अपनी जीविका तथा विकास करते आया है और आगे भी करता रहेगा यही उसके जीवन का वास्तविक सत्य है। मनुष्य के जीवन का आधार भाषा मात्र है। भाषा के आधार पर मानव समाज की निर्मित हुई है। समाज में मनुष्य भाषा के माध्यम से अपने विचारों का आदान-प्रदान करता है या यों कहिए कि मनुष्य तथा समाज की संपूर्ण गतिविधियां भाषा पर ही आधारित होती है। भारत एक बहुभाषी देश है। यहां प्रत्येक राज्य की अपनी स्वतंत्र भाषा है और हर भाषा का अपना अपना महत्व है। अतः प्रशासनिक कार्य के लिए आजादी के बाद भारतीय संविधान में प्रत्येक राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों के लिए हिंदी के अतिरिक्त इक्कीस अन्य भाषाओं को राजभाषा के रूप में स्वीकार किया गया है। इस प्रकार संविधान की अष्टम सूची में कुल 22 भारतीय भाषाओं को स्थान प्राप्त हुआ है जिसमें से हिंदी भाषा एक है।

भारत में राज्यभाषा, राजभाषा, संपर्क भाषा के अतिरिक्त बोली, मानक भाषा, साहित्यिक भाषा, प्रयोजनमूलक भाषा आदि हिंदी के विविध रूप पाए जाते हैं। इनमें से बोलनेवालों की संख्या, साहित्य, हिंदी भाषी प्रांतों की संख्या, लिपि की वैज्ञानिकता, आजादी के आंदोलन में मिला उसका योगदान आदि को ध्यान में रखकर संविधान ने देश की राजभाषा के रूप में 14 सितम्बर 1949 को हिंदी भाषा का स्वीकार किया। आज हिंदी देश के साथ-साथ विदेशों में भी फैलती जा रही है। यहाँ हम हिंदी भाषा के विकास एवं स्थिति को लेकर तथा राष्ट्रभाषा, राजभाषा, अंतर्राष्ट्रीय भाषा के रूप में उसके बढ़ते कदम को लेकर चिंतन कर रहे हैं। इस चिंतन में हिन्दी के विकास में आ रही बाधाएं एवं चुनौतियों के साथ-साथ उसके समाधान को भी यहाँ ढूंढने का प्रयास किया जाएगा। पहले यहाँ राष्ट्रभाषा, राजभाषा और विश्व भाषा के रुप में हिन्दी भाषा को विश्लेषित करना अभीष्ट होगा। जैसे -

राष्ट्रभाषा :-

हिंदी भारत की आत्मा है, जो यहां के निवासियों के दिलों दिमाग में विराजमान है। भारत के विशाल एवं विस्तृत भू प्रदेश में 24 प्रमुख भाषाएं और 2800 उपभाषाएं बोली जाती हैं, जो हमारे राष्ट्र की अनमोल पूंजी है। इन सभी भाषाओं की बड़ी बहन हिंदी भाषा अपनी उत्तरोत्तर प्रगति कर रही है। किसी भी देश की स्वतंत्रता की पहचान उस देश की राष्ट्रभाषा होती है। महात्मा गांधीजी ने सही कहा था कि, "कोई भी देश सच्चे अर्थों में तब तक स्वतन्त्र नहीं है, जब तक वह अपनी भाषा में नही बोलता।"1 अतः उन्होंने 1909 में हिन्द स्वराज में स्पष्ट रुप से लिखा भी था कि, " हिन्दी ही भारत की राष्ट्रभाषा हो सकती है।" इतना ही नहीं उन्होंने हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने के लिए अथक प्रयास भी किए थे। लालबहादुर शास्त्री ने जिस हिंदी को पढ़ना और पढाना राष्ट्रीय कर्तव्य समझा था, वही हिंदी छोड़कर आज हमारा अंग्रेजी को अपनाना मानो राष्ट्रीय कर्तव्य बन गया है। कहां गई हमारी राष्ट्रीय भावना ? कहाँ गया हमारा राष्ट्राभियान ? हिंदी की प्रसिद्ध लेखिका महादेवी वर्मा ने लिखा है, " जब तक हिंदी राष्ट्रभाषा के रूप में संपूर्ण भारत में नहीं बोली जाती तब तक राष्ट्र गूंगा व बहरा रहेगा।" इतना ही नही मातृभाषा या निज भाषा के महत्व को स्पष्ट करते हुए महान साहित्यकार भारतेंदु हरिश्चंद्र ने भी कहा है -

"निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।
बिनु निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल।" 2

साथ ही साथ राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने भी कहा है, " जिसमें न निज भाषा तथा निज देश का अभिमान है, वह नर नहीं है, निरा पशु है, और मृतक समान है।" अतः देश के विकास के लिए एवं वैश्विक पहचान के लिए हिन्दी का राष्ट्रभाषा बनना बहुत आवश्यक है।

राजभाषा :-

सामान्यतः अधिकांश देशों में राष्ट्रभाषा ही राजभाषा की भूमिका निभाती है। इसीलिए कुछ लोग राष्ट्रभाषा और राजभाषा को एक ही समझते हैं। वैसे राष्ट्रभाषा एक व्यापक अवधारणा है और राजभाषा मात्र शासकीय व्यवहार तक सीमित अवधारणा है। अर्थात "जो भाषा किसी राज्य के सरकारी कार्यों में सर्वाधिक प्रयुक्त होती है, उसे 'राजभाषा' कहा जाता है।"3 राष्ट्रभाषा एक ही हो सकती है लेकिन राजभाषाएं एक से अधिक भी हो सकती है। स्वतन्त्र भारत में हिंदी संघ की राजभाषा है और अष्टम अनुसूची में लगभग 22 भाषाएं अपने-अपने प्रांत में राजभाषा के रूप में भूमिका निभा रही है। आज हिंदी संघ की राजभाषा के रूप में विविध प्रांतों को विविध, जाति, धर्म के लोगों को एक दूसरों के साथ वैचारिक और भावनिक दृष्टि से जोड़ने का महत्वपूर्ण दायित्व निभा रही है। लेकिन सरकारी कार्यालयों तथा दफ्तरों में अगर हम गौर से देखते हैं, तो राजकाज की भाषा हिंदी होकर भी अंग्रेजी का प्रयोग अधिक मात्रा में किया जा रहा है। लगता है हिंदी अनुवाद की भाषा मात्र बनकर रह गई है। अतः संघ की राजभाषा के रूप में केवल हिंदी को स्थापित किया जाए, तो निश्चित रूप से हिंदी का भविष्य उज्ज्वल होगा।

विश्वभाषा :-

किसी भी भाषा का अंतरराष्ट्रीय संदर्भ तभी बन जाता है जब वह भाषा संसार के कई देशों में पढी और पढ़ाई जाती हो, उसके साहित्य में भी ऐसी सामग्री होनी चाहिए, जो साहित्य, इतिहास, सभ्यता, संस्कृति, धर्म और दर्शन आदि में अंतरराष्ट्रीय अभिरुचि उत्पन्न कर सके। वह किसी बड़े और महत्वपूर्ण देश की भाषा हो तथा उसका देश की राष्ट्रभाषा, राजभाषा और संपर्क भाषा के रूप में उपयोग किया जाता हो। लगता है हिंदी भाषा को लेकर ये सभी बातें लागू हो सकती है। विश्व की दृष्टि से देखा जाय तो मारीशस के लिए हिन्दी काफी कारगर साबित हुई है। इस बात को लेकर डॉ.धर्मवीर भारती जी ने द्वितीय विश्व हिंदी सम्मेलन में संयोजक के नाते कहा भी था कि, " मैं संसार में मारीशस का विशेष महत्व इस दृष्टि से भी मानता हूँ कि यह एक ऐसा देश है जिसने अपनी आजादी की लड़ाई हिंदी भाषा के सहारे लड़ी और उन मूल्यों की, मानव अस्मिता की उस स्थापना के लिए उस अपनी भाषा के माध्यम से प्रयास किया।"4 महात्मा गांधीजी की अहिंसात्मक लडाई में हिन्दी के योगदान को लेकर विश्व कैसे भूल सकता है। काका साहिब कालेलकर अकसर कहा करते थे कि, "अहिंसात्मक लड़ाई लड़नेवाली यह भाषा सारे संसार को आजादी का संदेश दे सकती है और दमन के खिलाफ आवाज उठा सकती है।"5 आज विश्व के कई देशों ने हिन्दी के बढते महत्व को पहचाना है। इसीलिए लंदन के वरिष्ठ पत्रकार मार्क टेली ने अपने एक साक्षात्कार में कहा था कि, "हिंदी विश्व की भाषा है और विश्व में कभी भी हिंदी में बोलने में गर्व का अनुभव होता है।"6 परिणामस्वरूप आज मारीशस, फिजी, सूरीनाम, दक्षिण अमेरिका, वेस्ट इंडीज, दक्षिण अफ्रीका, बर्मा, नेपाल, हॉलैंड, इंग्लैंड, कनाडा, जापान, चीन आदि कई देशों में आज हिंदी महाविद्यालय, विश्वविद्यालय में पढ़ाई जा रही है तथा वहां हिंदी भाषा में पत्र पत्रिकाएं छप रही है। परिणाम स्वरुप प्रतिवर्ष 10 जनवरी को विश्व हिन्दी दिवस मनाया जा रहा है।

चुनौतियाँ :-

यहाँ राष्ट्रभाषा, राजभाषा और विश्व भाषा के रुप में हिन्दी भाषा पर चिंतन करने के पश्चात हिन्दी के विश्व भाषा रुप को तो छोड़ो आज हिन्दी पूरी तरह से भारत की न राजभाषा बनी है, न राष्ट्रभाषा बनी है। हिन्दी को अपने विकास में कई चुनौतियों का सामना करना पड रहा है। उन चुनौतियों को हम निम्नलिखित बिन्दुओं के सहारे विश्लेषित करने का प्रयास कर रहे हैं। जैसे -

संवाद की भाषा :-

मनुष्य का जीवन ही आपसी समझ पर आधारित रहता है। इस दृष्टि से वही भाषा जीवित रह सकती है जिसका प्रयोग जनता करती रहती है। आजादी के समय संवाद की भाषा के रुप में हिन्दी का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। ऋषि दयानंद सरस्वती की दृष्टि से उनके " संदेश को राजमहलों से लेकर गरीब की झोपड़ी तक पहुंचानेवाली भाषा हिंदी थी।"7 तात्पर्य भारत में लोगों के बीच संवाद का सबसे बेहतर माध्यम हिंदी है। अतः संपूर्ण भारतीयों तथा भिन्न भाषा-भाषी लोगों के बीच संवादों की भाषा हिंदी किस प्रकार बनी रहे इस पर हमें अधिक ध्यान देना होगा ताकि उसकी जीवंतता और उपयोगिता बरकरार रहे।

राजाश्रय से वंचित :-

हिंदी के विकास में केवल अंग्रेजी भाषा तथा उसका हो रहा विस्तार ही एकमात्र बाधा नहीं है। बल्कि राष्ट्र की राजनीतिक परिदृश्य में देखा जाए तो हिंदी अपेक्षित राजश्रय से वंचित रही है। संविधान के स्पष्ट निर्देश होने के बावजूद भी हिंदी को अभी भी राष्ट्रभाषा के रूप में तथा राजभाषा के रूप में उचित स्थान प्राप्त नहीं हुआ है, जो होना था। भारत सरकार द्वारा 1956 में हिंदी भाषा के समक्ष आयी चुनौतियों के निराकरण के लिए तथा संपूर्ण राष्ट्र में हिंदी भाषा के प्रसार प्रसार करने हेतु राजभाषा आयोग 1956 का गठन किया गया और उसके पश्चात प्रत्येक 10 वर्ष की अवधि के पश्चात इस प्रकार के राजभाषा आयोग भी गठित किए गए और उनके प्रतिवेदन भी आते रहे हैं। लेकिन राष्ट्र के समक्ष उत्पन्न अन्य चुनौतियों के सापेक्ष हिंदी भाषा के विकास एवं प्रचार प्रसार के लिए अपेक्षित महत्व नहीं दिया गया। अतः हिंदी का प्रचार प्रसार जितनी तीव्रता के साथ होना चाहिए था उतना नहीं हो सका। सन 1963 में इसी कारण भारत की संसद ने राजभाषा अधिनियम 1963 नामक कानून भी बनाया लेकिन इसके बावजूद भी हिंदी राजकाज की भाषा के रूप में उचित स्थान नहीं पा सकी।

अंग्रेजी स्कूलों के प्रति मोह :-

अंग्रेजी बोलनेवालों की संख्या की दृष्टि से देखा जाए, तो आज हमारे देश में कुल जनसंख्या के केवल तीन प्रतिशत लोग ही अच्छी तरह से अंग्रेजी बोल सकते हैं या जान सकते हैं। ये लोग अंग्रेजी में कार्य करके तथा अंग्रेजी में बोलकर हमारे देश की जनता को अपनी ओर आकर्षित कर रहे हैं जिसके कारण हमारे देश की जनसंख्या इन तीन प्रतिशत लोगों की और आकर्षित हो रही है। परिणामस्वरुप आज देश में जिधर देखो उधर अंग्रेजी स्कूलों की भरमार हमें दिखाई दे रही है। देश के लगभग सभी राज्यों के प्रमुख शहरों में, देहातों में अंग्रेजी स्कूल दिन ब दिन बढ़ते ही जा रहे हैं। अंग्रेजी न जाननेवाला तथा किसी भारतीय भाषाओं को पढानेवाला अध्यापक भी अपने बच्चों को अंग्रेजी स्कूल में पढाना चाहता है। यह अंग्रेजी स्कूल के प्रति बढ़ता मोह भी हिंदी के सामने एक बड़ी चुनौती के रुप में खडा हुआ दिखाई देता है।

सरकारी कामकाज में हिन्दी की उपेक्षा :-

यह दुर्भाग्य की बात है कि हमारे देश की केंद्र व राज्य सरकारों द्वारा समय-समय पर दिए गए निर्देशों के बावजूद भी आज सरकारी कर्मचारी अपने कार्य को अंग्रेजी के माध्यम से करने में ही अपनी प्रतिष्ठा

समझने लगते हैं। सरकारी कार्यालय के कर्मचारी हिंदी में कार्य करना नीरस समझते हुए एक दृष्टि से हिन्दी भाषा की उपेक्षा ही करते हैं। सरकार द्वारा दिए गये टाइपराइटरों, हिंदी आशुलिपिकों तथा हिंदी कंप्यूटरों के होने के बाद भी आज हिंदी में काम करना वे पसंद नहीं करते। वे अच्छी तरह से हिंदी में बोलते हैं और लिखते भी हैं लेकिन दफ्तरों में प्रतिदिन कार्य करते समय वह अंग्रेजी भाषा का ही प्रयोग करते रहते हैं। ऐसी मानसिकता अक्सर उच्च वर्ग के लोगों में तथा अधिकारियों में हमें दिखाई देती है, जो हिंदी के विकास के लिए बड़ी चुनौती लगती है।

सामाजिक कार्यों में हिन्दी की उपेक्षा :-

सरकारी कामकाज में ही नहीं अगर समाज की बात करें, तो हमारे देश में अधिकतर जनता हिंदी जानती है, पढ़ती है, लिखति है और बोलती है लेकिन अपने सामाजिक कार्य में वे हिंदी की जगह अंग्रेजी का प्रयोग करने में ही अपनी प्रतिष्ठा समझती है। जैसे- शादी का निमंत्रण छपवाना हो, जन्मदिन मनाना हो या किसी का अभिनंदन करना हो तब भले ही उन्हें अंग्रेजी का ज्ञान न हो, तो भी अपनी प्रतिष्ठा को दिखाने के लिए वे अंग्रेजी बोलने या लिखने का प्रयत्न करते हैं। तात्पर्य समाज में सामान्य व्यक्ति भी अपनी झूठी प्रतिष्ठा को प्रदर्शित करने के लिए अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग करते हैं, जो हिंदी के विकास में बड़ी चुनौती है।

वैकल्पिक शब्दों के प्रयोग पर बल :-

हिंदी के विकास के लिए वैकल्पिक शब्दों पर अधिक बल देना चाहिए लेकिन लेकिन कई ऐसे शब्द है जो विधि के क्षेत्र में या विज्ञान के क्षेत्र में प्रयोग में आते हैं, जो आम लोगों के समझ के परे हैं। जैसे- मौजा, हुकुम, फौजदारी, मुखबिर, तहरीर, शहादत, मजमून आदि ऐसे कई शब्द हैं जिसे देश के अधिकतर लोग नहीं जानते और ऐसे शब्दों सामना उन्हें कचहरी में, पुलिस थाने में, न्यायालय में करना पड़ता है। ऐसे समय यह आवश्यक नहीं है कि इन शब्दों को हटा दिया जाए बल्कि उनके जगह अगर हिंदी के वैकल्पिक या समानार्थक शब्दों का प्रयोग किया जाए, तो निश्चित रूप से हिंदी के विकास में गति आ सकती है। लेकिन हिंदी में वैकल्पिक शब्दों पर अधिक बल नहीं दिया जा रहा है परिणाम स्वरूप कई शब्द सामान्य लोगों के लिए कठिन महसूस होते हैं और उनको हिंदी की ओर जितना आकर्षित होना चाहिए उतना नहीं हो पाते।

बाजार की भाषा :-

पराधीन भारत में अंग्रेजों ने स्वार्थ के कारण हिंदी भाषा को बाजार की भाषा नहीं बनाया था बल्कि बाजार के विकास में उससे सहायता ली थी। लेकिन आजादी के बाद आज उपभोक्ता की दृष्टि से भारत का महत्व अधिक बढ़ने लगा है। " दुनिया के बाजारों में भारत चौथे नंबर का सुरक्षित बाजार है, यहां कम जोखिम और कम अशांति है, अधिक कच्चा माल और सस्ते मजदूर मिलते हैं।"8 इसीलिए विविध उत्पादकों की बिक्री करने हेतु अनेक विदेशी कंपनियां भारत में आ रही हैं। उनकी नजर भारत के आम जनता पर अधिक है। इसलिए हिंदी तथा यहां की अन्य भारतीय भाषाओं को अपनाकर वे हमारी भाषाओं को नया रूप दे रहे हैं। उनके हिंदी विज्ञापन अंग्रेजी विज्ञापनों से भी अधिक लोकप्रिय बन रहे हैं। "बाजार में विज्ञापन की भूमिका अहम है। जिनके बढ़ते प्रभाव में हिंदी अधिक मधुर, गीतात्मक, अभिसारात्मक बनने लगी है। जिसके कारण आज के युग में हिंदी रोजगार की भाषा बन गई है।"9 लेकिन अभी हिन्दी देहातों की मंडी या बाजार से लेकर विश्व बाजार तक उतनी नहीं जुड सकी है, जितनी उसे जुडना था।

रोजगार का अभाव :-

कहा जाता है कि भूखे पेट कुछ भी नहीं जचता। तात्पर्य जो भाषा लोगों के जेब और भविष्य के साथ जुड़ जाती है वह अपने आप विकसित होने लगती है। आज दुनिया में लगभग 6000 से ज्यादा भाषाएं बोली जाती

हैं। इनमें से केवल एशिया में 2200 से अधिक भाषाएं बोली जाती है। इन भाषाओं के बीच में हिंदी के सामने रोजगार तथा करिअय के अभाव को लेकर बड़ी चुनौती है। हिंदी न पहले और न अब लोगों को रोजगार के साथ जोड़ पाई है। आज वर्तमान में भले ही धीरे-धीरे हिन्दी रोजगार के कई क्षेत्र काबिज कर रही है लेकिन लोगों करियर तथा रोजगार को लेकर हिंदी को जितना सक्षम होना चाहिए था उतना वह नही हो पाई है।

नई तकनीक के साथ तालमेल :-

नई तकनीकी ने आज मनुष्य के विकास में चार चांद लगा दिए हैं। इनमें से मोबाइल, एप्स, इंटरनेट, गैजेट्स के इस युग में अगर हिंदी को भी उसी तरीके में ढाला जाए, तो निश्चित रूप से हिंदी का विकास एवं विस्तार गति से होगा। वैसे आज सोशल मीडिया के विविध टूल्स और नये-नये तकनीकों में हिंदी का प्रयोग होने लगा है। फेसबुक, ट्विटर पर करोड़ों लोग आज जुड़ रहे हैं। इतना ही नहीं विज्ञान के क्षेत्र में भी हमें डॉक्टर या इंजीनियरी के पाठ्यक्रमों की पुस्तकों को भी हिंदी में लाना होगा ताकि सामान्य विद्यार्थी भी उसे सहजता से अवगत कर सके और हिंदी का विकास भी गति से हो सके। लेकिन आज भी ऐसे पाठ्यक्रमों के हिन्दी अनुवाद की समस्या सरकार के सामने एक चुनौती के रूप में खड़ी है। हिंदी में तकनीकी पुस्तकों की पर्याप्त संख्या नहीं है। अतः तकनीकी पुस्तकें हिंदी माध्यम से प्रकाशित होनी चाहिए। ऐसी पुस्तकों को उपलब्ध कराना सरकार के सामने एक चुनौती का काम है। अतः हिंदी में तकनीकी पुस्तकों का अभाव हिंदी के विकास में बाधा बना हुआ है।

निष्कर्ष :-

कुल मिलाकर हिंदी भाषा ने अपने आरंभ से लेकर आज तक अपना विकास विविध क्षेत्रों में किया है। वह भारत में ही नहीं विश्व में बोली जा रही है। वैश्विकरण के कारण आज हिन्दी बाजार की भाषा बन गई है। ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में, तकनीकी के क्षेत्र में आज इस भाषा का प्रयोग हो रहा है। बावजूद इसी के हिंदी भाषा के विकास में आज भी कुछ चुनौतियां सामने आ रही है जिसमें अंग्रेजी स्कूलों के प्रति लोगों का बढता मोह, सरकारी कार्यालयों में हिंदी के प्रयोग की उपेक्षा, समाज की हिंदी के प्रयोग की अनभिज्ञता, वैकल्पिक शब्दों का अभाव, रोजगार की कमी आदि चुनौतियों को पूरा करने के लिए सरकार तथा समाज की ओर से कुछ कदम उठाने आवश्यक हैं। यहां इन चुनौतियों को सामने रखकर हिंदी के विकास के लिए कुछ समाधान खोजने का प्रयास किया गया है जिसे निम्नलिखित बिंदुओं के द्वारा प्रस्तुत किया जा रहा है। जैसे -

- भाषा वही जीवित रह सकती है जिसका प्रयोग जनता अपने जीवन में प्रतिदिन करती रहती है। अतः हिंदी भाषा को विकसित होने के लिए उसे जन संवाद की भाषा बनाना होगा।
- हिंदी को राष्ट्रभाषा और राजभाषा के रूप में विकसित होने के लिए उसे राजाश्रय की आवश्यकता है। अतः केंद्र और राज्य सरकारें हिंदी के विकास के लिए अधिक प्रयास करें।
- शिक्षित एवं अशिक्षित लोगों को अंग्रेजी के प्रति मोह त्यागकर हिंदी भाषा के माध्यम से लिखने-पढ़ने का प्रयास करना चाहिए।
- देश में हिंदी माध्यम से शिक्षा के स्तर को बढ़ाना चाहिए। स्कूलों, महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में हिंदी के प्रति अधिक रुचि उत्पन्न करने के लिए उसके अनिवार्य पठन पर जोर देना चाहिए।
- सरकार की ओर से देश की सरकारी एवं गैर सरकारी संस्थानों में हिंदी की अनिवार्यता के आदेश लागू करने चाहिए।
- देश में सभी सामाजिक कार्यों में हिंदी का प्रयोग करने के लिए लोगों को प्रेरित किया जाना चाहिए।

- विधि, बैंक तथा विज्ञान के क्षेत्र में हिन्दी शब्दों की कठिनाइयों को ध्यान में रखते हुए उसके वैकल्पिक तथा समानार्थी शब्दों के निर्माण एवं प्रयोग पर बल देना चाहिए।
- भले ही हिंदी आज बाजार एवं व्यापार की भाषा बनी हो, तो उसे और भी इस क्षेत्र में गतिशील बनाने की आवश्यकता है।
- भाषा के विकास के लिए सबसे महत्वपूर्ण है उसका रोजगाराभिमुख होना। अतः सरकार की ओर से तथा विविध संस्थाओं तथा कंपनियों की ओर से हिंदी भाषा के जरिए रोजगार के अवसर उपलब्ध कराने होंगे।
- ज्ञान विज्ञान के इस युग में नई तकनीकी के साथ हिंदी भाषा का तालमेल करना आवश्यक है। इसके लिए मेडिकल, इंजिनीयरी एवं अनुसंधान के क्षेत्र में उसका पाठ्यक्रम हिन्दी में बनाने में और भी गति देनी होगी।
- स्कूलों, विद्यालयों के जरिए बच्चों में हिंदी के प्रति रुचि उत्पन्न करनी होगा।

इस प्रकार हिंदी के आज राष्ट्र से विश्व की ओर बढ़ते कदम को और भी गति देने के लिए हमें उसके विकास में आ रही चुनौतियों का समाधान करना होगा। इन समाधानों के साथ ही निश्चित रूप से हिंदी भारत की राजभाषा के साथ-साथ राष्ट्रभाषा के रुप में विकसित होगी और वह दिन भी दूर नहीं होगा कि वह एक दिन विश्व भाषा के रूप में उभर कर सामने आएगी।

संदर्भ सूची :-

01) डॉ.शैलजा पाटील - वैश्विकता के संदर्भ में हिंदी - पृ.52
02) आचार्य रामचंद्र शुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ.263
03) डॉ.अंबादास देशमुख - भाषाविज्ञान एवं हिन्दी भाषा - पृ. 44
04) डॉ.भोलानाथ तिवारी - हिंदी भाषा का अन्तर्राष्ट्रीय संदर्भ - पृ.28
05) डॉ.भोलानाथ तिवारी - हिंदी भाषा का अन्तर्राष्ट्रीय संदर्भ - पृ.28
06) डॉ.कल्पना देशपांडे - हिंदी का वैश्विक परिदृश्य - पृ. 73
07) डॉ.मंजुलता विद्यार्थी - ऋषि दयानंद की हिंदी भाषा और साहित्य को देन - पृ. 73
08) प्रभाकर श्रोत्रिय - बाजारवाद में हिंदी - पृ.40
09) डॉ.शैलजा पाटील - वैश्विकता के संदर्भ में हिंदी - पृ.49

हिंदी उपन्यास साहित्य में चिंतन और चुनौतियाँ

डॉ . अमलपुरे सूर्यकांत विश्वनाथ

[अध्यक्ष हिंदी विभाग] डॉ . श्री . नानासाहेब धर्माधिकारी महाविद्यालय गोवे- कोलाड ,

तहसील - रोहा , जिला - रायगड , महाराष्ट्र , पिन- ४०२३०४

मो नं ९७६६७३१४७० /९४२१४५१७०३ ईमेल - sureshamalpure @ gmail. com

सारांश :-

साहित्य समाज का दर्पण होता है। हमारा पूरा समाज दो स्तम्भों पर खड़ा है ,एक पुरुष तो दूसरा स्त्री। पहलेसे ही दोनों का कार्य आपसी सहयोग से ही चलता आ रहा है। समाज विकास के लिए शिक्षा की आवश्यकता अधिक होती है पहलेसे ही शिक्षा का महत्त्व भारत में विभिन्न संतों ने बताया और समाज जाग्रति भी की है। आज समाज में हर वर्ग शिक्षा से अपनी स्वतंत्र पहचान साबित कर रहा है। फिर भी समाज में अनेक समस्या हमें दिखाई देते है। वृद्ध ,किसान, बालक , आदिवासी , नारी , अल्पसंख्यांक , अपाहिज, किन्नर अदि। दलित वर्ग के मसीहा डॉ .बाबासाहेब आंबेडकर जी ने दलितोद्धार के लिए क्रन्तिकारी कार्य किया है। वेदना ,नकार और विद्रोह से दलित साहित्य का निर्माण हुआ है। आज वर्तमान युग में अनेक विमर्श चल रहे है ,जिसमे सामाजिक एवं लोकतान्त्रिक भूमिका निभाता हुआ दिखाई दे रहा है।

कुंजी शब्द :-

उपन्यास, साहित्य , राजनीती , सामाजिकता लोकतंत्र ,विमर्श , सुधारक , क्रन्तिकारी विचार , दलित

, आदिवासी , छटपटाहट , हाशिये का समाज , चुनौतियाँ , चिंतन आदि।

संशोधन पद्धति :-

सर्वेक्षणात्मक एवं विश्लेषणात्मक संशोधन पद्धति ।

संशोधन के उद्देश्य :-

१] हिंदी उपन्यासों में सामाजिक तत्वों को देखना।

२] हिंदी उपन्यासों में सामाजिकता की भूमिका को देखना।

३] हिंदी उपन्यासों में चिंतन के मूल्यों को देखना।

४] हिंदी उपन्यासों में लोकतान्त्रिक तत्वों को देखना।

५] हिंदी उपन्यासों में चुनौतियाँ और चिंतन की भूमिका को स्पष्ट करना ।

प्रस्तावना :-

हिंदी साहित्य के अंतर्गत उपन्यास यह विधा श्रेष्ट रही है। कई उपन्यास और उपन्यासकरों ने अपनी रचनाओं से सामाजिकता और लोकतान्त्रिक, चुनौतियाँ और चिंतन की भूमिका को स्पष्ट किया है। वर्त्तमान में सामाजिक भूमिका को लेकर विभिन्न विमर्श की चर्चा की गई है। इसके कारन ही साहित्य में डार्फजनों विमर्श सामने आ गए है। मुख्य तौर पर आदिवासी , किन्नर , वृद्ध , विकलांग , स्त्री , दलित ,अल्पसंख्यांक आदि दिखाई देते है। प्रमुख उपन्यासकारों में नीरजा माधव , प्रभा खेतान , गोविन्द मिश्र , प्रदीप सौरभ , गिरिजा भारती ,

काशीनाथ सिंह, मणि मधुकर ,राजेंद्र मिश्र , एम्, एम्. चंद्र आदि। भारतीय समाज में अस्पृश्यता , जातिभेद का प्रभाव दिखाई देता है। इसका डटकर सामना साहित्यकारों ने अपने उपन्यासों में किया है।

हिंदी उपन्यास साहित्य में चिंतन और चुनौतियाँ

१] दोहरा अभिशाप में सामाजिक चिंतन की भूमिका :-

प्रस्तुत उपन्यास कौसल्या बसंत्री द्वारा लिखित आत्मकथात्मक उपन्यास है। इसमें लम्बे संघर्षपूर्ण कड़वे - मीठे अनुभवों को दिखने की कोशिश की है। इस उपन्यास की भूमिका के रूप में स्वय लेखगिका लिखती है - " मैं लेखिका नहीं हूँ ,ना साहित्यिक लेकिन अस्पृश्य समाज में पैदा होने से जातीयता के नाम पर जो मानसिक यातनाएँ सहन करनी पड़ी इसका मेरे संवेदनशील मन पर असर पड़ा। मैंने अपने अनुभव खुले मन से लिखे है। पुरुष प्रधान समाज औरतों का खुलापन खुलापन बर्दाश्त नहीं करता। पति तो इस तक में रहता है कि पत्नी अपने पक्ष को उजागर करने के लिए चरित्रहीनता का ठप्पा लगा दे। " -१

प्रस्तुत उपन्यास के माध्यम से वेदना ,आक्रोश और अमूल परिवर्तन की आकांशा से दलितों की अस्मिता के संघर्ष को एक नया आकर दिया है। लेखिका बैसंत्री डॉ बाबासाहेब के विचारों का अस्पृश्य समाज के लोगों के ऊपर बहुत गहरा प्रब हाव दिखाई देता है। उसका उल्लेख बार -बार कराती है जो उन्होंने उनकी हिम्मत बढाई , संघर्ष करने के लिए और अपने मानवीय हक्क के वास्ते लड़ने के लिए उन्हें प्रेरित भी किया है।

२] यमदीप उपन्यास में सामाजिक चिंतन की भूमिका :-

प्रस्तुत उपन्यास नीरजा माधव का हिंदी साहित्य जगत में हिजड़ों पर लिखा पहला स्वतंत्र उपन्यास माना जाता है। इसमें किन्नर समाज की स्थिति को दर्श्याय गया है। भले ही ये ना स्त्री है ,ना पुरुष परन्तु इनका जीवन तो है। वह व्यक्ति तो है ,समाज का हिस्सा भी तो है। समाज में इसके उपयोगी भूमिका की तरफ हमारा ध्यान आकर्षित कराती है और आर्थिक स्टार पर इनके लिए रोजगार उपलब्ध करने की बात भी बकरति है। इस उपन्यास की पात्र नजबीबी कहती है - " आप इस बस्ती में रह नहीं सकते बाबूजी और अपनी बेटी को अपने साथ रख भी नहीं सकते ..... दुनियाँ में बदनाम और हंसी हंसारत के डर से। हिजड़ी के बात कहलाना न आप बर्दाश्त कर पाएंगे और न आपके परिवार के लोग। लूली लंगड़ी होती यह , की कोटर होती , तो भी आप इसे अपने साथ रख सकते थे , इसलिए इसे अब इसके हेल्पर छोड़ दीजिए। यही इसका भाग्य था. ..... यही शब्द था। ..... सोच लीजिए ,मर गई सब्र कर लिया। "-२

यह शीर्षक सार्थक है यमदीप ,जिसके पीछे भी इनकी विडम्बना है। अच्छे घरों में पैदा हुए बठे थर्ड जेंडर के लोग उस दीपक की तरह होते है जो दीपावली से एक दिन पहले यमराज के नाम निकलकर कूड़ेकरकट या धुरे पर रख देते है, उस समय पीछे पलटकर देखना अशुभ माना जाता है , किन्नर समुदाय का मानना है कि समाज में हमारे लिए भी अच्छी जगह हो , हमें समझने की कोशिश करे , लोकतंत्र की भूमिका में भी हमें स्थान दे। आज इस समाज के प्रति जागरूकता होने की जरुरत अधिक है।

३] अन्या से अनन्या उपन्यास में सामाजिक चिंतन की भूमिका :-

हिंदी साहित्य की प्रसिद्ध लेखिका प्रभा खेतान का यह प्रसिद्ध उपन्यास माना जाता है। प्रस्तुत उपन्यास में अपने जीवन के सुख- दुखात्मक प्रसंगों का यथार्थ चित्रण किया है। लेखिका स्वंय लिखती है - " आत्मकथा लिखना तो स्ट्रीप्सिस का नाच है। आप चौराहे पर एक- एक कर कपडे उतारते जाते है। लिखनेवाले के मन में आत्मप्रदर्शन का भाव किसी न किसी रूप में मौजूद रहता है , मन के किसी कोने में हलकी सी चाहत रहती

है कि लोग उसे गलत नहीं समझे कि जो कुछ भी वह लिखरहा है उसे सही परिप्रेक्ष्य में लिया जय , पर दर्शक वृन्द अपना -अपननिर्णय लेने में स्वतन्त्र है। उनका मन वे इस नाच को देखे या फिर पलटकर चले जाये। "-३

प्रभा खेतान परिओवर की पांचवी संतान होने के कारन वे उपेक्षित थी। हमेशा दुःख -दर्द को झेला है। माँ के होते हुए भी मातृत्व से वंचित रही है। दाई माँ के द्वारा ही पालन -पोषण हुआ था। आगे विवाहित डॉक्टर सर्राफ से प्रेम कराती है। गर्भपात कर स्वय को सर्राफा की प्रेमिका घोषित कराती है। आगे चलकर कलकत्ता के चेंबर ऑफ़ कॉमर्स जैसी व्यापारिक संस्था की पहली महिला अध्यक्ष्य भी बनती है। इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास में स्वय के अनुभव के आधार पर नारी नियति और त्रासदी को व्यक्त किया है। स्त्री कोयह समझना होगा कि प्रगति का प्रशस्त मार्ग घर की देहरी से निकलकर ही प्राप्त हो सकता है। यह आत्मकथा एक संघर्षशील और सफल स्त्री के सक्षमीकरण का जिवंत दस्तावेज है। एक अविवाहित स्त्री का विवाहित डॉक्टर से पागलपन के हद तक का प्रेम करना और उस प्रेम को टीकाएँ रखना उनके व्यक्तित्व की उदात्तताका परिचायक है। निसंदेह प्रभा खेतान की आत्मकथा उनके अन्य से अनन्य बनाने की यात्रा है।

४] कोहरे में कैद रंग उपन्यास में सामाजिक चिंतन की भूमिका :-

गोविन्द मिश्र लिखित उपन्यास कोहरे में कैद रंग में नारी जवान के विविध पहलुओं को दर्शाया गया है। इसमें नारी की मनोदशा का सजीव चित्रण किया है। एक औरत जब भगवन से यह माँगती है की क्या काम करने से उसको फिर नारी जन्म नहीं मिलेगा ?इसका यह तात्पर्य हुआ की नारी को समाज में ,घर ,परिवार में परायों की तरह जीवन जीना पढ़ रहा है। नारी को उपेक्षा का जीवन जीना पढ़ रहा है। हमारे भारतीय समाज में औरतों को हमेशा सम्मान की दृष्टी से देखने की बातें की जाती है ,लेकिन यह बातें सिर्फ ऊपरी है। इसके बारे में मिश्र जी लिखते है -" लड़कियाँ चाहे वे कितने बड़े घर की हो उनका जीवन ,भविष्य एक बारीक़ तंतु पर लटका होता है। उन्हें सबसे ज्यादा डर अपनी बदनामी का होता था. धरती पर पेअर पड़ते ही वे उस बात को लेकर सचेत हो जाती है। "- ४

समाज में नारी को किस तरह हाशिए पर व् रखा जाता है इसका बेबाक चित्रण इस उपन्यास में किया है। यही सामाजिकता और लोकतान्त्रिक भूमिका इस उपन्यास से स्पष्ट हो जाती है।

५] अस्तित्व उपन्यास में सामाजिक चिंतन की भूमिका :-

हिंदी साहित्य में युवा लेखिका के रूप में प्रसिद्ध गिरिजा भारती का यह अस्तित्व प्रथम उपन्यास है। इसमें समाज में उपेक्षित वर्ग किन्नर के जीवन की गाथा का यथार्थ चित्रण किया है। विवाह के चार वर्ष बाद प्रीत इस लड़की का जन्म हो जाता है। पर वह किन्नर के रूप में है। समय के साथ प्रीत बड़ी होती है। उसे पता चल जाता है कि वह आम लड़की नहीं बल्कि किन्नर है। समाज में कुछ लोग सदा से ही हाशिए पर रहे है, वे समाज का हिस्सा होते हुए भी हमेशा से ही उपेक्षित रहे है। जिसमे दलित , आदिवासी ,किन्नर आदि। प्रस्तुत उपन्यास में किन्नरों के साथ समउ में हो रहे व्यवहार को दर्शया गया है। प्रीत अपनी पढाई पूरी करके नौकरी करने लगाती है। मगर मन में अक्सर दुखी भी होती है और मन ही मन सोचती है - " क्या किन्नर को सामान्य जीवन जीने का कोई अधिकार नहीं है ,क्या उसे परिवार और समाज में नफ़रत से देखा जाना चाहिए ?" - ५

इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास सिर्फ किन्नर विमर्श को ही लेकर आगे बढ़ता है ,ऐसा नहीं बल्कि वह एक समाज में व्याप्त अनेक समस्याओं के प्रति सचेत करता है। हमारा समाज पढ़ा- लिखा होने के बावजूद भी विवाह को ही लड़की की नियति मनाता है। एक माँ का अपनी किन्नर बेटी के भविष्य के प्रति चिंतित रहना समाज में

उसकी पहचान बनाने तथा उसके अस्तित्व के प्रति अपने घर- परिवार , सगे सम्बन्धी और समाज से भावना मुखर हुई है वह निश्चित रूप से सराहनीय है।

६] रेहन पर रग्घू उपन्यास में सामाजिक चिंतन की भावना :-

हिंदी साहित्य के प्रसिद्ध उपन्यासकार काशीनाथ सिंह जी की यह प्रसिद्ध रचना है।इसमें वर्त्तमान समाज के बुजुर्ग वर्ग की समस्या का यथार्थ चित्रण किया है। भारत में वृद्धों की स्थिति बहुत अच्छी नहीं है।वयोवृद्ध लोगों की बढाती आबादी के साथ - साथ उनकी परेशानियों में भी वृद्धि हो गई है। जैसे - उनको घरों में कैद करना , बिमारिओं में ध्यान न देना , मरना , पीटना आदि। वैसे यह उपन्यास वैश्विक समस्याओं से जुड़ता हुआ दिखाई देता है। इस उपन्यास का नायक रघुनाथ है जो बनारस के समीप पहाड़पुर गाँव से अमेरिका तक फैला हुआ है। विकास की आँधी दौड़ में रघुनाथ अपनी संतानों को सिर्फ आर्थिक रूप से सफल होने के नुक्से अख्तियार करने पर जोर देने के चक्कर में मानवीय संवेदना की घुट्टी पिलाना भूल जाता है। रघुनाथ की साडी शक्ति और साडी बुद्धि ,पूँजी उन्हें ही संवारने में लगी रही है। सामाजिक विडम्बनाके भंवर में फंसा रघुनाथ वॉलंटरी रिटायर्डमेंट लेकर गाँव बस जाता है। जब पहलीबार रघुनाथ को रिटायर्डमेंट का और बुढ़ापे का एहसास होता है तब वह फुट -फुट कर रोने लगता है। विडम्बना तो यह है कि जिनके भविष्य को रोशन करने के लिए यह जानलेवा संघर्ष किया वह संतान इस भयावह स्थिति में भी उसका साथ नहीं देती। बेबस और हताश रघुनाथ पत्नि को कहता है -" जाने कहाँ से इतने नालायक और निकम्मे लडके पैदा हो गए -साले पिछले जन्म के पाप। "-६

उपन्यास में मौजदा परिस्थिति में वृद्ध पीढ़ी की दर्दनाक स्थिति का वास्तविक चित्र खींचते है। वृद्धों के दैहिक तफलीकों का सामना कारना पड़ता है। आज के वर्त्तमान समाज में वृद्ध विमर्श बहुत ही चर्चित विषय रहा है। इसलिए यह उपन्यास नए युग की वास्तवित्काकी बहुस्तरीय गाथा है।

७] पिंजरे में पन्ना उपन्यास में सामाजिक चिंतन की भूमिका :-

मणि मधुकर का यह उपन्यास लघु उपन्यास माना जाता है। इसमें राजस्थान के गाड़िया लुहार आदिवासी जाती के जीवन को केंद्र में रखकर लिखा गया है। ग्रामीण नारी के शोषण को विस्तार से विवेचन इसमें किया है। इसके सम्बन्ध में डॉ. पांडुरंग पाटिल लिखते है - " सामंती वर्ग से लोकजीवन की नारी शोषित पाई जाती है। उपन्यास के शीर्षक से ही कारा में जकड़ी नारी की व्यथा संकेत मिलता है। यहाँ पन्ना निम्न शोषित नारी है तो पिंजरा पूंजीवादी शोषक व्यवस्थाका प्रतिक है। उपन्यास की नाईका पन्ना को रिछपाल ठाकुर अपनी रखैल बनाना चाहता है , जो स्वाभिमानी पन्ना को पसंद नहीं। वह जब रिछपाल का प्रकट विरोध कराती है तोरिछपाल के अहम् को ठेस पहुंचती है। इसी कारन वह पन्ना के साथ अमानुष व्यव्हार करता है। उसके घर को आग लगा देता है। "- ७

प्रस्तुत उपन्यास सामंती वर्ग के सामंती प्रवृत्ति का सूचक है। इसमें गाड़िया लुहार और उनके द्वारा निर्मित कला को प्रस्तुत उपन्यास में विशेष स्थान दिया है। नाईका तो हमेशा संघर्ष रत ही है। नारी कितनी भी मेहनत कर ले उसके आँखों में दो बूँद आँसू ही होते है। इस ग्रामीण सामाजिक शोषण का यथार्थ चित्रण इस उपन्यास में किया है। इस प्रकार यह उपन्यास आदिवासियों की व्यथा दिखाकर चुप नहीं बैठते नारी - पुरुष की आंतरिक पीड़ा और सामाजिक व्यथाको हु - बी हु खड़ा करके सामाजिक बदलाव का एक नया दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है।

८] यह गाँव बिकाऊ है उपन्यास में सामाजिक चिंतन की भूमिका :-

एम्. एम्. चन्द्रा द्वारा लिखित प्रसिद्ध उपन्यास है जिसमे कृषक जीवन का यथार्थ चित्रण किया गया है। भारत कृषिप्रधान देश है ,अस्सी प्रतिशत लोग खेती - किसानी करते है। किसानों की स्थिति अक्सर दयनीय रही है। अन्नदाता कहकर कसान को हमेशा सम्मान दिया जाता है किन्तु फिर भी उनका विकास नहीं हो रहा है। आज आत्महत्या बड़ी मात्रा में किसानों की हो रही है। सामाजिक जीवन में आए तीवृ बदलाव ,आर्थिक क्षेत्र में हुए आमूलचूल परिवर्तन ,राजनितिक लोगों का कृषि -व्यवस्था की ओर देखने का दृष्टिकोण और प्रकृति का भीषण प्रकोप है। जय जवान जय किसान का नैरा लगाने वाले इस देश के साहित्यकारों ने वर्त्तमान समय में संघरसरात किसान का केवल चित्रण ही नहीं किया बल्कि किसानों की इस स्थिति को उत्तरदाई सामाजिक ,आर्थिक और राजनितिक कारणों की पड़ताल भी की है।

आज का भारतीय गाँव इस उपन्यास की धुरी है। वह कथित उदारीकरण और निजीकरण की दें हैजिसने पिछले बीस - पच्चीस वर्षों में हमारे किसान वर्ग को अपनी गिरफ्त में लिया है। जहाँ बदलाव की कोई संभावनाय नहीं दिखाई देती। नायक कहता है - " मेरे पिताजी राजनीती में विश्वास नहीं करते उनका कहना है की गाँव की राजनीती बड़ी कुट्टी चीज है। " – ८

हिंदी उपन्यास साहित्य में चुनौतियाँ

हिंदी उपन्यास साहित्य में सामाजिक , धार्मिक ,राजनितिक चिंतन को लेकर अनेक चुनौतियाँ हमारे सामने दिखाई देती है। यह चुनौतियाँ आनेवाली पीढ़ी दर पीढ़ी के लिए महत्वपूर्ण साबित हो सकती है। जैसे की दोहरे अभिशाप में वेदना आक्रोश को लेकर अमूल परिवर्तन की आकांक्षा से दलितों के अस्मिता का संघर्ष दिखाई देता है। एक तो दलित समाज में पैदा होना और दूसरा फिर नारी के रूप में जन्म लेना यह दोहरा अभिशाप ही है। यही चुनौती इस हिंदी साहित्य में उपन्यास के द्वारा हमें लेखिका ने बताने की कोशिश की है।

यमदीप में नीरजा माधव जी ने भी किन्नर समुदाय को लेकर अनेक चिंतन किया है। यह चुनौतीभरा उपन्यास है जो किन्नर समाज का यथार्थ चित्रण इसमें दिखाई देता है। अन्या से अनन्या इस उपन्यास में भी प्रभा खेतान जी ने नारी विमर्श का यथार्थ चित्रण किया है। एक नारी के लिए अकेला जीवन जीना कितना म श्किल हो जाता है यही चबनौती है। कोहरे में कैद रंग इस उपन्यास में नारी जीवन के विभिन्न पहलुओं को दर्शाया है जिसमे नारी की पीड़ा ,दर्द , अकेलापन ,पुरुष सत्ता अदि ऐसे अनेक दर्जनों प्रश्नों के साथ यह उपन्यास शुरू होता है। अस्तित्व उपन्यास में गिरिजा भारती जी ने समाज में उपेक्षित वर्ग किन्नर समुदाय का यथार्थ चित्रण किया है। यह हाशिय का समाज आज भी उपेक्षित रहा है यह सबसे बड़ी हमारे लिए चुनौती है। रेहान पर रग्घू इस उपन्यास में काशीनाथ सिंह ने वर्त्तमान समाज में वृद्ध विमर्श का चित्रण किया है। आज के वर्त्तमान समाज में वृद्धों की संख्या बढ़ रही है। पढ़े -लिखे बेटे ही अपने बाप को वृद्धाश्रम में ले जाते है। यह आधुनिक चुनौती हमारे सामने खड़ी हो जाती है। पिंजरे में पन्ना इस उपन्यास में आदिवासीओ बसमाज को नलेकर चिनतांज़ किया है। इसमें गाड़िया लुहार एक आदिवासी जाती के जीवन का यथार्थ चित्रण है। यह भी एक बड़ी चुनौती हमारे सामने हो जाती है। यह गाँव बिकाऊ है इस उपन्यास में किसान जीवन का यथार्थ चित्रण किया है। कृषक जीवन की त्रासदी ,किसान की आत्महत्या इसका मुख्यः कारन हमारी सामाजिक ,राजकीय, आर्थिक व्यवस्था ही है। यही सबसे बड़ी चुनौती है।

निष्कर्ष :-

उपर्युक्त विवेचन के अनुरूप हम निष्कर्ष रूप से कह सकते है कि वर्तमान समय में जो साहित्य लिखा जा रहा है वह पूरा सामाजिक चिंतन को लेकर ही लिखा जा रहा है। आज समाज में अलग -अलग समस्याओं का उपजना कम नहीं है,उसे ही मिटने का कार्य साहित्यकार अपनी कृति के द्वारा कर रहा है। भ्रष्टाचार ,नारी ,वृद्ध , बाल , किसान , आदिवासी , किन्नर मजदूर , अल्पसंख्यांको की समस्याएँ उमड़ कर आ रही है। इन सभी विमर्शों को लेकर साहित्यकारों ने अपने -अपने उपन्यासों के माध्यम से सामाजिक समस्याओं को उजागर किया है। यही सबसे बड़ी चुनौती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूचि :-

१] कौशल्या बैसंत्री - दोहरा अभिशाप [उपन्यास] भूमिका से

२] नीरजा माधव - यमदीप [उपन्यास] पृ. ५०

३] प्रभा खेतान - अन्या से अनन्या [उपन्यास] पृ . २५५

४] गोविन्द मिश्र -कोहरे में कैद रंग [उपन्यास] पृ . ५६

५] गिरिजा भारती - अस्तित्व [उपन्यास] पृ . ४०

६] काशीनाथ सिंह - रेहान पर रग्घू [उपन्यास] पृ. ८५

७] डॉ . पांडुरंग पाटिल - नवम दशक के आँचलिक उपन्यास पृ .३०

८] एम् .एम्. चन्द्रा - यह गाँव बिकाऊ है [उपन्यास] पृ. १२०

B.Aadhar' International Peer-Reviewed Indexed Research Journal

Impact Factor -(SJIF) –8.632, Issue NO, (CDXLVI) 451-A

ISSN : 2278-9308 December, 2023

हिंदी पत्रकारिता के समक्ष चुन्नौतियाँ

प्रा. देविदास गणेशराव येळणे

हिंदी विभाग, नेताजी सुभाषचंद्र बोस महाविद्यालय, नांदेड

दूरभाष : 9604864231, ई- मेल –devidas.yelne@gmail.com

प्रो. डॉ. परविंदरकौर महाजन कोल्हापूरे

हिंदी विभागाध्यक्ष, नेताजी सुभाषचंद्र बोस महाविद्यालय, नांदेड

दूरभाष : 9422149208, ई- मेल –

मानव जो कुछ भी देखता है, उसे अन्य व्यक्तिओं के मध्य साझा करना चाहता है | अपने विचारों को व्यक्त करने पश्चात वह दूसरो की बातों को भी जानना चाहता है | किसी घटना को परखना, उसे दूसरों को बताना,उस पर विचार- विमर्श करना मानव आत्मा की एक सहज प्रवृति है | इसी अभिव्यक्ति की प्रवृति के कारण जन – माध्यम का अविष्कार हुआ | दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है की ज्ञान प्राप्ति की उत्कंठा ने भाषा को जन्म दिया | समाज में एक दूसरे की कुशलता जानने की प्रबल इच्छा शक्ति ने पत्रों के प्रकाशन को बढावा दिया | पहले ज्ञान रूपी दिव्य शक्ति सुविधा प्राप्त मूटठीभर लोगों की थाती थी, उसे पत्रकारिता द्वारा सर्वसुलभ कराया गया | परिस्थितियों के अध्ययन, चिन्तन, मनन और आत्माभिव्यक्ति की प्रवृत्ति तथा 'सब जन हिताय सब जन सुखाय' के प्रति व्यग्रता ने पत्रकारिता को जन्म दिया |

आज के परिप्रेक्ष्य में यदि हम हिंदी पत्रकारिता की बात करते है तो हिंदी पत्रकारिता की शुरवात बंगाल से हुई और इसका श्रेय राजा राममोहन राय को दिया जाता है | राजा राममोहन राय ने सबसे पहले प्रेस को सामाजिक उद्देश्य से जोड़ा, भारतीयों के सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक, आर्थिक हितों का समर्थन किया | समाज में व्याप्त अंधविश्वास और कुरीतियों पर प्रहार किये और अपने पत्रों से अपने उदबोधन से जनता में जागरूकता पैदा की | 30 मई, 1826 को कलकत्ता से पंडित जुगल किशोर शुक्ल के संपादन से निकलने वाले 'उदन्त मार्तण्ड' को हिंदी का पहला समाचार पत्र माना जाता है | सुखद बात यह है की यह पत्र बंगाल से निकला और बंगाल में ही हिंदी पत्रकारिता के बीज प्रस्फुटित हुए | 'उदन्त मार्तण्ड' इस पत्र का मुख्य उद्देश्य भारतीयों को जागृत करना तथा भारतीयों के हितों की रक्षा करना था |

हिंदी पत्रकारिता के समक्ष वर्तमान में तमाम चुनौंतियाँ है जिसका सामना हिंदी पत्रकारिता से जुड़े लोग कर रहे है | हिंदी पत्रकारिता ने जैसे- जैसे अपने पैर पंसारने शुरू किये, ठीक उसी के अनुपात में चुनौतियाँ विस्तार करती गई | हिंदी पत्रकारिता की चुन्नोंतियों के संदर्भ में बात करने से पहले इसे कई हिस्सों में समझने की जरुरत है | पहली अंग्रेजी पत्रकारिता, दूसरी हिंदी व अन्य भारतीय भाषाओं के बड़े अख़बारों की पत्रकारिता और तीसरी क्षेत्रीय अख़बारों की पत्रकारिता | भारत में हिंदी पत्रकारिता के जन्मगाथा की बात करे तो आजादी के आंदोलन की कोख से सुरु हुई है, इस संदर्भ में डॉ. अर्जुन तिवारी कहते है की- "वास्तव में हिंदी पत्रकारिता का जन्म स्वाभिमान के संचार, स्वदेश प्रेम के उदय एवं आंग्ल शासन के प्रबल प्रतिरोध हेतु हुआ | स्वतंतत्रा आन्दोलन के मुख्य पात्र पत्रकार ही थे | भारत के स्वाधीनता संग्राम तथा उसकी सफलता में पत्रकारों के लेख, उनके विचारोत्तेजक तर्क तथा प्रेरक नारों ने देश का मार्गदर्शन किया |"आजादी के संघर्ष के समय पत्रकार स्वतंत्रता सेनानी की भूमिका में थे | नि: संदेह वह हमारे हीरो थे लेकिन आज पत्रकारिता व्यवसाय में बदल गई है | "आज सारे के सारे हिंदी अख़बारों को मालिक या मैनेजर चला रहे हैं और संपादक नामक चीज दुर्लभ हो गई है|" इसी कारण यह सबसे बड़ी चुनौति बन गई है |

हिंदी पत्रकारिता के समक्ष चुनौतियाँ इस संदर्भ में हमें चर्चा करनी है तो हमें कुछ हद तक भाषागत चुनौतियाँ पर भी ध्यान देना जरुरी लगता है | संचार- क्रान्ति के इस युग में पत्रकारिता ने बड़ी तेजी से नई शक्ल का अख्तियार किया है | उपभोक्तावादी संस्कृति की चकाचौंध अख़बारों में बढती व्यावसायिकता और विभिन्न न्यूज़ चैनलों के बीच बढती प्रतिद्वंदिता ने एक ओर जहाँ पत्रकारों की जिम्मेदारी बढ़ा दी है वहीँ इनके भाषाई त्रुटियों के कारण पत्रकारिता का चारित्रिक स्खलन हो रहा है साथ ही साथ पत्रकारों का नैतिक पतन हो रहा है | इस वर्तमान काल का भयावह सच है बेरोजगारी| लेकिन ऐसे माहोल में हिंदी पत्रकारिता के बढते प्रभाव

ने रोजगार के अनेक अवसर प्रदान किये है | संचार प्राद्योगिकी के इस उन्नत माहौल में जादा अवसर भाषा अध्येता का है | लेकिन समाचार पत्रों में बढ़ती भाषागत त्रुटियाँ हिंदी पत्रकारिता की चुनौतियों को बढ़ा रही है | पत्रकारिता एक उच्छखल पहाड़ी दरिया की भांति होती है, जो जब-जब अपना रुख बदलती रहती है | आज पत्रकारिता कागज, कलम तक ही सिमित नहीं है अपितु ऑनलाइन हो गई है | आज भूमंडलीकरण के दौर में हिंदी पत्रकारिता की चुनौतियाँ न सिर्फ बढ़ गई है वरन उनके संदर्भ भी बदल गये है | पत्रकारिता के सामाजिक उत्तरदायित्व जैसी बातों पर सवालिया निशान है तो उसकी प्राकृतिक सैद्धांतिकता भी कठघरे में है | वैश्वीकरण और नई प्राद्योगिकी के घाल मेल से एक ऐसा वातावरण बना है, जिससे कई सवाल पैदा हुए है | इनके वाजिब व ठोस उत्तरों की तलाश कई स्तरों पर जारी है | वैश्वीकरण व बाजारवाद की इन चुनौतियों ने हिंदी पत्रकारिता को कैसे और कितना प्रभावित किया है इसका अध्ययन करना बहुत महत्वपूर्ण है |

अंग्रेजी के वर्चस्ववाद के खिलाफ हिंदी एवं भारतीय भाषाओं की शक्ति को जगाय व पहचाने बिना अँधेरा और बढ़ता जाएगा | अंग्रेजी अख़बार इसलुट तंत्र के हिस्सेदार बने है तो मुख्यधारा की हिंदी-भाषाई पत्रकारिता उनकी छोड़ी जूठी पत्तले चाट रही है,डॉ. गंगा नारायण त्रिपाठी के अनुसार-"अंग्रेजी भारत में एक भयंकर भाषायी रोग है | यह जब तक रहेगी, क्या कन्नड़, क्या मलयालम, क्या हिंदी और क्या बंगाली, सबके अंग दुखते रहेंगे |" हिंदी की ताकत सिर्फ सिनेमा में दिखती है, जब की यह भी बाजार का हिस्सा है | वास्तव में तो हिंदी सिर्फ मनोरंजन और वोट मांगने की भाषा बनकर रह गई है | हिंदी व भारतीय भाषाओं के अख़बारों के सामने यह चुनौति है की वे अपनी भूमिका पर पुनविचार करें | हिंदी पत्रकारिता के किसी एक घटक के साथ यदि सबसे अधिक शोषण किया गया तो वह घटक भाषा ही है | कुछ समय पहले नवभारत टाइम्स एक राष्ट्रीय अख़बार हुआ करता था | उसके सम्पादकीय जनसत्ता के समकक्ष थे, लेकिन आज नवभारत टाइम्स की हालत उजागर है | आज यह अख़बार दिल्ली और मुंबई का सबसे ज्यादा बिकने वाला हिंदी का अख़बार है लेकिन भाषा के मामले में यह रसातल में है | हिंदी के शब्दों में यदि आप अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग करते है तो ठीक है लेकिन उन्हें देवनागरी में लिखना चाहिए | 'चुनाव टाइम पर होंगे' तो ठीक है | लेकिन 'चुनाव time पर होंगे' कहाँ तक पूर्ण है | नवभारत टाइम्स के शीर्षक की बानगी देखीए 'चुनाव समय पर होंगे' :pmइलेक्शन time पर कराएंगे | आज भी लोग जनसत्ता को पढ़कर अपनी भाषा सुधारते है | नवभारत टाइम्स को एक अपवाद के रूप में छोड़ दे तो आज भी प्रिंट मिडिया में भाषा की ज्यादा दुर्दशा नहीं हुई है | लेकिन इलेक्ट्रॉनिक मिडिया ने भाषा की ओ दुर्दशा की है कि समझना व समझाना दोनों मुश्किल है | इसी कारण हिंदी पत्रकारिता के लिए यह चुनौति दिखाई देती है |

साहित्य- संस्कृति, कविता- कहानी के क्षेत्रों में शिखर को छुने के बावजूद ज्ञान-विज्ञान के विविध अनुशासनों पर हिंदी में बहुत कम काम हुआ है | विज्ञान, प्रबंधन, प्राद्योगिकी, उड्डय वाणिज्य, उद्दोग आदि क्षेत्रों में हिंदी बेचारी साबित हुई है, जब की यह युग सत्य है की आज के दौर में जब तक भाषा बहुआयामी अभिव्यक्ति व विशेष सूचना की भाषा न बने उसे सीमा से अधिक महत्व नहीं मिल सकता | हिंदी को आज देश, काल, परिस्थितियों के अनुरूप सूचना की सम्पन्न भाषा बनना जरुरी है | आज की हिंदी पत्रकारिता के लिए यही सीमा ही सबसे बड़ी चुनौति है | बाजारवाद की चुनौतियों के खिलाफ हिंदी पत्रकारिता का यह सृजनात्मक उत्तर होगा |

भाषा के प्रति चिंतन की जड़ता को तोड़े बिना हिंदी पत्रकारिता का स्वतंत्र अस्तित्व असंभव है, हालांकि हिंदी पत्रकारिता के लिए यह असाधारण चुनौति है | वर्षो से अंग्रेजीवाद के चिंतन की जड़ता से जुड़े समाज में हिंदी और अपनी भाषा के प्रभाव-पुंज को स्वीकार करना कठिन चुनौति है, क्योंकि परिवर्तन से मनुष्य घबड़ाता भी है | मनुष्य को सोचने में खतरा मालूम होता है, संकट मालूम होता है | उसे यह भय हमेशा परेशान करता है कि कहीं वह अपनी स्थिति से खिसक न जाए | मनुष्य अपनी स्थिति से खिसकना नहीं चाहता है, इसलिए वह परिस्थितियों के साथ और अपने आपसे समझोता कर लेता है | हानी में भी लाभ देख लेता है और दुःख में भी सुख मान लेता है | हिंदी पत्रकारिता को अपने स्वतंत्र विकास के लिए मनुष्य के इस मानसिक जड़ता को चुनौति के रूप में स्वीकार करना होगा |

स्वतंत्रता के बाद पत्रकारिता को अपने नए उद्देश्य, अर्थ और स्वरुप तथा उपयोगिता के नए आयामों को तलाशने की समस्या थी | अपने उद्देश्य, अर्थ एवं स्वरुप तथा उपयोगिता के नए आयामों को तलाशने में जहां अंग्रेजी पत्रकारिता ने मानक निर्धारित किया, वही हिंदी पत्रकारिता उसके अनुकरण का पर्याय बनने लगी | दरअसल स्वतंत्रता के पश्चात् हिंदी पत्रकारिता ने युग- बोध का स्वतंत्र दर्पण बनने की बजाय नई राह तलाशने के भटकाव में अंग्रेजी पत्रकारिता की उंगली पकड़कर चलना अधिक श्रेयस्कर समझा और इसके पीछे वही मनोविज्ञान था जो अंग्रेजीवाद से ग्रस्त था |

यह ठीक है की विभिन्न तरह के विकास की स्थिति में हिंदी पत्रकारिता को अनेक चुनौतियों से गुजरना पड़ा और पड़ रहा है, और एक हद तक हिंदी पत्रकारिता उसमें सफल भी रही है | आजादी के बाद पत्रकारिता की जो अवधारणा विकसित की गई और तदनुरूप उसके जो उद्देश्य निर्धारित करने के प्रयास किए गये उसमें मूल रूप से पत्रकारिता का मूल उद्देश्य अन्याय और बेईमानी का उदघाटन कर दोषों- खामियों को उजागर करना, सलाह देना, असहाय की सहायता करना और लोगों को मार्गदर्शन करना हो गया | धीरे- धीरे रहस्योदघाटन पत्रकारिता की धड़कन बन गया | लेकिन पत्रकारिता की यह जमीन अंग्रेजी पत्रकारिता के उद्देश्यों के अनुरूप है | हिंदी पत्रकारिता का उद्देश्य इसके साथ-साथ भारतीय समाज को न केवल एकसूत्र में बांधना होना चाहिए था, बल्कि उसे हिंदी की जमीन पर अपनी भाषा, अपनी संस्कृति और अपने ज्ञान और विज्ञान की स्वाभिमानी भावना की सशक्त अभिव्यक्ति का माध्यम भी होना चाहिए था, जिसमे उसकी सफलता अधूरी है | यह कहना उचित न होगा की हिंदी पत्रकारिता के आधुनिक पुरोधाओं ने इस दिशा में अपनी नजर नहीं दौंडाई, लेकिन पत्रकारिता पर राजनीति का वर्चस्व और वह भी अंग्रेजीपरस्त राजनीति के प्रभाव ने इसे विचलित कर दिया |डॉ. रमेश जैन के अनुसार- "दरअसल जो लोग सत्ता में बैठे है या जो नौकरशाही है, वह सिर्फ अंग्रेजी अख़बारों के भरोसे रहती है |" सामयिक सच्चाई यह भी है की अंग्रेजी पत्रकारिता से कहीं अधिक हिंदी पत्रकारिता को भारत में एक स्वस्थ लोकतंत्र के निर्माण की भी चिंता रही है | विभिन्नताओं वाले इस देश में लोकतंत्र का प्रहरी बनना इसका सर्वाधिक मौजूदा उद्देश्य बन गया जो समीचीन भी है | लेकिन इसके लिए भी हिंदी पत्रकारिता को अपनी जमीनी सच्चाई के अनुरूप खड़ा होना चाहिए था, जो लगभग नहीं हो सका | इसी कारण हिंदी पत्रकारिता के समक्ष ये चुनौतियाँ निर्माण हुई है |

सन्दर्भ सूची :

[1] डॉ. अर्जुन तिवारी, स्वतंत्रता आंदोलन और हिंदी पत्रकारिता, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण, 1982, पृष्ठ संख्या, 13

[2] अमरेन्द्र कुमार, इक्कीसवीं सदी और हिंदी पत्रकारिता, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण, 2001, पृष्ठ संख्या, 43

[3] डॉ. गंगा नारायण त्रिपाठी, हिंदी पत्रकारिता गद्य शैली का विकास, माधुरी प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण, 2012, पृष्ठ संख्या, 128

[4] डॉ, रमेश जैन, भारत में हिंदी पत्रकारिता, बोहरा प्रकाशन, जयपुर, संस्करण, 1989, पृष्ठ संख्या, 441

स्त्री विमर्श चिंतन और चुनौतियाँ

प्रा.डॉ.विजयसिंह ठाकुर

(सहयोगी प्राध्यापक हिंदी विभाग प्रमुख) राजीव गांधी महाविद्यालय, मुदखेड

भारतीय समाज और संस्कृति में नारी विषयक अनेकों धारणाएँ प्रचलित रही है। अज्ञेय की प्रतिनिधि कहानियों में नारी का जो स्वरुप उपलब्ध होता है, वह इतिहास की एक लम्बी अवधि का परिणाम है। इस अवधि में सामाजिक जीवन के स्वरुप में कई बार परिवर्तन हुए, स्त्री और पुरुष के पारस्परिक सम्बन्धों को कई बार परिभाषित होना पडा। किन्तु इतिहास एक ओर परिवर्तन है तो दूसरी और निरन्तरता भी। इसलिए भारतीय इतिहास के प्रत्येक युग का कुछ प्रभाव विवेच्य स्थिति के अनुसार नारी जीवन पर परिलक्षित किया जा सकता है।

नारी अवधारण और स्वरुप :-

प्राचीन काल से लेकर आज तक नारी सम्बन्धी सभी अवधारणाएँ पुरुष द्वारा निर्मित है। डॉ. शीला रजवार के अनुसार - ''परम्परागत मानसिकता ने नारी को देवी और दानवी दो भागों में बाँट दिया है। कही उसने गुणों को देखकर दानवी कहकर भर्त्सना की है। किन्तु वास्तविकता यह है कि न तो वह देवी न दानवी । वह मानवी है उसमें दया, माया, ममता, विश्वास है।

''वह क्रुर कठोर विश्वासघातिनी भी है। वह प्यार करना भी जानती है और घृणा करना भी, सुलह करना भी जानती है और कलह करना भी। वह मानव धर्मिणी मानवी है।''

पुरुष ने नारी को देवी कहा, दानवी कहा और जब उसे यह वर्गीकरण सन्तुश्ट न कर सका तो कह दिया नारी एक पहेली। प्राचीन काल से ही नारी किसी न किसी रुप चिन्तन का विषय रही है।

समान और संस्कृति में नारी सम्बन्धी अनेक प्रकार की धारणाएँ प्रचलित रही है इसीलिए उसे अलग - अलग रुपों में देखा गया है। ''एक ओर नारी को देवी रुप में पूजा गया है तो दूसरी ओर उसे पाप की खान और मात्र भोग की वस्तु समझा गया है।''

वास्तव में नारी केवल नारी है। मानुषी है अथवा मानवी है। लेकिन ''प्राचीन काल से लेकर आज तक नारी के मानवीय रुप की ओर कम ही ध्यान दिया गया है, उसे मानवी की अपेक्षा 'मादा' रुप में ही देखा गया है। जिसके कारण उसका मानवी पक्ष कमजोर होता गया और यह पुरुष की भोग वस्तु बनकर रह गई है।''

भारतीय मान्यताएँ :-

पुरुष ने नारी की कभी सम्मानपूर्ण दृष्टि से नही देखा। यहाँ तक कि वह उसे मानव रुप में स्वीकार करने में भी हिचकिचाता रहा है। चाणक्य ने नारी के अवगुणों को इस प्रकार दर्शाया है।

'असत्यं साहसं माया मात्सर्य चाति लुब्धता।
निर्गुणत्वम् शौचत्वं स्त्रीणा दोषा स्वभावजा।।

अर्थात अनृत, साह, माया, भय, चपलता, अविवेक, अशौच तथा अदाया नारी के स्वभावजन्य दोष होते हैं। प्राचीन मान्यता के अनुसार नारी स्वभाव से ही अपवित्र होती है तथा पति सेवा से ही उसे उद्‌गति मिली है। इसी प्रकार की बात शिवपुराण में कही गई है।

''क्लवंच दुखस्थ चव्यधित वृष्दमेवच।
सुखितं दुखितं चापि पति मेकं न लघयेत।''

इसमें यह स्पष्अ किया गया है कि बुरे से बुरे पति का भी अपमान नही करना चाहिए अन्यथा नरक में भाँति-भाँति के दुःख भोगने पडते है। आचार्य ने नारी की निन्दा करते हुए कहा - द्वारं किमेकं नरकम्य नारी अर्थात् नारी नरक द्वार है। ''मनु स्मृति में उसे बचपन में पिता, युवावस्था में पति तथा बुढापे मे पुत्र द्वारा रक्षित बनाकर रखा गया है।

तुलसीदास ने नारी को अवगुणों की जड तथा दुखों की खान कहा है - ''अवगुन मूल सूलप्रद, प्रमदा, सब दुख खानि।'' नारी को अपवित्र भी कहा है और पवित्र होने के लिए पति सेवा की आवश्यकता बताई है।

''सहज अपावन नारि, पति सेवत सुभ गति लहै।''

तुलसीदास की दृष्टि में नारी अति नीच है।

''अधम से अधम अधम अति नारी।''

इसी कारण नारी की तुलना पशु से करते है।''

''ढोल गवांर शूद्र पशु नारी, सफल ताडना के अधिकारी।''

कबीर ने नारी को माया और मोह का प्रतीक माना है। आत्मा और परमात्मा के बीच में माया (नारी) बाधा बनने के कारण वे उसका विरोध करते है। वे कहते है –

''नारी नसाबै तीनि सुख, जा नर पासै हुइ।
भगति मुकति निज ग्यान में, पैसि न सकई कोई।।''

इससे स्पष्ट है कि नारी निन्दा स्पष्ट है कि नारी निन्दा की एक लम्बी परम्परा भारतीय सभ्यता और समाज में चलती रही है। यह सब पुरुष दृष्टि का ही परिणाम है। एक ओर नारी को भोग वस्तु मानने के कारण उसका तिरस्कार किया गया तो दूसरी और उसे साधना में बाधक मानकर प्रताडित किया गया है। हम कह सकते है कि, ''सभी संस्कृतियों के केन्द्र में पुरुष ही रहा है। धर्म संस्कृति एवं सभ्यता के केन्द्र में पुरुष है अतः स्त्री अवधारणा नकारात्मक रही है। लगभग सभी धार्मिक और दार्शनिक दायरे में स्त्री को पुरुष के संदर्भ में एक अपूर्ण ओर सापेक्ष जीवन के रुप में देखा गया है।'' स्त्री को गृह कहा गया था – 'गृहणी गृहमुद्यत।' नारी को द्यूतक्रीडा में दाँव पर लगा दिया जाता था। एक स्त्री के कई पति भी हो सकते थे। स्त्रियों की दशा निम्न से निम्नतर होती जाती थी।

वीरगाथा काल में नारी युध्द और प्रेम का विषय बन गई थी । नारी संघर्श की मूल स्वरुपा थी, एम्पेल ऑफ डिस्कार्ड जिसे प्राप्त करने के लिए नित्य युध्द हुआ करते थे। रासो ग्रन्थों मे नारी भोग्या के रुप में वर्णित है। नारी में पति परायणता विद्यमान थी। सतीप्रथा प्रथा उच्चादर्श पर थी।

सूफी कवियों ने नारी की निन्दा एवं प्रशंसा दोनों की है। सूफी ने अपने प्रेमाख्यानक काव्यों में ईश्वर को स्त्री तथा आत्मा को पुरुष माना है। सूफी प्रेमाख्यानक काव्यों मे नारी का विशद चित्रण है।

रीतिकालीन समाज सामन्तवाद पर आधारित था। बादषाह और उसके सामन्तों तथा राज्य कर्मचारियों का जीवन अत्यन्त विलासी और ऐश्वर्यपूर्ण था। जिसका विराट वर्णन रीतिकालीन साहित्य में हुआ है। एक तरफ वैभव विलास का नग्न ताण्डव नृत्य था, दुसरी ओर चरमसीमा पर पहूँची हुई गरीबी – भुखमरी थी संम्पूर्ण समाज में विषमता अजीबो – गरीब स्थिती में विद्यमान थी।

प्रकारान्तर सन्त कवियों ने नारी में कामवासना को मूर्तिमान देखा इसलिए काम के दमन के लिए उन्होने नारी की निन्दा करना ही ही आवश्यक एवं उचित समझा। काम विजय को सम्पूर्ण वासनाओं की विजय समझा गया है। गीता में भी भगवान कृष्ण ने स्वयं अर्जुन से कहा है – ''जहि शत्रु महाबाहो माकरुपम् दुरासदन।''

गोस्वामी तुलसीदास जी ने 'रामचरितमानस' मे माता सुमित्रा के मुँह से कहलवाया है। ''पुत्रवती जुवती जग सोई, रघुपति भगत जासु सुत होई'' अर्थात युवती का जीवन तभी सार्थक है जब भक्त – पुत्र को जन्म दे। भक्ती में नारी के साधक रुप की सर्वत्र प्रशंसा की गई है एवं उसका अभिनन्दन किया गया है, किन्तु उसके बाधक रुप की सर्वत्र निन्दा की गई है।

रामचरितमानस में चित्रित नारी पात्र इन्दी दो कोटियों के है। कौशल्या, सुमित्रा, सीता तथा कैकयी और मन्दोदरी विशिष्ट पात्र है। मन्दोदरी असुर पत्नी होते हुए भी जीवन के सात्विक मूल्यों का मापदण्ड समझाती हे। भ्रष्ट पथानुगामी पति को 'मातृवत परदारेषु का सिध्दान्त समझाती हूई श्रीराम के चरण – शरण होने के लिए प्रार्थना करती है। सीता माता का चरित्र तो भारत की सभी नारियों का महानतम आदर्श है। नारी का सर्वसहा रुप सीता में ससाकार हो गया है। चौदह वर्ष तक पति की सहगामिनी एवं सहचारिणी बनकर वनयात्रा के काँटे अपने आँचन में समेटकर फुलों की वर्षा की थी।

माता यशोदा के चित्रण में मातृ हृदय की गहराई अविकल रुप से उद्वेलित हो उठी है। मथुरा प्रवास के पश्चात उन्होंने देवकी को संदेशा भिजवाते समय चिन्ता की जो अभिव्यक्ती की है यह अत्यन्त सहज एवं अनुपम है।

तुम तो सबहिं जानतेहु हुइहौ तउ मोहि कहि आवै।
प्रात उठत मोरे लाल लडैतहिं माखन रोटी भावै।

इससे भी विशिश्टता उनकी इन भावनाओं में है –

हौं तो धाय तिहारे सुत की कृपा करत ही रहियों

नारी के त्याग तपस्या का इससे बढकर और क्या दृष्टान्त हो सकता है।

कृष्ण साहित्य में गोपी चित्रण ही उसका सर्वस्व है। गोपियाँ प्रेम की ध्वज है। गोपियाँ नन्द – नन्दन की बाँसुरी पर इस प्रकार न्यौछावर है कि लौकिक – वैदिक प्रतिबन्धों की उन्हें रंचमात्र भी चिन्ता नही। भ्रमर गीत का प्रसंग राधा और गोपियों के घनिष्ट प्रेम को व्यक्त करने वाला है।

प्रेम के शुध्द स्वरुप, माधुर्य भाव की प्रधानता वर्णन की स्वाभाविका एवं सरसता के कारण कृष्ण काव्य में नारी पात्रों की प्रचुरता है। वात्सल्य और माधुर्य दो भागों में विभाजित किए जाने योग्य स्त्री पात्रों – यशोदा, राधा, रुक्मिणी, कुब्जा, रोहिणी, देवकी, कार्तिलता, चंद्रावरी आदि के चित्रण मे सूरदास तथा अष्टछाप के कवियों को सहज प्रतीत कराने में पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई है।

इन सगुण कृष्णभक्त कवियों ने नारी के दैहिक स्थूल सौन्दर्य के चित्रण तक ही स्वयं को बाँध नही रखा है। यत्र तत्र जो कुछ भी नख शिख चित्रण, नायिका भेद आदि आया है वह नारी के आन्तरिक प्रकाश की प्रतिच्छाया के रुप में ही है।

भक्तिकालीन कवियों के बाद के कवियों मे भगवद् - विषयक रति के अभाव के कारण नारी भावना की भव्यता का लोप हो गया। नारी दरबारों मे राजाओं की प्रसन्नता के लिए क्रीडा की वस्तुमात्र रह गई थी। श्रीकृष्ण युग में सरलता से गिरधर से मुरलीधर बन गये और कृष्ण का यह मनमोह रुप राधा की आभा से प्रकाशित होता था। समरांगण में विजयश्री प्राप्त करने के शक्ती की और श्रृंगार की सिध्दि के लिए राधा कृष्ण की उपासना होती रही।

साहित्य रचना 'स्वान्तः सुखाय न होकर परान्तः सुखाय' हो रही थी वर्ग के लिए साहित्य रचना की जा रही थी वह दर्शन से अनभिज्ञ था अतः युग के भक्त कवि रीतिपूर्ण भक्ती के विविध सम्प्रदायों के परिचयात्मक वर्णन ही स्वयं को सीमित रख सके।

तात्पर्य यह है कि सगुणोपासक कवियों ने अपनी कामवासना के दमन शस्त्र द्वारा वासना का उन्नयन करके सकी परिणति भगवत् - प्रेम में की। कामिनी काया से दूर रहकर सगुण भक्त कवि साहित्यिक साधना तक भी ''कामिही नारि पिआरि जिमि लोभिहिं जिमि प्रिय दाम।' तिमि रघुनाथ निरन्तर, प्रिय लागहु मोहि राम। की याचना और कामना करता रहा। इसी स्वर को यदि हम इस काल का प्रतिनिधी स्वर भी मान लें तो कोई असंगति न होगी।

निर्मल वर्मा के साहित्य में भारतीय नारी पुरुषों की पाश्चात्य परिवेश भूमि पर सम्बन्धों की दास्तान है जिसमें आधुनिक परिवेश में रहकर भी नारी अपने स्वभाव की सनातन ईर्ष्या से मुक्ति नही पा सकती। अपने क्षेत्र में आने वाली दूसरी नारी को अपनी ईर्ष्या से पराजित कर देती है। द्वन्द्व में उलझे दुविधा और विकल्प में साँस लेते भारतीय पात्रों की कहानी है कि अजनबी परिवेष अपने को खपा नही सकता।

नारी जीवन को लेकर अनेक भ्रान्तियाँ रही है। डॉ.शीला रजवार के अनुसार ''नारी सम्बन्ध में जितनी भ्रान्तियाँ मिलती हैं उनती कदाचित् ही किसी अन्य विषय पर मिली होंगी।'' धर्मपाल के अनुसार ''निजी स्वार्थवष वर्चस्व बनाए रखने के लिऐ पुरुष ने अधिकतर नारी को स्वयं से हीनतर प्रस्थापित किया। यही कारण है कि समूचे विश्व के पुरुष समान सोच रखते आए हैं। देवऋषि, मुनि, अवतार पुरुष सभी ने नारी की भर्त्सना की, उसमें अवगुण देखे और स्वयं को सर्वश्रेष्ठ जताने की गाथाएँ लिखीं और कहीं। यह पक्षपातपूर्ण विचारधारा नारी को पददलित करने में सफल हुई और नारी आज भी इसी का शिकार है।''

पाश्चात्य मान्यताएँ :

पाश्चात्य समाज में भी नारी को लगभग उसी दृष्टि से देखा गया है जिस दृष्टि से भारतीय समाज में। दोनों सभ्यताओं में नारी को पुरुष के लिए ही मानकर देखा गया है। नारी के किसी भी रुप को स्वतन्त्र रुप से नही देखा गया है। नारी के सभी रुप पुरुषरुपी धुरी के चारों ओर घूमने वाले रहे है।

जहाँ एक और उसकी निन्दा कर उसे दानवी रुप में देखा गया है वही नारी को देवी रुप में भी देखा गया है। नारी सम्बन्धी अपने विचार व्यक्त करते हुए बॉयरने ने कहा है -

''बिलीव ए बूमन एण्ड एन एपिटाफ
एण्ड एनी अदर थिंग दैट्स फाल्स।''

नारी अथवा अन्य को वस्तु पर विश्वास नही करना चाहिए क्योंकि वे झूठे होते है। एफ.एम. पियावे नारी के अस्तित्वको नगण्य मानते है -

''वूमैन इज एज फाल्स एज ए फीदन इन द विंड।''

अर्थात नारी का अस्तित्व वायु में उडते पंख के समान है जो कि असत्य है। इस सम्बन्ध में काण्ट का विचार है कि -

''ए वूमैन ए डोग एंड ए वालनट।
दि मोर यू बीट एम दि बेटर दे बी।''

अर्थात् नारी तू अबला है। ''नेपोलियन ने नारी को मताधिकार के लिए मना किया था।'' भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा है कि - ''कीर्ती श्रीवार्क्य नारीणां स्मृति मेघा घृतिः क्षमा।''

स्त्रियों में कीर्ति, सम्पति, वाणी कृति घृति और क्षमा है। इनही गुणों के विकास से ही पृथ्वी सुन्दर बनेगी। महात्मा गेांधी ने भी कहा था। ''शांती, शालीनता, तपस्या, अहिंसा आदि नारी जाति के गुण है।''

जयशंकर प्रसाद ने नारी को श्रध्दा का रुप मानते हुए कहा है - ''नारी तुम केवल श्रध्दा हो, विश्वास रजत नभ पग तल में पियूश स्त्रोत सी बहा करो, जीवन के सुन्दर समतल में।''

नारी के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते समय रजनीष ने कहा है - ''प्रेम, श्रध्दा, सौन्दर्य, निष्ठा, सच्चाई प्रामाणिकता यह सारे गुण स्त्रियों के है और ये पुरुषों के गुणों की अपेक्षा अधिक महान है।'' पाश्चात्य गोथे ने नारी की प्रशंसा करते हुए कहा है - ''दि एटरनल फेमिनिन डाज अस अपवार्ड।'' अर्थात् शाश्वत नारीत्व, हमें सामान्य स्तर से उठाकर उँचाई की ओर ले जाता है। आटवे के अनुसार - ''ओ वूमैन। लवली वूमैन। नेटर मेड दी टूटापर मैन बी हैड बीन ब्रुटस विदाउफट यु।'' अर्थात ये नारी मनोहर नारी । प्रकृति ने तुझे पुरुष को शान्त करने के निमित बनाया अन्यथा हम (पुरुष) तुम्हारे बिना पशु ही रहते। राष्ट्र निर्माण में उत्तम मातृत्व की आकांक्षा करते हुए नेपोलियन ने कहा -

''गिव मी गुड मदर्स, एंड आई विल यू ए गुड नेशन''

मुझे अच्छी माताएँ दिजिए और मैं तुम्हे एक उत्तम राष्ट्र बनाकर दूँगा। भारतीय एवं पाश्चात्य संस्कृति में नारी सम्बन्धी परस्पर विरोधी धारणाएँ दिखाई देती हैं । दोनों की प्रतिष्ठा को बनाए रखते हुए समानता पर आधारित सहयोगी का निर्माण ही भविष्य को सुखदायक बना सकता है। ''नारी को एक ओर महानता क शिखर पर स्थापित किया गया है। जो धारणाएँ भारत में रही हैं थोडे बहूत फर्क के साथ वही धारणाएँ पश्चिम में भी रही है।''

भारतीय संस्कृति ने नारी को देवी मानकर नारी के लिए पतिव्रता धर्म की मान्यताएँ स्थापित की है। पतिव्रत धर्म का पालन करने वाली नारी ही पूज्य है। सम्पूर्ण संस्कृति में नारी को एक स्वतंत्र व्यक्ति के रुप में कही भी नही देखा गया है। जहाँ वह पुरुष द्वारा बनाए गए नियमों में बँकर रही है वही पुज्य है। जहाँ उसने अपे स्वतन्त्र अस्तित्व को बनाने का प्रयत्न किया है, ''वहाँ निन्दा का पात्र बनी है। जहाँ नारी को ''यौन प्रतीक'' मानकर निन्दा की गई है वही भी योग्य नही है और पतिव्रता के रुप में उससे जो अपेक्षाएँ की गई है वह न्यायोचित नही है।''

भारतीय एवं पाश्चात्य देशों में नारी सम्बन्धी परस्पर विरोधी दृष्टिकोण दिखाई देते है। इस प्रकार के विचारों के कारण नारी सम्बन्धी अवधारणा एक उलझन बनकर रह गई है। ''जिस प्रकार पुरुष एक मानव है, मनुष्य है उसकी अपनी प्रतिष्ठा है उसी प्रकार नारी भी मानवी है, मनुषी है।''

इतिहास कालीन नारी :-

अतीत के अध्ययन से हम भविष्य के निर्माण की दिशा निश्चित कर सकते है, और परिस्थितीयों को मोड दे सकते है। परम्परागत संस्कारों और परम्पराओं का प्रभाव वर्तमान जीवन दृष्टि को प्रभावित करता है। भारतीय नारी के भविष्य दिशा निश्चित करते समय उसकी वर्तमान दषा का विश्लेषण एवं अतीत का मूल्यांकन आवश्यक है। आशारानी व्होरा के अनुसार ''हमें अपनी प्रगति के उतार चढाव का अध्ययन करना होगा, अपनी सांस्कृतिक, भौगोलिक, ऐतिहासिक, सामाजिक व आर्थिक पृष्टभूमि को समझना होगा और मूलाधार की इसी कसौटी पर नए और पुराने मूल्यों को परखकर भविष्य की राह बनानी होगी।''

सन्दर्भ सूची :-

१. स्वातन्त्र्योत्तर कथा साहित्य में नारी के बदलते संदर्भ - डॉ.शीला रजवार, पृ.१६
२. साठोत्तरी हिन्दी लेखिकाओं की कहानियों में नारी डॉ.मंगला कप्पीकेरे, पृ.६
३. नारी एक विवेचन - धर्मपाल, पृ.१
४. साठोत्तरी हिन्दी लेखिकाओं की कहानियों में नारी - डॉ.मंगला कप्पीकेरे, पृ.११
५. रामचरितमानस-तुलसीदास-अयोध्याकाण्ड, पृ.७७
६. कबीर ग्रंन्थावली : श्यामसुन्दरदस, वही, पृ.३१
७. स्त्री : देह की राजनीती से देश की राजनीति तक - मृणाल पाण्डे, पृ.१४
८. स्वातंन्त्र्योत्तर कथा साहित्य में नारी के बदलते संदर्भ - डॉ.शीला रजवार, पृ.११
९. नारी एक विवेचन - धर्मपाल, पृ.१
१०. आधुनिक विद्रोही स्त्री - रजनीश, पृ.१
११. साठोत्तरी हिन्दी लेखिकाओं की कहानियों में नारी - डॉ.मंगला कप्पीकेरे, पृ.११
१२. कामायनी - जयशंकर प्रसाद, पृ.७३
१३. आधुनिक विद्रोही स्त्री - रजनिश, पृ.३
१४. नारी एक विवेचन - धर्मपाल, पृ.५
१५. साठोत्तरी हिन्दी लेखिकाओं की कहानियों मे नारी - डॉ.मंगला कप्पीकेले, पृ.१५

B.Aadhar' International Peer-Reviewed Indexed Research Journal

Impact Factor -(SJIF) –8.632, Issue NO, (CDXLVI) 451-A

ISSN : 2278-9308 December, 2023

अल्माकबूतरी' उपन्यास में आदिवासी जीवन

डॉ. व्यंकट किशनराव पाटील

सहयोगी प्राध्यापक स्वामी विवेकानंद महाविद्यालय शिरूर ताजबंद जि. लातूर

Mo. 9890796164 venkatkpatil@gmail.com

'आल्मा कबूतरी' एक सशक्त उपन्यास है। अल्मा कबूतरी बुन्देलखंड की विलुप्त होती आदिवासी कबूतरा जनजाति और उनके ऊपर हो रहे अत्याचारों का वास्तवीक चित्रण है। कबूतरा समाज में नारी के संघर्ष और शोषण की कहानी है।मैत्रेयी पुष्पाने इस उपन्यास की रचना की है।

मैत्रेयी पुष्पा का जन्म 30 नवंबर 1944 में अलीगढ़ जिले के सिकुर्रा गाँव के ब्राह्मण परिवार में हुआ। माता का नाम कस्तूरी देवी और पिता का नाम हीरालाल था । अठराह महिने की थी तब पिता की मृत्यु हुयी। माँ एक कर्मठ और इरादों की मजबुत महिला थी । पति की मृत्यु के बाद शिक्षा प्राप्त की और ग्रामसेविका की नौकरी की । माँ की नौकरी के कारण मौत्रेयी को माँ का प्यार भी नसीब नहीं हुआ। मौत्रेयी ने बुंदेलखंड कॉलेज झांसी से एम.ए. हिंदी किया है। कॉलेज के दिनों से ही लिखना प्रारंभ कर दिया था।मौत्रेयी पुष्पा का प्रकाशित साहित्य: (अ) उपन्यास:1. बेतवा बहती रही 2. इदन्नमम 3. स्मृति दंश 4. चाक 5. अल्मा कबूतरी 6. झूलानट 7. अगनपाखी 8. विजन 9. कहै ईसूरी फाग (आ) कहानी संग्रह:1. चिन्हार 2. ललमनियाँ 3. गोमा हँसती है (इ) आत्मकथा 1. कस्तुरी कुण्डल बसौ पुरस्कार: हिंदी साहित्य के लिए मौत्रयी पुष्पा को हिंदी अकादमी द्वारा साहित्य कृति सम्मान, कथा पुरस्कार ('फैसला ' कहानी पर), ' बेतवा बहती रही ' पर प्रेमचंद सम्मान1995, उत्तर प्रदेश, 'इदन्नमम ' उपन्यास पर नंजनागुड्डु तिरूमालंबा पुरस्कार 1996 (शाश्वती संस्था, बैंगलूर), प्रेमचंद सम्मान (उ.प्र. साहित्य संस्थान), वीरसिंह जू देव पुरस्कार (म.प्र.साहित्य परिषद) व कथा सम्मान, साहित्यकार सम्मान हिंदी अकादमी, दिल्ली।

मौत्रेयी पुष्पा ने अपने कथा साहित्य के माध्यम से बुंदेलखंड और ब्रज प्रदेश के ग्रामीण जीवन का यथार्थ चित्रण किया है। उन्होंने भारतीय ग्रामीण जीवन के हर पहलू को उजागर किया है। उनके उपन्यासों का परिवेश ग्रामीण, पिछड़ा और दलित समाज है। उसमें भी वह वहाँ की नारी को रेखांकित करती नजर आती हैं। ग्रामीण नारी की समस्याओं को उन्होंने पहली बार व्यापक धरातल पर उठाया है। कहानी तथा उपन्यास समाज की विभिन्न घटनाओं पर आधारित होते हैं , साहित्य तथा समाजशास्त्र समाज से अभिन्न रूप से जुड़े प्रस्तुत उपन्यास कबूतरा नामक अपराधी समझी जानेवाली जनजाती से संबधीत है। पं. जवाहरलाल नेहरू ने अक्तूबर, 1936 में कहा है- अपराधी जनतजाति अधिनियम के विनाशकारी प्रावधान को लेकर मैं चिंतित हूँं। यह नागरिक स्वतंत्रता का निषेध करता है। इसकी कार्यप्रणाली पर व्यापक रूप में विचार किया जाना चाहिए और कोशिश की जानी चाहिए की इसे संविधान से हटाया जाए। किसी भी जनजाति को अपराधी करार नहीं दिया जा सकता। यह सिध्दांत न्याय और पराधियों से निपटने के किसी भी सभ्य समाज से मेल नहीं खाता।

अल्माकबूतरी उपन्यास औरतों और वंचितों की संघर्ष गाथा है। सामंती समाज के हिंसक अत्याचारों को सहती , झेलती अभिशप्त नारी की व्यथा-कथा का बयान प्रस्तुत उपल्यास में दृकष्टगत होता है। अल्मा कबूरी में दो समाजों का जिक्र आया है। आदिवासी कबूतरा समाज ,तथा सभ्य समाज जिसे कबूतरा कज्जा कहते है। उपन्यास का केंद्रिय पात्र अल्मा हैं किंतू उपन्यास का आरंभ में मंशाराम और कदमबाई के अनौतिक संबधेंा से समाज तथा मशाराम के परिवार में होने वाली टकराहट से हाता है। मंशाराम कदमबाई के पति जंगलियां को पूलिस के हाथो मरवाता है। कदमबाई अपने पति से मिलने जिस जगह पहुंचती है वहाँ कज्जा मंशाराम पहुच कर धोखे से जंगलिया की भूमिका निभाता है। ....और उस रात ने कदमबाई के गर्भ में एक अंश बूंद बढ़ने के लिए छोड़ दी। यह गर्भ परिपक्व होकर राणा के रूप में जन्म लेता है।

कबूतरा बस्ती के लोग राणा को चोरी करने की कला सिखाना चाहते है, लेकिन राणा में मंशाराम के गुण दिखाई देने लगते हैं। पूलिस व्दारा उन पर किए जाने वाले अत्याचार, प्रशासन का शोषण कज्जा समाज का धिक्कार एवं घृणा कज्जा समाज के प्रति आदिवासी कबूतरा जाति का रोष एवं प्रतिशोण लेने की भावना, कबूतरा जाति की जीवन वृत्ति, चोरी ,डकैती, छीनाझपटी आदि घटनाओं की भूक्त भोगी स्वयं कदमबाई रही है।

इस उपन्यास की अल्मा दो समाजों की टकराहट है। आदिवासी कबूतरा जाति तथा

तथा सभ्य समाज से बदला लेने हेतु अपने आपको उन्ही के नीचे बिछाती रहती है जिसका उदाहरण भूरीबाई है। आजादी का स्वर तो भूरीबाई की आंखों में भी जन्मता है। वह बस्ती की पहली माँ थी जिसने अपने बेटे रामसिंह को कुलहाडी डंड़ा न थमाकर पोथी पाटी पकड़ाई। इसके लिए वह लोगों के नीचे बिछती रही और कल्पना में बेटे को सरग के सितारों के बीच टांक आक्रमण सहती रही। उससे प्राप्त आय से बेटे को पढ़ाती रही । बेटा रामसिंह शिक्षा प्राप्त कर सभ्य समाज में रहने का प्रयास करता है, किंतु उसे वह समाज स्वीकार नहीं करता। पूलिस रामसिंह की मजबुरियों का फायदा उठाकर उसे अपना दलाल बना लेती है। पूलिस के अमानवीय अत्याचारों को सहता रामसिंह अपनी नन्हीं बेटी अल्मा को प्रतिशोध लेने हेतु तौयार करता। क्रंातिकारी रामसिंह की बेटी अल्मा भी अपने अधिकारों के लिए लाड़ना जन्मसिध्द हक्क समझती है। अल्मा पढ़ेलिखे पिता की बेटी है, जो अपने पिता की परम्परा को निभाती राणा के प्रेम में तन्मय होती है।

राणा आल्मा के बिना एक पल भी नहीं रह पाता । पिता की हत्या के बाद अल्मा को दुर्जन कबूतरा के घर पहुँचाया जाता है। दुर्जन धन का लोभी हेाता है । वह कुछ रूपयों में अल्मा को सूरजभान के हाथों बेच दता है। सूरजभान के घर में बंदी अल्मा का धीरज से परिचय होता है। धीरज के प्रयत्नों के व्दारा बंदी अल्मा सूरजभान की कोठरी से मुक्त हो कर भाग निकलती है।

अल्मा भागती हुई विधायक श्रीराम शास्त्री के घर पहुंचती है। वहां वह श्रीराम शास्त्री की रखौल बनकर अपना जीवन यापन करती है। यहाँ तक की उच्चवर्गीय अत्याचारों ने अल्मा की जिंदगी का सुख दु:ख , हंसना-रोन भी छीन लिया। श्रीराम शास्त्री की रखौल का रूप भी अल्मा को जादा दिन तक नसीब नहीं टिक पाता। एक दिन मंदिर के जीर्णोध्दार के समय श्रीराम शास्त्री की किसी के व्दारा गोली मारकर हत्या की जाती है। अल्मा श्रीरामशास्त्री का क्रियाकर्म करती है। विधायक स्व. पति श्रीराम शास्त्री की रिक्त सीट की दावेदार बनती है।

उपन्यास की कथा गांव से राजधानी तक का चित्रण है। कंजर कबूतरों के हथों में बंदूक और पिस्तौल आये हैं। अब वह जंगल की तरफ नहीं शहर की तरफ भागते हैं। अल्मा कबूतरी उपन्यास स्त्री विमर्श का उपन्यास है । कबूतरा समाज का पुर्ण ताना-बाना इस उपन्यास में बुना है। पारिवारिक कलह, पुलिस का अदिवासी समाज पर किया जानेवाला अत्याचार,पुजा पाठ, जादू टोना, चुड़ैल भूत पिशाच्य आदि लोकविश्वास को उपन्यास के माध्यमसे व्यक्त किया है। रीतिरिवाज लोकपरंपराएँ विवाह में लडके से दहेज लेना , चोरी का सामान बस्ती में बाँटना आदि का वर्णन आया है। कबूतरा समाज अपराधी गतिविधीयों के साथ जुड़ा है,पुरूष या तो जंगल में रहते हैं या जेल में और महिलाएँ शराब बनाने तथा बेचने का काम करती हैं । सभ्य समाज उनका शोषण करता है।

सभ्य समाज के लोग इन अपराधी समझी जानेवाली जाति को सुसंष्कृति के रास्ते पर जाने नहीं देते है। सभ्य समाज की संकीर्ण मानसिकता का शिकार समाज कबूतरा जनजाति को अपराधिक दुनिया का अंग मानते है। जिविकोपार्जन के साधनों के अभाव में इनका सामाजिक स्तर पशु से भी बदत्तर है । मरे हुए जानवर का मांस भी इनके पेट की आग बुझा ने के लिए काफी नहीं। मौत्रयी जी ने पाठकों के सामने दु:ख दर्द से घिरी इस जाति की परेशानीयों को रखकर एक नये दृकष्टकोण से सोचने के लिए मजबुर किया है।

मौत्रेयी पुष्पा प्रसिध्द कथाकार है। कथ्य के साथ भाषा, मुहावरे, आंचलिक शब्द, लोकविश्वास, लोकसंष्कृति-सभीपर विलक्षण अधिकार है। किस्सागोई नहीं अनेक जिवंत पात्र उपन्यास के कथा-रस को नए अर्थ देता है। आवरण-पारदर्शी दिनेश खन्ना ने उपन्यास की कथा के अनुरुप मुखपृष्ठ तथा मलपृष्ठ पर कबूतरा जनजाति की धुम्रपाण करती महिला का वित्र निकाला है ।

संदर्भ सूची :

1. अल्मा कबूतरी -उपन्यास मौत्रेयी पुष्पा: राजकमल प्रकाशन नयी दिल्ली
2. मैत्रेयी पुष्पा के साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन : डॉ व्यंकट पाटील : अमन प्रकाशन कानपुर

हाशिए की जातियों और जानवरों के संघर्ष की दास्तांन है : 'सांप'

प्रो.डॉ.रमेश संभाजी कुरे

प्रोफेसर एवं हिंदी विभागाध्यक्ष नारायणराव वाघमारे महाविद्यालय, आ.बालापुर जिला-हिंगोली

दूरभाष – 9423738424 ईमेल - kurers1996@gmail.com

वर्तमान हिंदी साहित्य में रत्न कुमार सांभरिया का नाम उनकी सृजन प्रतिभा के कारण बड़े अदब के साथ साहित्य संगोष्ठियों के केंद्र में आ चुका है। वे एक कथाकार ,नाटककार, चिंतक और आंबेडकरी मिशन के पुरस्कर्ता हैं। जो उपेक्षित, वंचित, दलित एवं हाशिए के समाज की पीड़ा, त्रासदी के साथ उनमें उबरते चेतनायुक्त जीवट संघर्ष का यथार्थ चित्रण करते हैं। क्या कहानी, नाटक, एकांकी और अब क्या उपन्यास उनकी सभी विधाओं के केंद्र में अब तक उपेक्षित, वंचित, कमजोर, शोषित, दलित और हाशिए का समाज ही रहता है। यह उनकी अपने समाज को विकास की लकीर तक पहुंचाने के प्रति प्रमाणिक प्रतिबद्धता का प्रमाण है। स्वातंत्र्य ,समता और बंधुता जैसे संवैधानिक मानवतावादी मूल्यों का प्रचार प्रसार करने वाले विचारों में संत कबीर, गुरु रविदास, महात्मा ज्योतिबा फुले, छत्रपति राजर्षी शाहू महाराज, नारायण गुरु और डॉक्टर भीमराव अंबेडकर आदि अग्रणी महापुरुष हैं। इसी विरासत को अपने साहित्य के माध्यम से आगे बढ़ाने वाले विचारक एवं साहित्यकार रत्न कुमार सांभरिया जी हैं।

'सांप' सांभरिया जी की पहली और महत्वपूर्ण औपन्यासीक रचना है। जिसने आज साहित्यिक क्षेत्र में बहुत ही कम समय में अपनी जबरदस्त धाक जमाई है। वर्तमान समय में किसी साहित्यिक रचना के प्रति पाठकों का इतना अधिक आकर्षित होना अपने आप में एक अनोखी बात है।'सांप' हाशिए के समाज की अनेक जातियों और उनके जानवरों की पीड़ा, त्रासदी और उनके जीवन संघर्ष पर लिखा उपन्यास है। जिसे राजस्थान साहित्य अकादमी का सर्वोच्च मीरा पुरस्कार, हरियाणा गौरव तथा सुब्रह्मण्य भारती पुरस्कार, फौजी प्रेम सिंह स्मृति श्रेष्ठ कथाकार सम्मान और माता रमाबाई सामाजिक उत्थान संस्था ,रेवाड़ी हरियाणा आदि पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है। हिंदी के बहुत बड़े समीक्षक आदरणीय गुरुदेव डॉक्टर सूर्यनारायण रणसुभे जी कथाकार सांभरिया जी के लिए लिखते हैं, "श्री सांभरिया जी हिंदी दलित कहानियों के शीर्ष लेखक हैं। उनकी कहानियों में गजब का संतुलन दिखाई देता है। इन कहानियों में प्रस्तापित जाति व्यवस्था के प्रति नकार है ,संघर्ष है।"[01]

- **हाशिए का समाज और साहित्य :-**

भारतीय समाज अनेक जातियों धर्मों में बटा हुआ है। समाज का यह विभाजन सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक स्तर पर भेदभाव, उंच्च- नीच और दीनताबोध को जन्म देता है। समाज में अनेक लोग, समुदाय ऐसे हैं जो आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक आदि कारणों से अत्यंत कमजोर हैं। इसलिए वे मुख्य धारा के जीवन प्रवाह के बाहर फैंक गए हैं या फिर पिछड़े गए हैं। मुख्य धारा से बाहर कर दिए जाने के कारण वह हाशिए का जीवन जीने के लिए मजबूर हैं। और यह सदियों से अब तक निरंतर चलता आ रहा है। "हाशिए का अर्थ है कोर, किनारा, छोर, बगल, एक ओर होना, अलग करना या पन्ने के चारों ओर का किनारा। इससे स्पष्ट है कि जो मुख्य भाग अथवा मुख्य धारा से अलग कर दिया गया है वह हाशिया है। हाशिए के लोग वे लोग हैं जो मुख्य धारा से अलग रहकर जीवन यापन कर रहे हैं। जो उपेक्षित जीवन जीने के लिए विवश हैं।"[02] जो लोग आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक रूप से शक्तिशाली होते हैं वह मुख्य धारा के लोग हैं। कभी-कभी युद्ध में विजेता समाज पराजित लोगों को अपना गुलाम बनाकर उन्हें हाशिए पर डाल देता है। सभ्यता और संस्कृति की भिन्नता के कारण वह अपनी

पहचान खोकर अकेले बनने लगते हैं। अस्थायीपन, बेचैनी, तनाव, क्लेश, व्यग्रता और अशांति आदि समस्याओं से वे जूझने लगते हैं। दिहाड़ी और बंधुआ मजदूर, घरेलू नौकर, वेश्या, दलित, आदिवासी और घुमंतु समुदाय के लोग हाशिए का जीवन जीने के लिए मजबूर हैं। साहित्य हमेशा हाशिए के समाज का पक्ष लेकर उनके विकास का समर्थन करता है। इसी कारण आज अपनी अस्मिता और अस्तित्व के लिए संघर्ष करते हाशिए के समाज का मार्मिक चित्रण साहित्य में हो रहा है परिणामत: सभी अस्मिता मुलक विमर्शों का चिंतन और चुनौतियां साहित्य सृजन का केंद्र बन चुके हैं। प्रस्तुत शोधलेख में 'सांप' उपन्यास में चित्रित हाशिए के समाज की अनेक जातियों और उनके पालतू जानवरों के संघर्ष की दास्तांन का अनुसंधानात्मक विश्लेषण किया गया है।

- **सांप उपन्यास और हाशिए का समाज :-**

हिंदी साहित्य में अब तक मानवीय भाव भावनाओं के साथ-साथ प्राणियों के भावनिक और मानवीय व्यवहार का चित्रण भी बखूबी हुआ है उपन्यास में हाशिए का समाज एक साथ सभ्य समाज, पुलिस प्रशासन और सरकार ऐसे तीन स्तर पर संघर्ष करता दिखाई देता है। इस संघर्ष में उनके साथ उनके पालतू जानवर जिस तरह से साथ देते हैं यह देखकर हृदय द्रवित हो उठता है। इस विमर्श को वर्तमान चिंतन और चुनौतियों की नजर से देखे तो आज एक मनुष्य दूसरे मनुष्य के जीवन संघर्ष में साथ खड़े रहने को कतराता है या फिर तुरंत भाग खड़ा होता है। परंतु सांप उपन्यास में घुमंतुओं के जानवर उनके साथ कंधे से कंधा मिलाकर लड़ते हुए दिखाई देते हैं। इसमें मनुष्य और जानवर का भेद समाप्त होकर मनुष्य और जानवरों के सहचार्य का बहुत ही मार्मिक चित्रण देखने को मिलता है। इसलिए यह कथावस्तु केवल हाशिए के जातियों के जीवन संघर्ष की नहीं है तो, "यह कथा अपने अस्तित्व को बचाने के लिए जूझ रहे उन बेजुबान जानवरों की व्यथा की मार्मिक अभिव्यक्ति है।"[03]

- **सामूहिक संघर्ष की जीवंत दास्तान:-**

'सांप" उपन्यास की कथावस्तु सन् 1972 के वन्य जीव संरक्षण अधिनियम के पूर्व दो साल से शुरू होती है।वन्य जीव संरक्षण अधिनियम के तहत अब तक जो जिन जानवरों को पाला करते थे वह अब उन जानवरों को पाल नहीं सकते। परिणाम यह था कि जिन हाशिए के जातियों की रोजी-रोटी जानवरों के खेल कूद के सहारे चलती थी उनके सामने पेट भरने की बड़ी समस्या खड़ी होती है। वह अपने पारंपरिक रोजगार को अलविदा कहने के लिए विवश हो जाते हैं। स्थायी निवास और स्थायी रोजगार की तलाश में वे अपने पीठ पर अपना परिवार लादकर बस यहां वहां दर-दर की ठोकरे खाते घूमते रहते हैं। इसी अस्थिरता और बेचैनी के कारण वे पुलिस प्रशासन और सरकार के खिलाफ संघर्ष करने के लिए मिलनदेवी और लखीनाथ सपेरे के साथ खड़े होते हैं। यह संघर्ष सपेरा, कालबेलिया, नट, मदारी, बाजीगर, बुझागर, बंजारा, पेरना, कुचबंदा, नंदी और खिलौने बेचने वाली हाशिए की जातियों के छब्बीस डेरों और उनके जानवरों का है। हाशिए का समाज दरिद्रता, अभाव, कुपोषण, बीमारी, बेघरबारी और अनिश्चित वातावरण में जीने के लिए बेबस है। यह धरती पर सोते हैं, आकाश ओढते हैं और अपने पसीने से नहा कर भूख खाकर सो जाते हैं। इसलिए वे जुल्म और शोषण की व्यवस्था के प्रतिरोध में खड़े होकर सामूहिक विद्रोह करते हैं। उन्हें भी आत्मसम्मान और मनुष्यता का एहसास होता है और यही एहसास उनमें अपनी अस्मिता और अस्तित्व के लिए चेतना का आलाव जलाता है। यह उपन्यास हाशिए का समाज भी एक मनुष्य होने की पुरजौर वकालत करते हुए उनके मूलभूत अधिकारों की पूरी ताकत के साथ मांग करता है। इस दृष्टि से उपन्यास को हाशिए के समाज का मैग्नाकार्टा कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

- **पुलिस के जुल्म और शोषण के खिलाफ संघर्ष :-**

हाशिए के समाज की जातियों और जानवरों को अधिकतर संघर्ष पुलिस के जुल्म के खिलाफ करना पड़ता है। इसमें मनुष्य और जानवर सहचार्य का बेमिसाल उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।वन्य जीव संरक्षण अधिनियम की आड़ में पुलिस हाशिए के समाज के लोगों को कभी भी, कहीं भी पकड़ कर हवालात में बंद करना, मारना, पीटना और उनकी औरतों की इज्जत लूटना अपना मूलभूत अधिकार समझती है। उपन्यास में ऐसे कई प्रसंग है जो पुलिस के अमानवीय अत्याचार बयान करते हैं। जब लखीनाथ सपेरा और भलीराम मदारी को चोरी के झूठे आरोप में हवालात में बंद कर बड़ी बेरहमी से मारा पीटा जाता है तब लखीनाथ के अंदर के सपेरे को चोट लगती है। वह भी

घायल नाग की तरह फनफनाने कर ना आव देखता है ना ताव सीधे दरोगा के मुंह पर जोरदार मुक्का मारकर उसके दांत तोड़ देता है। यह हाशिए के समाज में जागृत चेतना का विद्रोही साक्षात्कार है। "थाने में स्टॉफ के सम्मुख निरे से सपेरे का मुंह पर मुक्का पडना, जबड़े से दातों का टूटकर नीचे गिरना, पहली दफा था। आबरू माटी, सब सुन।"[04]

जन मन समिति की सचिव मिलनदेवी पुलिस अत्याचार के विरुद्ध घुमंतुओं का ढांढस बांधती है। थाने के बाहर सबके सब घुमंतू अपने-अपने जानवरों के साथ इकट्ठा होकर अपनी एकता की ताकत दिखाते हैं। क्योंकि पुलिस घुमंतुओं से ज्यादा उनके जानवरों से डरती है। फिर क्या थाने के बाहर लखीनाथ सपेरा और भलिराम मदारी को छुड़ाने के लिए घुमंतू और उनके जानवर मुठिया आकाश की और तानकर गला फाड़ कर चिल्लाने लगते हैं। जानवर भी भयानक आवाज निकाल कर अपनाविरोध दर्शाते हैं।एस पी धर्मकुंवर "इंसानों और जानवरों के हुजूम का ऐसा आक्रोश भरा जुनून पहली दफा देख रही थी। वीरान जिंदगियों की दुश्वारियां। बेगानी सांसों की धड़कनें। गरीबी का झीना- बाना। कपड़े- लत्तों का तोड़ा। प्यासी- तिसायी , भूखी- सताई दुनिया। दुनिया से न्यारी दुनिया। नट, मदारी ,कलंदर , बाजीगर, बहुरूपिया, सपेरे - कालबेलिया, नंदी ,रिछ, भालू, बंदर- बंदरिया, कबूतर, बाज , गधे। खुली टोकरियों में सांप- कोबरा, अजगर, पाटागोह। एक-एक में गुस्सा भरा था।"[05] क्या बूढ़े- बुढ़िया, किशोर- किशोरियां , जवान- अधेड़ और मर्द औरतें सबके तन बदन पर मैले- कुचैले, फटे- उधड़े कपड़े थे परंतु जुल्म के खिलाफ मन में सुतली में लिपटी बारूद की ज्वाला धधक रही थी। 'हम नाग हैं। नाग को बिरचाओगो। जान से जाओगे। सामने आओगे। प्राण गांवओगे।' जानवरों का क्रोध भी कुछ काम नहीं था। नांदिया ऊपर मुंह करके रंभाया, 'नियाव करो , गधा रेंक उठा, ' खबरदार।' बंदर हुआ हुआ किये जा रहे थे, 'धोखा नहीं चलेगा।' रिछ भालू की झूम बढ़ गई थी, 'बिल्कुल नहीं चलेगा।' कबूतर एस पी के सिर के ऊपर गुजरा , 'छोड़ दो बेकसूरों को।' नाग भी अपनी दोहरी जीभ बाहर भीतर लपालपाने लगे। बाज पंजे बढाये ,पंख फड़फड़ाए एस पी के कंधे पर जा बैठा , 'मान जाओ साहिबा।' बंदरिया बंदर के पीठ पर खड़ी होकर लट्ठ घूमने लगी। आखिरकार एस पी धर्मकुंवर दोनों निरपराध घुमक्कड़ों को छोड़कर थानेदार धारसिंह को लॉकअप में बंद करने का आदेश देती है। इससे क्रोधित होकर स्थानिक एम एल ए और थानेदार धारसिंह के गुंडे घुमंतुओं के डेरों पर कातिलाना हमला कर आग लगाते हैं। परंतु खानाबदोशों के पास भी हिम्मत और साहस की कोई कमी नहीं थी। स्त्री पुरुष, जीव जानवर सब ने मिलकर सशस्त्र दबंगों को बुरी तरह से घायल करके खदेड दिया। " जंगल में रहने वाले लोग विषमताओं से खेलते हैं , डरते नहीं। आग दिखते ही डेरे जाग गये। लोगों ने लाठी, बर्छी ,बंकि, डंडा, खुखरी, पत्थर भाटे लेकर बदमाशों का डटकर सामना लिया। जानवर छोड़ दिये। कुत्ते लगा दिये।"[06] जब थानेदार धारसिंह मदारीन सरकीबाई की इज्जत लूटने की कोशिश करता है तब सरकीबाई अपने कुत्ते चिपू को आवाज देती है। कुत्ता थानेदार की छाती पर दोनों पंजे रखकर उसे वही रोक लेता है उसकी पिंडली काटकर खून की धार बहाकर सरकीबाई की इज्जत बचाता है। "कुत्ते ने दाढ़- दांत निपोर अपना लंबा मुंह उसकी और बढ़ाया, 'फाड़ दूंगा, चल।'थानेदार भयभीत हो उठा। वह आगे आगे ,कुत्ता पीछे-पीछे। थानेदार दर्द पिये खड़ा था। कुत्ता क्रोध डाटे अडा था।"[07]

- **स्थायी आवास आंदोलन/ इंकलाब:-**

'सांप' उपन्यास का मुख्य उद्देश्य खानाबदोशों का पुनर्वास है। उनके पुनर्वास के लिए जन मन समिति की सचिव मिलनदेवी खुद छब्बीस डरों का सर्वे कर जहां जिसका डेरा वह उसी की जमीन के अधिकार के लिए सरकार के पास प्रस्ताव भेजती है। परंतु लाख कोशिशों के बाद भी फाइल इंप्लीमेंट नहीं होती तब मिलनदेवी और लखीनाथ सपेरा घुमक्कड़ों को अपने जानवरों के साथ राजधानी में मुख्यमंत्री निवास के सामने इकट्ठा करते हैं। जोर-जोर से नारे लगाते हैं, "हमें रहने को जमीन दो। जीने का हक दो। हम पशु नहीं इंसान है। देश की शान है। मुख्यमंत्री हाय- हाय। गरीब की दुश्मन सरकार हाय- हाय। इंकलाब जिंदाबाद।... मुर्दाबाद- मुर्दाबाद।"[08] हाशिए की जातियां और उनके जानवरों के स्थायी आवास आंदोलन के आगे मुख्यमंत्री, मंत्री और सरकार को झुकना पड़ता है। घुमंतुओं को प्रत्येक डेरा एक सौ ग्यारह वर्ग गज के भूखंड के पट्टे आवंटित किए जाते हैं। जीवट संघर्ष और उनके

बुलंद हौसले के कारण घुमंतुओं स्थायी आवास का सपना साकार होता है। प्रत्येक घुमंतुओं को सरकार की तरफ से पक्का घर बांधकर दिया जाता है। उनके सिर पर पक्की छत आ जाती है। साथ ही उनके बच्चों को पढ़ने के लिए बस्ती में स्कूल का निर्माण भी किया जाता है। सरकार बस्ती के इस मॉडल को संपूर्ण प्रदेश में लागू करने का निर्णय लेती है। इस तरह मैन और एनिमल का यह एजिटेशन युगांतकारी, अद्‌भुत और कारगर साबित होता है। यह मनुष्य और जानवरों की संघ शक्ति की जीत का उत्कृष्ट उदाहरण है।

'सांप' उपन्यास का उद्देश्य स्वातंत्र्य, समता और बंधुता जैसे संवैधानिक मूल्यों को समाज में स्थापित करना भी है। किसी भी लोकतंत्र में लोक की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। भारत स्वतंत्र होकर उसमें लोकतंत्र शुरू हुआ परंतु उसमें घुमक्कड़ हाशिए के समाज को मतदान करने का कोई अधिकार नहीं मिला। यह लोग अपने ही देश में वीराने, अनजाने, बिना चेहरे के ये लोग, इनकी कोई पहचान नहीं। क्या देश और क्या परदेश , कहीं पर भी कोई ठौर नहीं। इसीलिए लखीनाथ सपेरा अपने समाज के लिए राशन कार्ड और लोकतंत्र में मताधिकार की मांग करता है। देश आज़ाद हुआ कई सरकारें आयी और गई। परंतु जो मूलनिवासी हैं उन्हें चुनाव में मताधिकार भी नहीं! यह कैसा लोकतंत्र ? " जिंदगी और मौत का इतना कड़ा मुकाबला जिन लोगों ने गुलामी को प्राणवायु माना वे आजादी के बाद राजा- महाराजा महल- प्रसाद पा गये। जिन्होंने पराधीनता से टक्कर ली वे बिराने कंगाल दर-दर के रह गये। बेगानों का भूतकाल बेगारी और शोषण में गुजर गया, वर्तमान बदहाली में बीत रहा है।"[09] उन्हें नेता के रूप में सत्ता में भागीदारी तो दूर वे तो मताधिकार से भी वंचित है। लखीनाथ सपेरा मुख्यमंत्री से शोषण की दास्तांन सुनाते हुए कहता है, "हुकम ना म्हारो रासन काड बनै। ना हम वोट कर सकां।"[10] तब मुख्यमंत्री उन्हें देश के नागरिक की बुनियादी की पहचान का मूलभूत दस्तावेज मुहैया कराने के आदेश देते हैं। परिणाम स्वरुप पहली बार बंजारा थड़ी के 57 घुमंतुओं के नाम वोटर लिस्ट में दर्ज होते हैं और वे जिंदगी में पहली बार अपने मताधिकार का प्रयोग करते हैं। सरकारी कल्याणकारी योजनाओं के लाभ के लिए उनके राशन कार्ड भी बनाए जाते हैं। यह घुमंतुओं के जीवन में बहुत बड़ा क्रांतिकारी परिवर्तन है जो भविष्य में लोकतंत्र में उनकी भागीदारी सुनिश्चित करता है।

निष्कर्ष :- कुल मिलाकर 'सांप' उपन्यास का अध्ययन करने के पश्चात हम ऐसा कह सकते हैं कि ,'साप' उपन्यास हाशिए की जातियों और जानवरों के संघर्षमय जीवन का महाकाव्य है। इसमें उनकी पीड़ा, त्रासदी, दुश्वारियों के साथ उनके जीवट साहस और विद्रोह को अभिव्यक्त करते हुए सदियों से कुहासे से ढके हाशिए के समाज के लोगों तक रोशनी की किरण पहुंचने का प्रामाणिक प्रयास दिखाई देता है। रत्न कुमार सांभरिया जी ने हाशिए के समाज की घोर दरिद्रता, जीवन संघर्ष और जीजीविशा का चित्रण तो किया ही है परंतु मनुष्य और उनके पालतू जानवरों के आपसी संबंध, सांप, नेवले, बंदर, बंदरिया, रिछ, भालू ,कुत्ते, बकरियां, बाज आदि के साथ घुमंतुओं के लगाव के मार्मिक चित्र भी प्रस्तुत किए हैं।

संदर्भ संकेत

1. रत्नकुमार सांभरिया के नाटक अपनी अपनी दृष्टि, संपादक डॉ. सुनील जाधव ,नटराज प्रकाशन दिल्ली, 2023 , पृष्ठ -20
2. हाशिए का समाज और हिंदी मराठी साहित्य, संपादक डॉ सतीश यादव, डॉ रंजीत जाधव, अरुणा प्रकाशन ,नवंबर 2017, पृष्ठ -17
3. नूतन कहानी पत्रिका ,सितंबर 2022 ,संपादक अशोक भटनागर, पृष्ठ- 55
4. सांप, रत्न कुमार सांभरिया, सेतु प्रकाशन, नोएडा ,उत्तर प्रदेश ,2022 पृष्ठ -142
5. वही, पृष्ठ- 165- 66
6. वही, पृष्ठ -202
7. वही, पृष्ठ- 155

8. वही, पृष्ठ- 248
9. वही, पृष्ठ-208
10. वही, पृष्ठ -256

पंथ और परिणति' में चिंतन और चुनौतियॉं

माधवराव गजाननराव जोशी,

हिंदी विभाग, श्री रेणुकादेवी महाविद्यालय, माहूर, शोधार्थी, संशोधन केंद्र- पीपल्स महाविद्यालय नांदेड

संपर्क क्र. ९०९६३३७०८९ जी.मेल रवींपउंकह/हउंपसण्बवउ

सारांश :-

उपन्यास साहित्य की वह विधा है, जो मानवी मूल्यों की प्रतिष्ठा करने का प्रामाणिक प्रयत्न करती है। जब तक उस रचना से समाज में वैचारिकता नहीं पनपती तब तक उस रचना को ख्याति नहीं मिलती। 'पंथ और परिणति' देवकीनंदन शुक्ल की पहली रचना होते हुए भी समाज को दिशा देने में कारीगर सिद्ध हुई है। मानवीय मूल्यों को तोड़ - मरोड़कर व्यक्ति जब गलत पंथ को अपनाता हैं तब पंथ ही परिणामों को तय करता हैं, इसी चिंतन और चुनौतियों को स्पष्ट करने के लिए इस उपन्यास की रचना हुई है। आज के इन्सान को दूसरों को हंसता हुआ देखकर सुख नहीं मिलता और दूसरों को दुखी देखकर उसकी ऑखे नम भी नहीं होती, यही चिंतन उपन्यास के केंद्र में है।

पृष्ठभूमि :-

सामाजिक मूल्य, मानव मूल्य, नैतिक मूल्य, आध्यात्मिक मूल्य, भौतिक मूल्य, सौंदर्यात्म मूल्य, और मनोवैज्ञानिक मूल्य आदि मूल्यों के आधार पर समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त होती हैं। मानवीय मूल्य वे मूल्य हैं जिसमें मानवता के आदर्श लक्षित होते हैं। सामाजिक - सांस्कृतिक धरातल पर समाज के मूल्यों में भिन्नता होते हुए भी इन मूल्यों का महत्व कोई भी नकार नहीं सकता। प्राचीन काल के आदर्श, आधुनिक जीवन में मानवी मूल्य के नाम से जाने जाते हैं। जैसे आदिकालीन साहित्य ने आदर्श विचारों का प्रसार और प्रचार किया हैं, वैसे वर्तमान काल में समसामयिक साहित्य से समता, बंधुता ,न्याय, और मानवता आदि मूल्यों का प्रसार और प्रचार हो रहा हैं।

वर्तमान समय में यह किस प्रकार के मानव की छबी प्रगट हो रही है? वह पुर्ण रूप से मानव हैं न शैतान और न ही भगवान। दूसरों को सुख देखकर दुखी होनेवाला और दूसरों को रोते हुए देखकर हसनेवाला इंसान विकृत कहलाता है। अपने चरित्र का एहसास कराने के लिए वह जिन अमानवीय रीतियों का सहारा लेता हैं उनसे वह सुख साध नहीं सकता। आदिकाल से चली आ रही इस प्रवृत्ति पर विजय प्राप्त करने का रास्ता वर्तमान लघुमानव के पास नहीं हैं। इसी प्रवृत्ति पर प्रहार करते हुए संत, भक्त और साहित्यकार मानवीयता के रास्ते पर चलने का आवाहन करते हैं, शुक्ल जी भी इसी मार्ग को अपनाते हैं। उन्होंने ग्रामीण परिवेश से संबंधित देवदत्त, सुरेश बाबू, गणपति चौधरी, गणपति शुक्ल, आदि प्रातिनिधिक चरित्रों के माध्यम से कथावस्तु को अंतिम कथ्य तक पहुंचाने का प्रयास किया हैं। ३२ अंको के माध्यम से उपन्यास की कथावस्तु का विस्तार किया है। आवश्यकता के अनुसार कहीं विस्तार तो कहीं कथावस्तु को समेटने का कार्य भी शुक्ल जी ने किया हैं।

१. संविधान और कल्याणकारी राज्य की स्थिति पर चिंतन :-

देवकीनंदन शुक्ल के 'पंथ और परिणति' उपन्यास में १९४० से लेकर लगभग २००३ के आसपास की परिस्थितियों का वर्णन हुआ हैं। आजादी के समय देवदत्त ०५ साल का बालक था। इसी बीच भारत में संविधान के निर्माण का कार्य आलोचनात्मक और तुलनात्मक रूप से २ वर्ष ११ माह १८ दिन में पुरा हुआ और २६ जनवरी १९४९ में संविधान को स्वीकृत कर २६ जनवरी १९५० से संविधान भारत में लागू किया गया। यह दिन भारत में गणतंत्र दिन के रूप में हर्षोल्लास के साथ मनाया जाता हैं। इस समसामयिक घटना का वर्णन भी 'पंथ और परिणति' में हुआ हैं। भगवतीपुर के ब्रजकिशोर महाविद्यालय में इंटर सायन्स में सुरेश पांडे प्रवेश लेते हैं। सुरेश के परिवार पर जो देशद्रोही का आरोप लगा था उसे दसवी की परीक्षा में प्रथम श्रेणी से पास होकर मिटाने का प्रयास करता है, लेकिन 'कलंक काजल से भारी हो जाता है'।

संविधान लागू होने से उसके परिवार को देशद्रोही कहने की ताकद किसी गांववाले में नहीं थी। अर्थात् अब सुरेश को भी अन्य लोगों की तरह मनचाही पढाई करने, नौकरी करने का अधिकार मिला। जैसे-'' स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत के संविधान निर्माताओं ने एक लोक कल्याणकारी राज्य की स्थापना की थी, जिसका मुख्य उद्देश्य लोगों को शिक्षित करना एवं उन्हें भूखमरी से त्राण दिलाना था। सुरेश को लोक शिक्षा निदेशक से तुरंत पांच सौ रूपये का अनुदान मिल गया'' ०१ अर्थात् जिस तरह सात - आठ वर्ष पूर्व देवदत्त और अन्य गरीब बच्चों को भरैली स्टेट की ड्यौढ़ी में पढ़ाई

करने की सुविधा उपलब्ध कराई गई थी वैसे ही प्रावधान आजादी के बाद युवाओं के लिए हॉस्टेल खोलकर किये गये। सुशिक्षित जनता का निर्माण करना यही उद्देश्य रहा है। 'पढेगा भारत तो बढेगा भारत' यह घोषवाक्य एक ओर पढाई की आवश्यकता को दर्शाता हैं। गरीब बच्चों की पढाई के लिए विभिन्न प्रकार की स्कॉलरशिप व्यवस्था का प्रावधान किया गया। इसीलिए संविधान के प्रति निष्ठा एवं आदर का समसामयिक भाव उपन्यास में देखने को मिलता हैं। तात्पर्य यही कि, अब जमींदारी और अंगेजी व्यवस्था नष्ट कर लोगों को स्वतंत्र देश की जनता बनाया गया।

२. लोकतंत्र की स्थिति पर चिंतन :-

१९४७ के बाद की परिस्थितियों में राजनीतिक बदलाव हुआ है। भारत ने लोकतंत्र प्रणाली को अपनाकर लोगों को अपना प्रतिनिधि चुनने का अधिकार दिया गया। गोविंदपुर जैसे गांव में लोगों के लिए शिक्षा, आरोग्य, पुस्तकालय, जैसी व्यवस्थाओं का निर्माण सरकार की ओर से किया गया था। १४ नवंबर को बाल दिवस मनाने जैसी अकादमिक कार्यविधि की योजना ग्रामीण भाग में हर्षोल्लास से मनाने का वर्णन हुआ है। ग्रामीणों की एक पीढ़ी ने शिक्षा का लाभ लेकर अपने जीवन को सुचारू बनाया। ''अंग्रेज सरकार की शोषण की नीति से उत्पन्न गरीबी की विभीषिका में तर रहे लोगों की सबसे बडी चिंता किसी तरह दो मुठ्ठी अन्न उपर्जित कर जिंदा रहने की थी। किंतु अब ग्रामीण भारत के दृष्य में बदलाव आ रहा है।'' ०२ अर्थात् गोविंदपुर से दसवीं की परीक्षा पास करनेवाला युवक कलेक्टर के ऑफिस में बाबू, मिडिल पास व्यक्ति अर्जुन चौधरी का प्राथमिक शिक्षक बनना, रेल में खलासी, होमगार्ड, आदि विभिन्न पदों पर नियुक्त हो चुके थे। मुसाई दुबे नामक व्यक्ति अभिनेता बन गया था। कोई राजस्व में चपरासी जैसे छोटे मोटे पद पर कार्य कर अपनी आजीविका चला रहा था। अर्थात् अंग्रेजों के जमाने में निश्चित आय की कोई व्यवस्था नहीं थी किंतु लोकतंत्र की शुरूआत में ही लोगों को अपना जीवनस्तर उंचा करने का अवसर मिला।

स्वतंत्रता के बाद 'भरैली स्टेट' भारत में विलीन होने से राजाबाबू की जमींदारी खत्म हुई ,अब वे भी सामान्य जनता की भॉति जीवन गुजारने लगे थे। मोहनदास नैमिषराय के 'मुक्तिपर्व' उपन्यास में भी ऐसी ही घटना का वर्णन हुआ है। नवाबराय के घर अर्दली के तौर पर काम करनेवाला नौकर बन्सी जब १६ अगस्त १९४७ को काम पर नहीं आता हैं तब स्वयं नवाबराय को जीवन में पहली बार मजदूर की चौखट पर जाना पड़ता है। लेकिन बन्सी भी नौकरी छोड देने की घोषणा करता है अर्थात् लोकतंत्र लागू होने से सब लोग समान हो चुका हैं, श्रेष्ठ कनिष्ठ का भेद मिट चुका था। तात्पर्य यही कि, सामाजिकदृष्टी से बिखरे हुए गरीब परिवार को आत्मसम्मान देने का, बरसों की गुलामी से मुक्ति देने का कार्य इस लोकतंत्र और संविधान के माध्यम से हुआ हैं। अर्थात् 'पंथ और परिणति' उपन्यास का नायक दरिद्रता, उपेक्षा, आर्थिक विपन्नावस्था, घृणा, गुलामी से मुक्त होकर सन्मानयुक्त जीवन जीने लगा। यहॉपर 'शिक्षा से सामाजिक विषमता नष्ट की जा सकती है' यह डॉ. आंबेडकर के विचार का प्रभाव दिखाई देता हैं।

३. धर्मनिरपेक्षता की स्थिति पर चिंतन :-

बर्मिंघम के जॉर्ज हॉलीयाक ने सन १८४६ के बीच सबसे पहले **'धर्मनिरपेक्षता'** अर्थात् 'सेक्युलॅरिज्म' का प्रयोग किया। उनके अनुसार '' आस्तिकता - नास्तिकता और धर्मग्रंथों में उलझे मनुष्य मात्र के शारीरिक, मानसिक, चारित्रिक, बौद्धिक स्वभाव को उच्चतम संभावित बिंदु तक विकसित करने के लिए प्रतिपादित ज्ञान और सेवा ही धर्मनिरपेक्षता हैं। '' ०३ देवकीनंदन शुक्ल के उपन्यास में धर्मनिरपेक्षता का तत्व अभिव्यक्त होता हैं। तत्कालीन समय में धर्मनिरपेक्षता के लोग होते तो विभाजनवाद की त्रासदी भुगतनी नहीं पडती थी। लोग सच्चे धर्मवादी नहीं थे इसीलिए नफरत की आग ने इस देश का और धर्म का नुकसान किया हैं। जैसे युद्ध के बाद ही शांति का महत्व बढ जाता है, वैसे ही धर्मांधता के परिणाम हावी होने पर धर्मनिरपेक्षता का महत्व द्विगुणित हो जाता हैं।

'' साहित्य का एक महत्वपूर्ण कार्य समाज में समन्वय स्थापित करना हैं। इस दृष्टिकोण से यह उपन्यास लोगों को जातीय और धार्मिक संकीर्णताओं से उठाकर सामाजिक समरसता कायम करने के लिए प्रेरित करता है। गणपति चौधरी ,सुरेश पांडे और विश्वमोहन शुक्ल के षडयंत्र में फंसकर गणपति शुक्ल जब देवदत्त को अपने घर से निकाल देते है तो स्थानीय अस्पताल का डॉक्टर मोहम्मद सुलेमान उसका बचाव करने में कोई कसर नहीं छोडता।'' ०४ निश्चित रूप से देवदत्त जैसे होनहार छात्र को दसवीं पास करने से लेकर आर्थिक सहकार्य करने तक का महत्वपूर्ण कार्य डॉ. सुलेमान करते है। देवदत्त बुखार के कारण एम.ए. द्वितीय वर्ष की परीक्षा में नहीं बैठ सकता तब वह पुनर्परीक्षार्थी के रूप में परीक्षा आवेदनपत्र भरकर अध्ययन करने लगता हैं तब भी उसके टूटू हुए मन को साहस और धैर्य देने का कार्य डॉ. सुलेमान करते है। तक डॉक्टर सुलेमान देवदत्त की जेब में १०० रूपये की नोट डाल देते हैं और कहते हैं कि, '' इसे अन्यथा नहीं समझिएगा। उम्र में बडा होने के कारण मैने आपको सदा छोटा भाई समझा है। नौकरी लगेगी तो लौटा दीजिएगा।'' २४ असगर वजाहत ने 'जिस लाहौर देख्या ओ जम्याई नई 'नाटक में इसी तरह के सौहार्दपूर्ण जीवन का वर्णन कर पाठकों को धर्मनिरपेक्षता के तत्व पर जीवन गुजारने की दरख़ास्त करते हैं। लखनऊ से पाकिस्तान में विस्थापित हो चुके सिकंदर मिर्जा की बेगम रतन की माई से पूछती हैं कि, '' माई अगर हम और आप (हिंदू और मुसलमान)

अगर छत के नीचे रह सकते है तो क्या इतने बडे भारत में एक साथ रहने के लिए क्या मुश्कीले थी? '' ०५ माई कुछ इस प्रकार जवाब देती हैं '' हिंदु और मुसलमान एक देश में बरसों से रहते आ रहे हैं, यह सियासत की राजनीति हैं। ''०६ अर्थात् सामान्य से सामान्य व्यक्ति भी धर्म और देश के मुद्दे चलते अंधे हो जाते हैं यही तो राजनीति का एहसास कराते हैं। इसीलिए साहित्य दूरियां बढाने का नही तो समन्वय प्रस्थापित करने का माध्यम हैं। साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्त धर्मनिरपेक्षता का तत्व वैचारिक समाज की निर्मिती में सहायक होता हैं यह बात भी सत्य हैं।

४. सामयिक विचारों की अभिव्यक्ति और पाखंड का विरोध :-

'पंथ और परिणति' उपन्यास में तत्कालीन और वर्तमान समय में व्याप्त बाबाओं के पाखंडों का पर्दाफाश किया गया हैं। देवदत्त जब रेल से भागलपुर से पटना की ओर प्रवास कर रहा था तब विकलांगता के नाम पर लोगों को ठगनेवाले गिरोह की असलीयत को सामने लाता हैं। आज समाज में पत्र लेकर या कार्ड लेकर लोगों की मानवता की भावना का फायदा उठानेवाले लोगों की संख्या कम नहीं हैं। छोटे बच्चों को सामने कर यह नया व्यवसाय जोर शोरों से चल रहा हैं। उपन्यास में ऐसे ही एक टोली का पर्दाफाश देवदत्त करता हैं। जलालपुर रेल स्टेशन पर 'बाबा नाम केवलम्' के माध्यम से आनंद मार्ग के प्रणेता की असलियत सामने लाता है। उस बाबा पर धोखाधड़ी और नाबालिग बालिकाओं के साथ यौन शोषण करने के अपराधिक मुकदमें दायर थे, फिर भी लोगों का उनके साथ जुड़ जाना ,अनुयायी बनना दुर्भाग्य की बात हैं।

आचार्य ओशो रजनीश के विचार जिस समय समाज और देश में प्रचारित हो रहे थे ऐसी पृष्ठभूमि में इस उपन्यास का लेखन हो हुआ हैं। जब सहयात्री देवदत्त को रजनीश के बारे में क्या सोचते हैं? यह सवाल पूछते हैं तब देवदत्त कुछ इस प्रकार जवाब देता हैं कि, '' आपका प्रश्न अत्यंत सामयिक और प्रासंगिक हैं। बस यूँ समझ लीजिए कि, रजनीश एक सुपर ठग है। भारतीय दर्शन के इतिहास में चार्वाक के बाद भौतिकवाद के सबसे बड़े प्रतिपादक रजनीश को सिर्फ धनी वर्ग के कल्याण की चिंता हैं। वा पश्चिमी सुखवाद और चका - चौंधपूर्ण जीवन शैली से प्रभावित हैं और सभी धर्मों के विरोधी हैं।.....रजनीश की पुस्तक 'संभोग से समाधि की ओर' भौतिक जीवन के आस्वाद पर आधारित है।'' ०७ उपन्यास में बिहार के राजनीतिक परिस्थिति पर प्रकाश डालने का प्रयत्न देवकीनंदन शुक्ल ने किया है। जैसे पटना विश्वविद्यालय के अंग्रेजी विभागाध्यक्ष प्रोफेसर त्रिवेणी वर्मा साम्यवादी विचारधारा से प्रेरित होकर अपनी नौकरी से त्यागपत्र देकर राजनीतिक करिअर को प्रारंभ करती है। अर्थात् बिहार की राजनीति में कांग्रेस, भारतीय जनता पार्टी, जनता दल के साथ -साथ मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के प्रभाव को भी दर्शाती है। इसीलिए इस उपन्यास में आज़ादी के बाद के मानव मूल्यों की अभिव्यक्ति हुई है, ऐसा हम कह सकते है।

५. न्यायपालिका की स्थिति पर चिंतन :-

'पथ और परिणति' में संविधान लागू होने पर देश में आये परिवर्तनों का वर्णन हुआ हैं, साथ ही पंच परमेश्वर की जगह न्यायपालिका ने ली। अब सभी प्रकार के विवादों के लिए न्यायपालिका से न्याय मिलने की उम्मीदे पनपने लगी। उपन्यास में देवदत्त के वंशजों का जमीनदार वर्ग से संबंध रहा है। गणपति शुक्ल देवदत्त के पिताजी हैं, इनकी पूर्वजों की जमीन को लेकर न्यायपालिका में दस वर्ष से मुकदमें की पैरवी चल रही थी। जब देवदत्त के सामने दसवीं के आगे की पढाई को लेकर प्रश्नचिन्ह उपस्थित होता हैं उसी समय गणपति शुक्ल को न्यायालय से पैतृक हिस्सेदारी में चार बीघा जमीन प्राप्त होती है। गणपति शुक्ल कहते हैं कि, '' मेरे बिना मुकदमा जीत ही लेती क्या? आरजू मिन्नत कर के तिवारीजी वकील से मुफ्त में मैने बनवाई थी। मेरे ही प्रभाव के कारण गिरिधर शुक्ल वकील ने कम फीस लेकर सब जज की अदालत में जोरदार बहस की थी। अंत में जब गोतियां ने पटना हाई कोर्ट में अपील दायर की तो राधाबिहारी ओझा वकील ने अपना मुकदमा समझकर उसमें हमलोगों को जीत दिलाई।'' ०८ अर्थात् न्यायपालिका, न्यायदेवता और वकील आदि का वर्णन सजीवता से कर लेखक कथानक से एकरूप बनाने में सफल होते हैं।

सारांश :-

'समान काम और समान वेतन' जैसे मुद्दे दाहक बन रहे है। २० -२५ साल अद्यापन क्षेत्र में कार्य करने के बावजूद भी समान वेतन मिल नहीं पाता है और न ही परिवार चलाने तक का मानधन प्राप्त होता है। पेंशन की बात तो सपने से कम नहीं है। उसे मजदूर से भी कम मानधन दिया जाता है। यह तो उच्च शिक्षा जगत की दुर्दशा ही हैं। देवदत्त के माध्यम से साहित्य जगत में पहली बार उच्चशिक्षित अद्यापक वर्ग की समस्याओं की ओर लेखक ने न केवल सहानुभूति से देखा है, बल्कि प्राथमिक, माध्यमिक, उच्च माध्यमिक और महाविद्यालयीन स्तरपर व्याप्त इस समस्या का पर्याय ढूंढने के लिए मौलिक चिंतन भी प्रस्तुत किया है। इसीलिए संविधान, कल्याणकारी राज्य, लोकतंत्र, न्यायपालिका, आदि के प्रति सचेतता लाने पर मानव के कर्तव्य और अधिकार पर कोई आक्रमण नहीं कर सकेगा। शिक्षा से समाज के लोगों के व्यवहार और आचरण को प्रणालीबद्ध करनेवाले नियम हैं, वहीं दूसरी ओर मूल्य सामाजिक मान्यता प्राप्त इच्छाओं और

उद्देश्यों को बनाये रखने में सहयोग प्राप्त होता है। इसीलिए सुशिक्षित व्यक्ति को शिक्षा के आधारपर ही आचरण करना न जाने क्यों चुनौती बन रहा हैं, यही चिंतन 'पंथ और परिणति' से प्राप्त होता है।

संदर्भ सूची :-

1. पंथ और परिणति' : लेखक - देवकीनंदन शुक्ल, मेघ प्रकाशन, दिल्ली, २००४ पृष्ठ क्र. ०४
2. 'पंथ और परिणति' : लेखक - देवकीनंदन शुक्ल,, मेघ प्रकाशन, दिल्ली, २००४ पृष्ठ क्र. ३१
3. क्पअपकमक इल ळवक . थ्मसकउंदए छवी ए थ्तंतौजतंने ंदक ळपतवनग चह ११३ण
4. 'पंथ और परिणति की समीक्षा' - समीक्षक डॉ. मिथिलेश कुमारी मिश्र का लेख संकलन 'आंसू और संगीत' मिनाक्षी प्रकाशन, पटना, २००६, पृष्ठ क्र. १७७
5. 'पंथ और परिणति' : लेखक - देवकीनंदन शुक्ल,, मेघ प्रकाशन, दिल्ली, २००४ पृष्ठ क्र. १३०
6. ' जिस लाहौर नइ देख्या ओ जम्याइ नइ' - लेखक असगर वजाहत, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, २०१०, पृष्ठ क्र ३४
7. ' जिस लाहौर नइ देख्या ओ जम्याइ नइ' - लेखक असगर वजाहत, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, २०१०, पृष्ठ क्र ३४
8. 'पंथ और परिणति' : लेखक - देवकीनंदन शुक्ल, मेघ प्रकाशन, दिल्ली, २००४ पृष्ठ क्र. १३६

B.Aadhar' International Peer-Reviewed Indexed Research Journal

Impact Factor -(SJIF) –8.632, Issue NO, (CDXLVI) 451-A

ISSN : 2278-9308 December, 2023

आधुनिक हिंदी उपन्यासों में दलित विमर्श

डॉ.दीपक विनायकराव पवार

दिगंबरराव बिंदु कॉलेज,भोकर

आज हिंदी साहित्य की सभी विधाओं में जैसे कि उपन्यास, कहानी, नाटक, आत्मकथा, कविता आदि में दलित विषयक रचनाएँ उभरकर सामने आ रही है, जिसे दृष्टिसमक्ष रखकर कहा जा सकता है कि दलित साहित्य का वर्तमान उज्ज्वल है और चलकर भविश्य भी उज्ज्वल बनता रहेगा। दलित-साहित्य का रचनाकार दलितों की असंख्य समस्याओं में से किसी-न-किसी समस्या को लेकर, उसको अपना विषय चुनकर रचनाओं का निर्माण कर रहा है, जिससे प्रेरणा लेकर दलितों के जीवन में परिवर्तन हो रहा है, इतना ही नही, वह हर क्षेत्र में आगे आ रहा है।

दलित साहित्य के बारे में हमारे सामने अनेक प्रश्न उपस्थित होते है। दलित साहित्य क्या है, किसे कहाँ जाए, क्या दलित साहित्य दलितों द्वारा लिखा गया, उसकी भूमिका क्या थी? दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र क्या होगा, दलित साहित्य का मुल्यांकन, मापदंड क्या है आदि। दलित शब्द के अर्थ व्याख्या विद्वानों ने इस प्रकार की है-डॉ.भोलानाथ तिवारी के मतानुसार-''जो दबा हो, कुचना हो, जिसे बढ़ने नही दिया गया हो-'दलित' कहलाता है।''[१] कुल मिलाकर हम कह सकते है कि दलित यानी जिसका दलन हुआ हो, शोषण हुआ हो, जिसको सताया गया हो या दबाया गया हो वह दलित है।

दलित साहित्य किसे कहा जाय यह बात भी बहुत उठने लगी। दलित साहित्य वह साहित्य है जो सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक क्षेत्रों में पिछड़े हुए, उत्पीड़ित, अपमानित एवं शोषित जनों की पीड़ा को अभिव्यक्त करता है। इस बारे अपने विचार व्यक्त करते हुए डॉ.कालीचरण स्नेही का कथन है, ''दलित साहित्य मानवमुक्ति का साहित्य होने के साथ-साथ शास्त्रों से मुक्ति की चेतना का साहित्य भी है। इस साहित्य में दलितोत्थान की मूल चेतना के साथ-साथ आम आदमी के दुःख, दर्द उसके सामाजिक सरोकार आदि थे नए सिरे से अभिव्यक्त करने का आग्रह है।''[२] दलित साहित्य मानवतावादी साहित्य है। डॉ.आंबेडकर की वैचारिक पृष्ठभूमि पर खड़ा यह साहित्य जिसे असली आंबेडकरवादी साहित्य भी कहाँ जाता है।

मोहनदास नैमिशराय ने भी दलित साहित्य के बारे में कहा है कि ''दलित साहित्य यानी बहुजन समाज के सभी मानवीय और मूल्यों के प्राप्ति के उद्देश्यों से लिखा गया साहित्य है, जो संघर्ष से उपजा है, जिसमें समता और बंधुता का भाव है और वर्णव्यवस्था से उपजे जातिभेद का विरोध है।

हिंदी में दलित साहित्य, मराठी भाषा के बाद आया। नव-जागरण का पूरा समाज सुधारक आंदोलन महाराष्ट्र, गुजरात, और बंगाल में चला। समाज सुधारक ज्योतिबा फुले जैसे बड़े सामाजिक परिवर्तन के पक्षधर रहे। हिंदी साहित्य में दलित चेतना का स्वर काफ़ी उभरा है। परिणामस्वरूप कविताएँ, कहानियाँ, उपन्यास, आत्मकथाएँ और निबंध विशेष रूप से लिखे जा रहे है। दलित साहित्य के केंद्र में डॉ. आंबेडकर के विचार है। साहित्य में नारी-विमर्श के बाद दलित विमर्श की चर्चा विशेष रूप से हो रही है।

दलित साहित्य का जन्म महाराष्ट्र में सन १९६० में एक आंदोलन के रूप में हुआ। इस वैचारिक आंदोलन ने फिर धीरे-धीरे पूरे भारतवर्ष में अपनी नींव डाली। दलितों ने समाज की स्वानुभूतियों को लेखनी के द्वारा साहित्यिक रूप दिया। अपने वेदनामय समाज के अतीत को बेपर्दा कर चित्रित किया। सवर्ण समाज द्वारा किये गये अत्याचार, अन्याय, अमानुषीयता, आदि को समाज के सामने रखा और इससे दलित समाज को अवगत कराया। इससे दलित समाज में वैचारिक क्रांति का जन्म हुआ। सन १९७२ तक आते-आते दलित साहित्यने अपनी वैचारिक एवं साहित्यिक पृष्ठभूमि के रूप में जोर पकड़ा। कई दलित लेखकों ने अपनी कलम को धार दिया और साहस भी किया। सदियों से सवर्णों ने जिस समाज को हाशिए में रखा था वह समाज आज जागृत हो गया है और अनेक लेखकों को पैदा किया। जिसमें पूरूषोत्तम सत्यप्रेमी, ओमप्रकाश वाल्मिकी, मोहनदास नैमिशराय, सूरजपाल चौहान, जयप्रकाश कर्दम, डॉ.एन.सिंह, कंवल भारती, कौशल्या बैसंत्री, सुशीला टाकभौरे आदि ने अपने साहित्य में दलिए समाज के अतीत के बिखरे पृष्ठों को धीरे-धीरे खोला।

आधुनिक हिंदी साहित्य में दलित साहित्य मराठी भाषा से आया। सर्वप्रथम महाराष्ट्र में दलितों ने ही आत्मकथा, उपन्यास और अन्य रचनाएँ की। उसका कारण यह था कि उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य पूना में ज्योतिबा फूले जैसे संघर्ष शील क्रांतिकारी का उदय हुआ। उन्होंने दलितों और स्त्रियों के लिए पाठशालाएँ खोली। जाति-पाति और छुआछूत के खिलाफ़ आवाज उठाई। उन्होंने 'गुलामगिरी' पुस्तक लिखकर दलितों को जागृत किया। दलित साहित्य का उद्भव संघर्ष और आंदोलन से हुआ है। बाबासाहब के दलितोध्दार के कार्यों से संपूर्ण दलित समाज प्रभावित हुआ। दलित लेखकों ने

बाबासाहब की सोंच और उनके कार्य कार्य का गौरव गान किया। इस काल में जो लेखन हुआ है वह क्रांती का प्रचार करनेवाला है। स्वातंत्र्योत्तर काल में शिक्षित दलित युवकोंने संघर्ष और संगठन के महत्व को समझा। भारतीय स्वतंत्रता से उनके प्रश्न हल न हो सके। परिस्थिति के विरूध्द संघर्ष के कारण उन्होंने अपने मन में होनेवाली असंतुष्टता को अपने लेखन द्वारा व्यक्त किया। इस लेखन को ही 'दलित साहित्य' के नाम से जाना गया।

हिंदी साहित्य के प्रसिध्द कथाकार मोहनदास नैमिशराय ने अपने लेख 'हिंदी में दलित साहित्य और चेतना के स्वर' में लिखा है कि –''हिंदी साहित्य में दलित समस्या को लेकर पहली रचना १९७४ में देखने में आती है।''[३] यह है सरस्वती पत्रिका में छपी हीरा डोम की कविता 'अछुत की शिकायत।' इसके बाद हरिऔध, स्नेही, चण्डीप्रसाद, हृदयेश तथा अन्य कवियों ने भी इस विषय पर कलम चलाई। आगे के कवि और कविताएँ दलितों के दुःख-दर्द पीड़ा से जुड़ते गये। हिंदी में ऐसे बहुत से प्रयोग हुए। प्रयोगवादी कविता से लेकर छायावादी, प्रकृतिवादी, रहस्यवादी, स्वच्छंदतावादी तथा जनवादी। पर जनवाद से पूर्व कवि तथा कविताएँ जहाँ एक ओर दलितों, शोषितों की बेचारगी का ही वर्णन करते रहे, वही दूसरी तरफ अधिकांष कवि दलित जन के आस-पास क्रांति के झुठे सपने बुनता रहा। जनवादी साहित्य ने तो ब्राम्हणवाद की ओर से दलितों का ध्यान हटाकर पूंजीवाद की मृग-मारीचिका पर लगाकर उसे भ्रम में डालने का ही कार्य किया।''[४]

हिंदी साहित्य में पिछले दो दशकों में दलित साहित्य के बारे में विपूल सामग्री प्राप्त होने लगी है। हिंदी के दलित साहित्यकारों ने भी अपनी लेखनी को नयी गति दी है। इसलिए हिंदी साहित्य की सभी विधाओं में दलित लेखक-कुछ-न-कुछ अवश्य लिख रहे है। जिसमें गैर दलित का भी योगदान रहा है। सहानूभूतिपरक दलित साहित्य लिखने में प्रेमचंद का नाम अवश्य याद किया जाता है। १९६० ई. के बाद मराठी में दलित आंदोलन धीरे-धीरे हिंदी में आना शुरू हुआ फलस्वरूप १९८० तक हिंदी में दलित साहित्य के रूप में रचनाएँ लिखी जाने लगी। प्रेमचंद की कहानियों में ठाकुर का कुंआ, पूस की रात, कफ़न और सद्गति आदि में दलित जीवन की समस्या का चित्रण अवश्य मिलता है।

गैर दलित उपन्यासकारों ने अपने भी उपन्यासों में दलितों की समस्याओं को चित्रित किया है, लेकिन कल्पना एवं यथार्थ का समन्वय करके। उपन्यासकारों का दलितो से गहरा संबंध होने के कारण वे उनकी संवेदनाओं से जुड़कर उनकी मुक्ति के लिए लेखनी चलाते है। उन्होंने भलेही दलितों की पीड़ा का अनुभव न किया हो लेकिन उनकी पीड़ा को वाणी देने का बखूबी कार्य कर दिखाया है।

प्रेमचंद ने हिन्दी दलित साहित्य को तीन उपन्यास प्रदान किये है-'रंगभूमि', 'कर्मभूमि' और 'गोदान'। प्रेमचंद ने सन १९२५ में रंगभूमि उपन्यास की रचना की जिसमें उन्होंने तत्कालीन भारतीय सामाजिक -राजनीतिक परिवेश को बृहद रूप में व्याख्यायित किया है। इसमें प्रेमचंदजी ने ग्रामीण व्यवस्था और साम्राज्यवाद के व्यापक संघष की कथा को वर्णित किया है। इस कथा में सांस्कृतिक मूल्यों की, निम्नवर्गीय भावनाओं की राजनीति सत्ता की तथा आत्मीय और भौतिक अंतर्दूद्प की संघर्ष गाथा को प्रस्तुत किया है।

'कर्मभूमि' उपन्यास की रचना सन १९३२ में की है। इस उपन्यास में दलित समस्याएँ जैसे कि अज्ञान, गंदी बस्तियों में रहना, सफाई का अभाव, शिक्षा के प्रति अनभिज्ञता आदि को स्पष्ट किया है। 'कर्मभूमि' उपन्यास की मूल समस्या अछूतोध्दार की हैं, इसके अतिरिक्त अछूतों के मंदिर प्रवेश के निषेध की समस्या को भी उन्होंने अपने उपन्यास में स्थान दिया है। इस उपन्यास के प्रमुख पात्र - डॉ. शांतिकुमार, नैना, रेणुका, सुखदा, अमरकांत आदि के प्रसंग में अछूतोध्दार की भावना दिखाई देती है। अमरकांत एक गांधीवादी पात्र के रूप में दिखाई देता है जिसका साथ अन्य पात्र देते है और उनके प्रयत्नों से दलितों को मंदिर प्रवेश मिल जाता है।

'गोदान' सन १९३६ में लिखा प्रेमचंद का यह तीसरा दलित उपन्यास है। यह उपन्यास कृषक तथा गरीबों के जीवन की गाथा है। इसमें प्रेमचंद ने मातादीन ब्राम्हण तथा सिलिया के चरित्र द्वारा दलितों की समस्याओं को उजागर किया है।

थ्नराला कृत 'कुल्लीभाट' नामक लघु उपन्यास दलितों पर लिखा गया है। निराला के अनुसार भारत का उध्दार या विकास करना हो तो शुद्रों का उध्दार जरूरी है। इसी को केंद्र मे रखकर इस उपन्यास की रचना की है। उपन्यास में कुल्ली के जीवन संघर्ष के माध्यम से निराला जी का सामाजिक जीवन व्यक्त हुआ है।

फणीश्वरनाथ रेणू ने स्वातंत्र्योत्तर हिंदी दलित साहित्य को समृध्द करने में विशेष योगदान दिया है। उनके द्वारा रचित दो उपन्यास 'मैला आँचल' और 'परती परिकथा' दलित चेतना को उजागर करते है। गांव का विभाजन जात-पात के आधार पर हुआ है। उच्च जाति के लोग मजदूरों की स्त्रियों का शारीरिक शोषण करते है। दलितों की आर्थिक स्थिति इतनी दयनीय है कि दलित स्त्रियाँ अपनी इज्जत बेचकर घर का गुजारा करती है। उपन्यास के पात्र कालीचरण, बावनदास और डॉ.प्रशांत दलितोध्दार का कार्य करते है।

रेणूजी ने 'परती-परिकथा' में आजादी के बाद दलितों की स्थिति का वर्णन किया है। दलित लोग धीरे-धीरे जागृत हो रहे है। अपने अस्तित्व के प्रति जागृत दिखाई दे रहे है। दलित परिवेश में आज तीव्र गति से परिवर्तन आ रहा है। जाति व्यवस्था टुट रही है इसका संकेत भी रेणूजी ने अपने उपन्यास में दिया है।

इस प्रकार नागार्जून का 'बलचनमा' और वरूण के बेटे, रांगेय राघव का 'कब तक पुकारूं', गोपाल उपाध्याय का 'एक टुकड़ा इतिहास', मधुकर सिंह का 'सोनभद्र की राधा', अमृतलाल नागर का 'नाच्यौ बहुत गोपाल', मन्नू भंडारी का 'आपका बंटी' और 'महाभोज', जगदीशचंद्र का 'धरती हनन अपना', 'नरक कुंड में बास', और 'जमीन अपनी तो थी' गिरिराज किशोर का 'यथा प्रस्तावित' और 'परिशिष्ट' अब्दुल बिस्मिल्लाह का 'झीनी झीनी बीनी चदरिया', रमेशचंद्र शाह का 'किस्सा गुलाम', संजीव कृत 'धार' नमीतासिंह का 'अपनी सलीबें', रमणिका गुप्ता का 'सीता' और 'मौसी', कृष्णा अग्निहोत्री का 'टपरेवाले', मैत्रेयी पुष्पा का 'अल्मा कबूतरी', आदि उपन्यासों में दलितो के शोषण, पीड़ा तथा उनकी संवेदनाओं चित्रित किया है।

दलित एवं नारी विमर्श ने यथार्थानुभूति के स्तर पर उजागर करके वाल्मिकी से लेकर अब तक के साहित्य पर सवालिये निशान लगाये है। जहाँ दलित सहित्य के स्तर को लेकर तरह-तरह के सवाल उठाये जा रहे है, वहीं दलित साहित्य की कृतियों को पढ़ने के बाद अब तक लिखे गये सवर्णवादी साहित्य का बौनापन साफ नजर आता है। दलित साहित्य साहित्यिक सौंदर्यशास्त्र जो श्रम एवं संघर्ष पर आधारित है उसे स्वीकार्य किया। दलित लेखकों द्वारा लिखे गये दलित उपन्यासों की चर्चा हम यहाँ इस लेख में करेंगे।

'छप्पर' उपन्यास जयप्रकाश कर्दम द्वारा (१९९७) में लिखा जो दलितों की जीवन की संघर्षगाथा है। वह उपन्यास दलित लेखक द्वारा दलित जीवन पर लिखित पहला उपन्यास है। इस उपन्यास में भारत आजादी के बाद स्वतंत्रता, समानता, एवं बंधुता के सवैधानिक मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में सामाजिक संरचना के सवर्जनात्मक साहित्य की जमीन की तलाश करता है। 'छप्पर' उपन्यास में दलित लेखक के भोगे हुए यथार्थ का वर्णन मिलता है।

'मुक्तिपर्व' मोहनदास नैमिशराय का प्रमुख उपन्यास है। लेखक ने इस उपन्यास में दलित-जीवन पर यथार्थ रूप से चित्रण किया है। दलितों को अज्ञानता, निरक्षरता, विषमता, भेदभाव, धर्मांधता, कुरीतियों, व्यसन, स्त्री-पुरूष भेद, शोषण, अन्याय और जुल्मों से मुक्त होना है । इस उपन्यास के जरिए दलितों को उनके जीवन में कदम-कदम पर उच्चवर्ण के लोगों की उनके प्रति हीन भावना के कारण आनेवाली मुश्किले, होनेवाले जुल्म, अत्याचार आदि को भली-भाँति अभिव्यक्ति दी है। इस इस उपन्यास सुनित पात्र द्वारा यह बताया गया कि दलितों को अपना विकास करना है, अपनी स्थिति से ऊपर उठना है तो शिक्षित होना बेहद जरूरी है। शिक्षा ही जीवन में अच्छा परिवर्तन ला सकती है। इनका दूसरा उपन्यास 'वीरांगना झलकारीबाई' है। इसमें लेखक ने इतिहास की परतों को निकालकर पाठकों के सामने रखा है। ऐतिहासिक खोजों के आधारपर स्पष्ट हो चुका है कि झलकारी बाई दलित-पिछड़ी कोरी जाति की की थी जो सदोवा मूलचंद की बेटी थी। देश व समाज के प्रति प्रेम भावना और बलिदान के कारण उन्होंने इतिहास में अपना नाम अमर किया है। इसी प्रकार 'जख्म हमारे' उपन्यास में नैमिशराय ने गुजरात के सांप्रदायिक तांडव को दर्शाया है। मूल रूप से यह दलित परिवार में जन्म लेने से अपमानित तथा प्रताड़ित मनुष्य की कहानी है।

'महानायक बाबासाहब डॉ. आंबेडकर' यह मोनदास का पहला ऐतिहासिक उपन्यास है। आधुनिक भारत के महानायक के जीवन संघर्ष से ओतप्रोत इस उपन्यास को पढ़ने के पश्चात आंबेडकर जी का पूरा जीवन संघर्ष हमारे सामने प्रस्तुत हो जाता है। बाबा साहब आंबेडकर पर लगभग सभी रचनाकारों ने अपनी कलम चलाई है, परंतु मोहनदास नैमिशराय के उपन्यास से ऐसा प्रतीत होता है कि वे स्वंय बाबा साहब के साथ रहे हो। इस उपन्यास के माध्यम से मोहनदास नैमिशराय को अभी लोकप्रियता मिली है।

दलित जीवन पर लिख गया उपन्यास 'मिट्टी की सौगंध' सन १९९५ में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास की रचना प्रेम कापड़िया ने की । इस उपन्यास में ग्रामीण सामंती ताकतों के विरोध में दलितों में चेतना जागृत करना मूल विचारबोध है। इस उपन्यास में ग्रामीण दलितों के सामाजिक, आर्थिक, शारीरिक और नैतिक शोषण का मार्मिक चित्रण मिलता है। इस उपन्यास की नायिका शीला अकूरों के हवस का शिकार बनती है। विजेंद्रप्रताप अपने पिता द्वारा बलात्कारीत शीला को अपनी पत्नी रूप में स्वीकार करता है, एक देह बेचकर अपना गुजारा करनेवाली कमला को नौकरी दिलाता है। दलितों के लिए 'न्याय सेना' नामक संस्था का निर्माण करता है। यह उपन्यास यथार्थवादी विचारधारा का दर्शन कराता है।

सत्यप्रकाश प्रेमी द्वारा लिखित 'जस तस भई सवेरा' उपन्यास की रचना सन १९९८ में हुई है। इसमें दलित वर्ग पर हो रहे अन्याय अत्याचार का यथार्थ वर्णन किया है। इस उपन्यास में जमींनदार देवीलाल दलित हंसा का आर्थिक,मानसिक और शारीरिक शोषण करता है। ग्रामीण अनपढ़ दलित धर्मांधता में फँसते ही जाते है, जिससे मुक्ति दिलाना उपन्यास का मूल मंत्र है। इस उपन्यास में लेखक विद्रोही चरित्रों द्वारा न्याय दिलाने का संकेत भी किया है। शायद उसेही जैसे-तैसे सवेरा होना मानते है।

उसी प्रकार एक और उपन्यास 'थमेगा नही विद्रोह' उपन्यास सन २००८ में उमराव सिंह जाटवजी ने लिखा है। यह उपन्यास का प्रारंभ पंजाब में घटी घटना, से प्रारंभ होता है। पंजाब के मानसा गांव में दलितों पर सौच जानेपर पाबंदी लगा दी जाती है। और यह घटना अमर उजाला अखबार में छपकर आयी थी। उसी चित्र को उपन्यास में रखकर दलितों की पीड़ा को चित्रित किया गया है।

इसी क्रम में आनेवाले उपन्यास 'उधर के लोग','धन-धरती', 'एक स्वप्नदर्शी की मौत', 'हमलावर', डंक 'गटर का आदमी' इन सारे उपन्यासों में दलित वर्ग का शोषण, मानसिक पीड़ा, त्रासदी, संघर्ष आदि को चित्रित किया गया है।

पुरूष लेखकों के साथ-साथ महिलाओं ने भी इस क्षेत्र में अपना योगदान दिया है, वह अतुलनीय है। इसमें नाम आते है, कौशल्या बैसंत्री, कावेरीजी, सुशीला टाकभोरे, कुसुम मेघवाल, कमल तेजस आदि महिला कथाकारों ने हिंदी साहित्य में अपना अमूल्य योगदान दिया है।

कावेरी का उपन्यास 'मिस रमिया' सन २००७ में प्रकाशित हुआ। यह उपन्यास रमिया और श्यामली के दोस्ती का चित्रण और रमिया का संघर्ष बताया है। एक बार दोनों सहेलिया छुट्टी के समय स्कूल में खेल रही थी। खेलते-खेलते रमिया को प्यास लगी इसलिए वो कुएं पर जाती है, पर वहाँ बाल्टी नही पाकर वह मास्टर के क्लास के आगे की बाल्टी उठाती है। जैसे ही उसने बाल्टी को हाथ लगाया मास्टर ने कहा, ''नीच हल्की जाति के लोग, किसको पूछकर बाल्टी को हाथ लगाया।'' ऐसे संघर्षों को झेलती रमिया शिक्षा प्राप्त करके अध्यापक बन जाती है। वह अपने समाज में नारी शक्ति बन उनमें नवप्राण, नवजागृति का संचार करती है।

'नीला आकाश' सन २०११ में डॉ. सुशीला टाकभौरे द्वारा प्रकाशित हुआ उनका पहला उपन्यास है। इसमें दलित कही जानेवाली तीन-चार जातियों का उल्लेख किया गया है। जैसे-जैसे उपन्यास का सृजन आगे-बढ़ता है तो वैसे-वैसे उनमें जागरूकता उत्पन्न होती है। यह उपन्यास दो प्रमुख पात्रों पर आधारित है-नीलिमा और आकाश। इस उपन्यास में हमें दलित जाति की असीम सहनशक्ति एवं विवशता का परिचय होता है, वहीं दुसरी ओर उनकी विशिष्ट निर्भयता शक्ति एवं साहस का परिचय होता है।

क्मल तेजस द्वारा रचित उपन्यास 'गवाह तथागत' सन २००४ में प्रकाशित हुआ। इसमें लेखिका ने स्त्री मन के अनछुए अनुभव, गहन वेदनाओं, पीड़ा, शोषण का यथार्थ चित्रण किया है। यह उपन्यास दलित स्त्री विकास की संघर्षगाथा है। जातिवादी समाज में जब दलित स्त्री पढ़ लिखकर अपने अस्तित्व और पहचान को मजबूत कर खडी होती है तो क्रूर समाज चारों ओर से इस पर हमला बोलता है।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते है कि इस आधुनिकता में नारी विमर्श और दलित विमर्श की चर्चा किए बिना उसकी कल्पना करना असंभव है। उत्तर आधुनिकता में महिला लेखिकाओं के योगदान को नकारा वही जा सकता। दलित साहित्य ने हिंदी साहित्य में अपनी एक अलग जमीन खड़ी कर दी है।

संदर्भ :-

१) हिंदी आंचलिक उपन्यासों में दलित जीवन - डॉ. भरत सगरे, पृ.१६.
२) हिंदी साहित्य में दलित अस्मिता - डॉ. कालीचरण स्नेही - पूरोवाक प्रास्तानासे
३) हिंदी दलित कविता - नये संदर्भ - पृ.१४.
४) दलित साहित्य चिंतन के विविध आयाम - से.डॉ.एन.सिंह पृ.१०६.
५) 'मिस रमिया' - कावेरी - पृ.४५.

B.Aadhar' International Peer-Reviewed Indexed Research Journal

Impact Factor -(SJIF) –8.632, Issue NO, (CDXLVI) 451-A

ISSN : 2278-9308 December, 2023

धूमिल के काव्य में राजनीतिक चिंतन और चुनौतियाँ

प्रा. डॉ. अनिल कुमार रामधन राठोड़

शोध निर्देशक, हिंदी विभाग, शहीद भगतसिंह महाविद्यालय, किल्लारी, ता. औसा जि. लातूर

चलभाष नं. 9403 164 355

चिंतन एक सामाजिक प्रक्रिया है और ज्ञानात्मक व्यवहार का जटिल रूप है। यह शिक्षण, स्मरण, कल्पना आदि मानसिक क्षमताओं से जुड़ा रहता है। प्राय सभी प्राणियों में सोचने समझने एवं चिंतन करने की क्षमता होती है परंतु मनुष्य बुध्दिबल एवं चिंतन से अन्य प्राणियों से विकसित प्राणी है। मनुष्य की प्रगति मुख्यतः उसके चिंतन पर आधारित है और वह इसके उपयोग से अपनी कई प्रकार की चुनौतियों (समस्याओं) का हल करता है। मनुष्य की इसी चिंतन प्रक्रिया के संदर्भ में वारेन द्वारा दी गई परिभाषा को अपने शब्दों में डॉ. एस. एन. शर्मा इस प्रकार अभिव्यक्त करते हैं - "चिंतन एक विचारात्मक प्रक्रिया है जिसका स्वरूप प्रतीकात्मक है, इसका प्रारंभ व्यक्ति के समक्ष किसी समस्या अथवा क्रिया से होता है परंतु समस्या के प्रत्यक्ष प्रभाव से प्रभावित होकर अंतिम रूप से समस्या सुलझाने अथवा उसके निष्कर्ष की ओर ले जाती है।"[1] तात्पर्य चिंतन के द्वारा ही चुनौतियों का समाधान करने का प्रयास किया जाता है। मोहसिन इस संदर्भ में लिखते हैं - "चिंतन समस्या समाधान संबंधी अव्यक्त व्यवहार है।"[2]

अतः चिंतन को हम मानसिक विचार की अवस्था भी कह सकते हैं अर्थात व्यक्ति की एक विचारशील अवस्था का नाम चिंतन है । सभी मनुष्य में सोचने एवं समझने की क्षमता समान नहीं होती । किन्ही में यह क्षमता निम्न स्तर की होती है तो कई मनुष्य में यह क्षमता मध्यम से उच्च स्तरीय होती है । इसी उच्च स्तरीय चिंतन के द्वारा साहित्यकार अपनी सृजनात्मक प्रतिभा के बल पर युगीन यथार्थ, समस्याओं तथा चुनौतियों का समाधान करते हुए युगपटल का दिशा निर्देश करता है।

आजादी के पश्चात हिंदी साहित्य जगत् के साठोत्तरी कविता के सशक्त हस्ताक्षर एवं राजनीतिक मोहभंग तथा सामाजिक उत्पीड़न की बखियां उधेड़कर रखनेवाले संवेदनशील, जागरूक तथा विद्रोही कवि धूमिल सच्चे अर्थों में एक जनवादी कवि रहे हैं । सुदामा पांडे 'धूमिल' के काव्य संग्रह में वैयक्तिक जीवन चुनौतियों के साथ-साथ युगीन परिस्थिति, परिवेश में उपजी विभिन्न चुनौतियों से जूझते हुए आम आदमी का जीवन संघर्ष संजीव एवं सशक्त रूप में उद्घाटित हुआ है। कवि ने न केवल जिवनगत चुनौतियों का उद्घाटन ही किया बल्कि चिंतनात्मक अभिव्यक्ति द्वारा युगीन चुनौतियों का समाधान भी प्रस्तुत किया है। इससे यह स्पष्ट है कि - "धूमिल का काव्य क्षेत्र अत्यंत व्यापक है, जिसमें सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक परिस्थितियों की कविताएं है। मानो धूमिल की कविताएं स्वाधीन भारत की अंतर्दशा का एक्सरे है।"[3] इस प्रकार धूमिल की कविता जीवन के विविध स्तर और आत्मविश्वास के अनेक स्वरों को यथार्थ के साथ ग्रहण करती हुई जन-जीवन से जुड़कर आगे बढ़ती है।

धूमिल की अनुभूति और अभिव्यक्ति पक्ष अत्यंत प्रबल है। उन्होंने अपने काव्य-भूमि में राजनीतिक आग में जलते हुए जन सामान्य व्यक्ति की तस्वीर को हू-ब-हू प्रस्तुत किया है। राजनेता लोग जनता को चुनाव आते ही बड़े-बड़े आश्वासन देकर चेहरे पर आशा, उत्साह तथा विश्वास की एक झलक निर्माण करते हैं। परंतु जैसे ही चुनाव जीत जाते हैं तो, जन सामान्य व्यक्तियों के जीवन की आशाओं का सूरज डूब जाता है। ऐसी स्थिति में जन सामान्य

आदमी में अविश्वास, निराशा तथा सर्वत्र नफरत की भावना किस तरह से जागृत होती है इसका चित्रण धूमिल ने किया है -

"नारों के पीछे
चीजों का नाटक बनाती हुई भीड़ में
किसी बेशऊर आदमी का
बैरंग पुतला चिटख-चिटख के जल रहा है,
उसकी राख फुटपाथ पर पड़े भिखारी के
खाली कटोरे में
आसमान के नीचे
लगता है कि हर चीज
झूठ है। आदमी, देश, आजादी और प्यार
सिर्फ नफरत सही है।"[4]

आजादी के 75 साल बाद आज भी हमारे देश में जाति, धर्म और मजहब के नाम पर नफरत की राजनीति की जा रही है, जो एक चुनौती के रूप में हमारे सम्मुख है।

धूमिल को लगता है कि, सत्ताधारी वर्ग सत्ता से दूर नहीं रह सकता। आवेश के उन्हीं क्षणों में या किसी अन्य कारण से यदि वे सत्ता त्याग भी देते हैं, तो दूसरे ही क्षण उसका स्वार्थ जोर मारता है और वह फिर सत्ता से जुड़ने की जोड़-तोड़ में लग जाते हैं। जो वर्तमान परिप्रेक्ष्य में युक्ति-युक्त लगता है। जैसे -

"मैं रोज देखता हूं कि व्यवस्था की मशीन का
एक पुर्जा गरम होकर
अलग छिटक गया है और
ठण्डा होते ही
फिर कुर्सी से चिपक गया है
उसमें न हया है
न दया है।"[5]

अक्सर कहा जाता है कि, प्रजातंत्र में हिंसा और दमन के लिए सामान्यतः कोई स्थान नहीं होता क्योंकि हिंसा और दमन की राजनीति निरंकुश शासको की होती है, परंतु हमारे प्रजातंत्र में सत्ता हासिल करने के लिए समाज में भयंकर हिंसा कर जन सामान्य मनुष्य की बलि चढ़ाने पर राजनेता लोग तुले हुए हैं। जिसके कारण हमारा प्रजातंत्र भयंकर दमनचक्र का प्रतीक बनकर रह गया है। स्वार्थ साध्य करने के लिए कहीं पर जब हत्याएं हो जाती है तो हमारे राजनेता लोग उसे हत्या न कह कर कुछ और ही कह रहे हैं। जैसे -

"एक आदमी
दूसरे आदमी की गर्दन
धड़ से अलग करता है
जैसे एक मिस्त्री बल्टू से
नट अलग करता है
तुम कहते हो यह हत्या हो रही है

मैं कहता हूं मैकेनिजम् टूट रहा है।"[6]

राजनीति ने मानवता को ही समाप्त कर दिया है। रोज अफवाहों का बाजार गर्म रहता है, धर्म की नैतिकता की दुहाई दी जाती है, कुछ लोगों के लिए सुविधाएं जुटाई जाती है और अधिकांश जनता का शोषण होता है। प्रजातंत्र में देश के नागरिकों को मूलभूत अधिकार देने की बात होती है किंतु वास्तविकता यह है कि, खाने के लिए अनाज मिलता है तो, तन ढंकने के लिए कपड़ा नहीं मिलता। किसी को रहने के लिए मकान मिलता है, तो किसी को पेट भरने के लिए रोटी नहीं मिलती है। इस भयावह स्थिति को धूमिल ने अपनी कविताओं में समेटा है। हमारे प्रजातंत्रीय व्यवस्था में साधन संपन्न सुविधा भोगी लोग है जिनके पास खाने के लिए इतने व्यंजन है कि, कौन-सा कब और कैसे खाएं इसकी समस्या है, तो दूसरी तरफ वह आदमी है, जो रोटी के लिए लड़ रहा है फिर भी उसे रोटी नसीब नहीं होती। इसका चित्रण धूमिल ने अपनी कविताओं में किया है। जैसे -

"एक आदमी
रोटी बेलता है
एक आदमी रोटी खाता है
एक तीसरा आदमी भी है
जो न रोटी बेलता है ना रोटी खाता है
वह सिर्फ रोटी से खेलता है
मैं पूछता हूं
यह तीसरा आदमी कौन है?
मेरे देश की संसद मौन है।"[7]

धूमिल भारतीय प्रजातंत्र के इस अमानवीय चेहरे को देखकर बड़े क्रोधित हो जाते हैं। आपातकाल काल से प्रजातंत्र का जो चेहरा उनके सामने आया वह किसी तानाशाही से बदत्तर था। जनतंत्र के इसी असली रूप को बेनकाब करते हुए उसे चंद चालाख आदमियों द्वारा आम-आदमी के खिलाफ रचा हुआ एक खुला षड्यंत्र मानते हैं। जैसे -

"न कोई प्रजा है
न कोई तंत्र है
यह आदमी के खिलाफ
आदमी का खुला-सा
षड्यंत्र है।"[8]

प्रजातंत्र में संसद की भूमिका महत्वपूर्ण होती है, लेकिन हमारे यहाॅं संसद का कोई महत्व नहीं रहा है। यहाॅं ईमानदारों की नहीं चलती जो बेईमान, झूठ, मक्कार, बदचलन, बेहया, बदतमीज है उन्हीं का बोलबाला है। इससे स्पष्ट है कि, हमारे संसद सच्चाई की नींव पर खड़ी न होकर बेईमानी का अड्डा बन चुकी है, इसी स्थिति पर धूमिल करारा व्यंग्य करते हुए लिखते हैं कि -

"अपने यहाॅं संसद
तेल की वह घानी है
जिसमें आधा तेल है
और आधा पानी है

और यदि यह सच नहीं है
तो वहाँ एक ईमानदार आदमी को
अपनी ईमानदारी का मलाल क्यों है?
जिसने सत्य कह दिया है
उसका बुरा हाल क्यों है ?"[9]

प्रजातंत्र में संसद को भारतीय जनता का प्रतिबिंब होना चाहिए। संसद के माध्यम से देश की धड़कन सुनाई पढ़नी चाहिए, परंतु ऐसा हो नहीं रहा है। संसद और संविधान जनता को भ्रम में डालने के साधन मात्र बन गए हैं।

धूमिल ने अपनी कविताओं के माध्यम से राजनेताओं की पोल खोल कर रखी है। आज नेतागण शक्ति प्रदर्शन के लिए झंडियों, पन्नियों, मोटर कारों, झंडे और डंडे लिए समर्थक चमचों का हुजूम उसे निरंतर खर्चिला बनाता जा रहा है और नेताओं को शक्ति और संपन्नता के प्रतीक के रूप में देखा जा रहा है। इसी के चलते वोट पैसों के बल पर खरीदे जा रहे हैं। शक्ति के बल पर पूरे गांव के वोट फर्जी रूप से डाल दिए जाते हैं। जीते प्रत्याशी हरा दिए जाते हैं और हारे हुए प्रत्याशी जीत जाते हैं। गुटबाजी के खुल्लम-खुल्ला माहौल के कारण एक गुट दूसरे गुट को भ्रष्ट और गलत बताते हुए जनता की सेवा के नाम पर एक दूसरे से लड़ते रहते हैं और यह साबित करना चाहते हैं कि, चुनाव में जनप्रतिनिधि बनने का एकमात्र अधिकार उन्हें ही है। जैसे -

"सब कुछ अब धीरे-धीरे खुलने लगा है
मत वर्षा की इस दादुर शोर में
रंग-बिरंगे झंडा फहरा रहे हैं
गिरगिट की तरह रंग बदलते हुए
गुट से गुट टकरा रहे हैं
वे एक दूसरे के दांत किलकित कर रहे हैं
एक दूसरों को दूर-दूर बिल-बिल कर रहे हैं।"[10]

इस प्रकार कवि ने अपने चिंतन एवं सृजनगत अभिव्यक्ति के द्वारा आजादी के पश्चात् भारतीय राजनीति में व्याप्त चुनौतियों को यथार्थ के धरातल पर आम अवाम् के सामने रखा। कवि ने न केवल चुनौतियों को सामने रखा बल्कि अपने चिंतन के बलबूते पर जन- मानस को उन चुनौतियों से निजात दिलाने के लिए भी अपनी कलम चलाई। यही कवि की श्रेष्ठता को साबित करता है।

आम आदमी की उदासीनता, तटस्थता और जिवनगत चुनौतियां धूमिल को बड़ा दुखी बनाती है। धूमिल को लगता है कि, जिस जनता को स्वयं शस्त्र उठा लेने चाहिए वह इतनी भयभीत है कि, कवि को भी अपराधी का नाम नहीं लेने देती। विभिन्न चुनौतियों से जर्जर संघर्षशील आमजन की दयनीय स्थिति को देखकर धूमिल का हृदय द्रवित होता है। ऐसी स्थिति में स्वयं कवि जनता से पूछता है -

"क्या तुमने कभी सोचा कि तुम्हारा
यह जो बुरा हाल है
इसकी वजह क्या है ?"[11]

जन-सामान्य व्यक्ति की ऐसी स्थिति से कवि बड़ा विचलित हो उठा है। इसीलिए वह जनता को प्रश्न करता है।

धूमिल ने राजनीतिज्ञों द्वारा किए जाने वाले षड्यंत्र को ठोकर मार कर अपने अधिकारों को छीन लेने की बात की है। साथ ही साथ स्वाभिमान के साथ जन- सामान्य व्यक्ति को जीवन जीने का संदेश भी दिया है। जैसे -

"इसीलिए मैं फिर कहता हूॅं कि हर हाथ में
गीली मिट्टी की तरह हाॅं-हाॅं मत करो
तनों
अकड़ो
अमरबेलि की तरह मत जिओ
जड़ पकड़ो।"[12]

धूमिल ने अपनी कविताओं के माध्यम से तत्कालीन राजनीतिक परिवेश पर कड़ा प्रहार करते हुए उसमें सुधार लाने का प्रयास किया है। राजनेताओं के झूठे आश्वासन, खोकली नारेबाजी, सरकार की भ्रष्ट नीति की पोल ही खोली ऐसा नहीं बल्कि, उसके विरोध में सीधी कार्यवाही करने की बात करते हैं। राजनीतिक भद्र व्यवस्था के कुचक्र में फंसी हुई जनता को वे क्रांति का मार्ग बताते हैं। जैसे -

"हे भाई हे ! अगर चाहते हो
कि हवा का रुख बदले
तो एक काम करो
हे भाई !!
संसद जाम करने से बेहतर है,
सड़क जाम करो।"[13]

धूमिल समाज को जागृत कर देना चाहते हैं। उनकी निद्रा को तोड़कर उन्हें विद्रोह करना सीखाना चाहते हैं। सुविधाओं और सरलताओं का परित्याग करके विद्रोह करने के लिए कहते हैं।

अंततः स्पष्ट हो जाता है कि, धूमिल को समकालीन राजनीति की बहुत गहरी और सही पहचान थी। इस गहरी पहचान को उन्होंने अपने काव्य में बड़े ही व्यंग्यात्मक रूप से संजोया है। इतना ही नहीं तो समकालीन राजनीतिक व्यवस्था के प्रति आक्रोश एवं विद्रोह का भाव धूमिल की कविताओं में कूट-कूट कर भरा है। जो जन-मानस को चिंतन के लिए बाधित कर प्रचलित राजनीतिक चुनौतियों के साथ दो हाथ करने की प्रेरणा भी देता है।

संदर्भ सूची :

1. https://WWW.scotbuzz.org
2. https://WWW.scotbuzz.org
3. डॉ. नामदेव उतकर, हिंदी साहित्य की युगीन प्रवृत्तियां पृ. सं. 537
4. संपादक, शुकदेव सिंह, धूमिल की कविताएं, पृ. सं. 27
5. सुदामा पांडे 'धूमिल', संसद से सड़क तक, पृ.सं.135
6. सुदामा पांडे 'धूमिल', कल सुनना मुझे, पृ. सं. 20
7. सुदामा पांडे 'धूमिल', कल सुनना मुझे, पृ. सं. 33
8. सुदामा पांडे 'धूमिल',सुदामा पांडे का प्रजातंत्र, पृ. सं. 18
9. सुदामा पांडे 'धूमिल', संसद से सड़क तक, पृ. सं. 20
10. संपादक, शुकदेव सिंह, धूमिल की कविताएं पृ. सं. 55
11. सुदामा पांडे 'धूमिल', संसद से सड़क तक, पृ. सं. 52
12. सुदामा पांडे 'धूमिल', संसद से सड़क तक, पृ. सं. 53
13. सुदामा पांडे 'धूमिल',सुदामा पांडे का प्रजातंत्र, पृ. सं. 20

दलित विमर्श : चिंतन और चुनौतियाँ

कु. मन्नाडे रमा धनराज

शोध छात्रा दयानंद कला महाविद्यालय, लातूर

भारतीय सामाजिक व्यवस्था में दलित का अभिप्राय उन लोगों से है जिन्हें जन्म, जाति या वर्णगत भेदभाव के कारण हजारों सालों से सामाजिक न्याय और मानव अधिकारों से वंचित रहना पड़ा है। शुद्रों की भी हालत कोई खास अच्छी नहीं रही है, सवर्ण आज भी शुद्रों के साथ बैठकर खाने में, या उसकी बिरादरी में शादी-ब्याह से कतराते है। यह विडंबना ही है कि, समस्त प्राणियों में एक ही तत्व के दर्शन करनेवाला, वर्ण-व्यवस्था को गुण और कर्म के आधार पर निर्धारित करनेवाला समाज, इतना कट्टर कैसे हो गया कि निम्न वर्ण या जाति में जन्म लेने वालों को सब प्रकार के अवसरों से वंचित किया जाता रहा और इन सड़ी-गली सोच के लिए 'मनुस्मृति' को जिम्मेदार ठहरा दिया गया।

लम्बे समय तक सामाजिक शोषण और दमन की शिकार रही हरिजन और गिरिजन जातियों को अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के रूप में सूचिबद्ध किया गया, ताकि इनके लिए सामाजिक न्याय सुनिश्चित किया जा सके। सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्रों में चली मानवाधिकारों की हवा ने दलित चेतना को प्रवाहित करने में बड़ा योगदान किया है। यही कारण है कि अब दलित साहित्यकार परम्परागत काव्य-शास्त्र और सौन्दर्य-शास्त्र को अपर्याप्त मानते हुए साहित्य की नई कसौटी की खोज में जुट गये हैं।

हिंदी में ई.सन् 1980 के बाद दलितों द्वारा रचित अनेक आत्मकथानक साहित्य आयें। जिनके कुछ नाम इस प्रकार हैं- मोहनदास नैमिशराय, ओमप्रकाश वाल्मीकि, सूरजपाल चौहान आदि। सन 1999 में दलित पत्रिका का प्रकाशन हुआ, इसके बाद दलित उपन्यासों की रचना हुई। इतना हीं नही, हिंदी साहित्य का दलित विमर्श की दृष्टि से पुनर्पाठ भी आरम्भ हुआ। दलित साहित्य को आगे ले जाने में फुले और अम्बेडकर का बहुत बड़ा हाथ रहा। सर्वप्रथम यह मराठी साहित्य के रूप में आया। उसके बाद तेलगु, कन्नड, मलयालम और तामिल में आया।

यह कहा जा सकता है कि भारतीय साहित्य में दलित विमर्श के व्यापक प्रचलन का मूल कारण जाति और वर्ण पर आधारित सामाजिक भेदभाव रहा है। जिस कारण बीसवी सदी के अंत तक दलित वर्ग समाज में सर उठाकर खुद को दलित-वर्गीय कहने की हिम्मत भी नहीं उठा पाता था। लेकिन जब हिन्दु-धर्म के खोखले आदर्शों व संस्कृति को वे समझने लगे, तब इस व्यवस्था के विरूद्ध खड़े होने की हिम्मत करने लगे।

सन् 1954 में प्रकाशित रामजी लाल सहायक कृत 'बंधन मुक्त' हिन्दी का प्रथम उपन्यास है। किन्तु यह अप्राप्य है। सन् 1980 में प्रकाशित डी.पी. वरुण कृत 'अमर ज्योति' रचना कालक्रम की दृष्टि से दूसरा दलित उपन्यास है। किन्तु यह अत्यन्त निम्न कोटि की रचना है। सभी दलित आलोचकों एवं विद्वानों ने सन 1994 ई. में जयप्रकाश कर्दम द्वारा रचित 'छप्पर' को प्रथम दलित उपन्यास स्वीकार किया जाता है। 'छप्पर' उपन्यास में चंदन ने अगला सवाल किया, "तो इसका मतलब यह हुआ कि तुम्हारी जो आज दीन-हीन हालत है, तुम जो रोजी-रोटी के लिए दुसरों के मोहताज हो और तुमको नीच, अछूत या हेय मानकर दुसरे लोग तुमसे जिस प्रकार घृणा और उपेक्षा का व्यवहार करते है, तुम जो शोषण, अपमान और अत्याचार के शिकार हो इस सबका कारण ईश्वर है वहीं

तुम्हारी दुर्दशा कर रहा है।" सदियों के शोषण, प्रताड़ना, द्वेष और वैमनस्य के भेदभाव तले दबा दलित समाज भारतीयों की सांस्कृतिक विरासत और समाजव्यवस्था को आज इसी दृष्टि से देखता है।

हिन्दी में लिखित दलित उपन्यासों को देखें तो ये बातें अपने आप स्पष्ट हो जायेगी। यद्यपि हिन्दी में दलित उपन्यास कम ही है और आज जिसे दलित साहित्य कहा जाता है उसमें गिनकर तीन-चार उपन्यास ही ऐसे हैं, जो दलित लेखकों द्वारा लिखे गये हैं। ये उपन्यास हैं, रामजीलाल सहायक का 'बंधन मुक्त' (1954), जयप्रकाश कर्दम का 'छप्पर' (1994), डी.पी. वरूण का 'अमर ज्योति' (1980) और अजय नावरिया का 'उधर के लोग' (2008), परदेशी राम वर्मा का 'प्रस्थान', गुरूचरण सिंह का 'डूब जाती है नदी', शरण कुमार लिम्बाले का 'नरवानर' और मोहनदास नैमिशराय का 'मुक्तिपर्व' आदि। इन उपन्यासों में रामजीलाल सहाय्यक का उपन्यास 'बंधन मुक्त' उपलब्ध नहीं है। इस उपन्यास में लेखक ने डॉ. बाबासाहब अम्बेडकर से प्रभावित होकर भारतीय समाज की जाति व्यवस्था में दलितों की मुक्ति के सवाल को गम्भीरता के साथ उठाया गया है।

इस प्रकार हिंदी दलित उपन्यास का इतिहास एवं समाज बोध मुख्यधारा से बिल्कुल भिन्न है। वो मानवीय श्रम को ही सौंदर्य और व्यवस्था की अन्यायपूर्ण विसंगतियों से मुक्ति को ही अपना सामाजिक सरोकार और अपनी सामाजिकता मानता है। उसके केंद्र में केवल और केवल मनुष्य व मनुष्यता है।

निष्कर्ष :-

इक्कीसवी सदी के आत्मकथाकारों के पास अनुभूति है, समाज की वर्तमान स्थिति की जानकारी होने के कारण रचनाएँ सत्य को स्पर्श कर रही है। जब तक मानसिक समानता, मनोधारणा नहीं बनती तब तक एकता का होना कठिन है। अब धीरे-धीरे दलित चेतित, जागृत हो रहा है। उनके जीवन में विकास की रोशनी दिखाई दे रही है। इक्कीसवे दशक के आत्मकथा में दलीत जीवन का काफी सफलता के साथ चित्रण हुआ है।

संदर्भसूची :

1) जयप्रकाश कर्दम, छप्पर, संगीता प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 80
2) जयप्रकाश कर्दम, छप्पर, संगीता प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 90
3) हिन्दी दलित आत्मकथाएँ : एक अनुशीलन, डॉ. अभय परमार, वाणी प्रकाशन, दिल्ली
4) दलित विमर्श - डॉ. धीरजभाई वणकर
5) दलित विमर्श के आलोक में - डॉ. रश्मि चतुर्वेदी

हिंदी काव्य साहित्य में दलित चेतना विमर्श और चुनौतियाँ

डॉ. माला कुमारी गुप्ता

सहायक प्रोफ़ेसर वीमेंस कॉलेज , कलकत्ता(पश्चिम बंगाल)

ईमेल : malakgupta4sep@gmail.com मोबाइल नंबर : ९४३३१०६८०१

भूमिका : 'दलित विमर्श' सांप्रदायिक जीवन मूल्यों , संवैधानिक मान्यताओं , सामाजिक न्याय और प्रजातान्त्रिक संघर्षों का प्रतिफल है। साथ ही बहुसंख्यकों द्वारा सामाजिक , मानसिक , शारीरिक एवं आर्थिक शोषण की परंपरा की समाप्ति और मानवता में चिरंतन मूल्यों का गंभीर उद्घोष भी करता हैं। यह विमर्श समाज में फैले अस्पृश्यता , ढोंग , प्रपंच ,पुरोहितवाद जैसे धार्मिक कर्मकांडों के विरोध के साथ- साथ दलितों के मानवाधिकारों की रक्षा के किये विशेषाधिकारों की उन्मूलन की वकालत भी करता है।

'दलित विमर्श' का अपना एक इतिहास है। यह विमर्श भले ही अपने वर्त्तमान रूप में उनीसवीं शताब्दी के बाद अस्तित्व में आया हो लेकिन इसकी जड़ें सुदूर अतीत में जाती है । हम देखते है कि वेद- उपनिषद गीता आदि धर्म ग्रंथो में वर्ण, जाति , धर्म के तिगड़े ने पूरी संस्कृति को छिन्नभिन्न कर दिया है। ऋग्वेद के पश्चात २०वीं सदी तक ज्यादातर साहित्य पुरोहितवाद एवं पाखंड पर ही अधिक अवलंवित प्रतीत होता है। पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार भारत में जाति-प्रथा के उद्भव के पांच कारण है -व्यवसाय ,कबायली संगठनों का प्रचलन , नयी धारणाओं का जन्म ,संकर जातियाँ और आव्रजन।

१८८० के दशक में मराठी शब्द 'दलित' का इस्तेमाल ज्योतिराव फुले ने हिन्दू समाज में उत्पीड़ित और टूटे हुए लोगों के लिए किया था। डॉ भीमराव आंबेडकर के अनुसार(१८९१-१९५६) बौद्ध धर्म और ब्राहणवाद के बीच वर्चस्व की लड़ाई के कारण ,४०० ईस्वी के आस पास भारतीय समाज में अस्पृश्यता आई। ज्योतिराव फुले एवं डॉ आंबेडकर के सामाजिक और धार्मिक आंदोलनों के प्रभाव से ही दलित चेतना का शंखनाद हुआ था। और इस चेतना से ही उनकी वैचारिक क्रांति पर आधारित 'दलित साहित्य आंदोलन' की शुरुआत हुई। ऐतिहासिक दबावों और सामाजिक -सांस्कृतिक परिस्थितियों के फलस्वरूप साहित्य जगत में नई धाराओं , प्रवृतियाँ , आंदोलनों का उदय हुआ।१

क) स्वतंत्रापूर्व हिंदी साहित्य में दलित चेतना -

हिंदी साहित्य में स्वतंत्रतापूर्व दलितों के लेखन के कुछ संकेत मिलते है। आदिकालीन 'सिद्ध साहित्य' में ब्रजयानी परम्परा के सिद्ध आचार्यों द्वारा रचित दोहो और चर्या पदों, जिसको बौद्ध -तांत्रिक सिद्धांतो की मान्यता मिली थी और इसमें चौरासी सिद्ध रचनाकार थे जिसमें ज्यादातर शूद्र , क्षत्रिय इत्यादि थे।२ दलित कवियों का एक खाश समूह भक्तिकालीन काव्य रचना के क्षेत्र में भी योगदान कर चुके हैं। दलित कवियों में ' कांचीपूर्ण' शूद्र के शिष्य रामानंद की लम्बी शिष्य श्रृंखला में कबीर, रैदास, नानक, सेना, पीपा,धन्ना आदि निम्न जातियों के कवि थे। महाराष्ट्र के संत तुकाराम, चोखामेला, रोहिताश भी अछूत कवि थे। कबीर दास जात -पात व साम्प्रदायिकता के खिलाफ बोलने वाले अपने समय के प्रखर तेजस्वी और सशक्त कवि थे। उन्होंने कहा है – " संतन जात न पूछे निरगुनिया

साध ब्राह्मण साध छतरी

साधै जाती बनिया---

हिन्दू तुर्क हुई दीन बने हैं , कछु नहीं पहचानियाँ। "३

रैदास ने भी कहा हैं - "रैदास वामन मत पूजिये , जऊ होवे गन हीन,

पूजहिं चरन चांडाल के , जऊ होवे प्रवीन। "४

आधुनिक हिंदी साहित्य के दलित विषयक लेखक 'प्रेमचंद' गैर दलित लेखक के रूप में जाने जाते हैं।उनकी कहानियों में दलितों का शोषण स्पष्ट रूप से दिखाई देता हैं। प्रेमचंद ने अपने 'सद्गति'कहानी में दलित दर्द का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया हैं। कहानी का पात्र 'दुखी 'जातीय कष्टों को अपने पूर्वजन्म का फल और नियति मानकर लकड़ी काटते काटते मर जाता हैं। ' ठाकुर का कुआँ" कहानी का पात्र' जोखू ' गन्दा पानी पीने को विवश हैं। ।इन कहानियों के पात्र क्रूर और अमानवीय समाज व्यवस्था का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करते है।

आज दलित विषयक लेखन में प्रेमचंद के अपूर्व कार्य की दिशा में अग्रसर लेखकों में निराला , नागार्जुन , कमलेश्वर , राजेंद्र यादव आदि का नाम उल्लेखनीय जो परम्परावादी लेखकों का कोप भाजन भी होते रहे हैं। छायावाद के मूर्धन्य कवि सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला ' की कविताओं में आंदोलन के साथ साथ दलित संवेदना का स्वर भी मिलता हैं।अस्पृश्यों , अछूतों को सम्बोधित कर लिखी गई कविता ' जल्द- जल्द पैर बढ़ाओ 'सिर्फ सहानुभूति नहीं बल्कि दलितों को मुक्ति पथ पर आगे बढ़ने का आह्वान करती हैं जैसे –

"आज अमीरों की हवेली , किसानों की होगी पाठशाला

धोबी ,चमार , पासी , तेली , खोलेंगे अँधेरे का ताला

एक पथ पढ़ेंगे, टार बिछाओ। " ५

ख) स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य में दलित चेतना :

१९४७ में भारत स्वतंत्र जरूर हुआ किन्तु दलित कवि १९८० में आकर भी स्वतंत्रता का अनुभव नहीं कर पा रहे थे। प्रेमचंद, निराला के बाद हिंदी साहित्य में दलित कवि और गैरदलित कवियों का 'दलित विषयक' लेखन अपेक्षाकृत कम मिलता हैं। नागार्जुन , रामचंद्र शुक्ल , धूमिल, ,मैनेजर पांडेय इत्यादि ने 'दलित साहित्य' में महत्वपूर्ण योगदान दिया हैं। नागार्जुन की कविताओं में आंबेडकर के मार्क्सवाद का प्रभाव ज्यादा दिखाई पड़ता है। इसलिए उनकी वर्ग चेतना की सोच से संचालित राष्ट्रीय आयोजनों का भूखे , नंगे लोगों का क्या औचित्य ? यह साबित करते हुए उन्होंने बाबा की कविताओं में वर्ण संघर्ष के हमलों से रौंदी गयी दलित मानवता के शोक संतप्त संसार का परिदृश्य निम्न पंक्तियों व्यक्त किया है -

"ऐसा तो कभी नहीं हुआ था कि

एक नहीं , दो नहीं , तीन नहीं , तेरह के तेरह

अभागे- अकिंचन मनुपुत्र

जिंदगी झोक दिए गए हो प्रचंड अग्नि कि विकराल लपटों में।" ६

इसी तरह ' हरिजन गाथा ' ' लोगे मोल ' आदि कविताओं में प्रगतिवादी विचारधारा , मानवीय संवेदना कि जन जाग्रति कि धारा प्रभावित हुई हैं।

रामचंद्र शुक्ल कि कविता भुक्तभोगी दलित कि मौलिक पीड़ा की अभिव्यक्ति लगती हैं-

"हाय हमने भी कुलोनी की तरह

जन्म पाया प्यार से पाले गए। ---
कीट से भी नीचतर माने गए।
श्वान छूना भी जिन्हे स्वीकार है
है उन्हें भी हम अभागों से घृणा।
जिस गली में उच्च कुल वाले चले।" ७

महीप सिंह द्वारा सम्पादित मराठी दलित साहित्य विशेषांक ' सचेतना ' पत्रिका (१९८१) में करीब ३ दर्जन मराठी साहित्यकारों ने कहानी , आत्मवृत , एकांकी , परिचर्चा और कवितायेँ प्रकाशित करके दलित साहित्य का प्रचार प्रसार किया। इससे पहले हीरा डोम की दलित कविता 'सरस्वती ' पत्रिका में और श्री कमलेश्वर की दलित कहानी 'सारिका' पत्रिका प्रकाशित हुई थी। केशव की कविता में दलित श्रृंखला की कड़ी मिलती है- "हड्डियों के साथ फोड़ते रहे कुछ चकमक पत्थरों को-------निःशब्दों की ही बारूद ठूंस कर। "८

दलित कविता यथास्थिति में आक्रोश , अस्मिता की चाह, मानवीय तड़प से ओत प्रोत होती है। त्रयम्बककेपले की कविता में इसका व्यंगात्मक रूप देखने को मिलता है।- " भैस यहाँ का बेदांती हो गया ,
मीलों दूर रखा अक्षर शत्रु बनाकर हमें
गधा यहाँ का गंगा जल पी गया। "

१९४७ की आजादी के बाद भी हमारे देश में महल और झोपड़ी में जन्मी वैमनस्य की खाई पटी नहीं है –

"नहीं पैर में है गुलामी की कड़ियाँ—
तरसती गरीबों की लाखों झोपड़ियां
मानव की दुनिया में मानव विलखता
ढकने को तन भी नहीं वस्त्र मिलता --
कमाने वाला स्वयं खाने को मरता। "९

कवि अपनी कविता के द्वारा हमारी सामाजिक व्यवस्था को आइना दिखलाता है। कोमल ह्रदय मानव को कठोरता में रूपांतरित करने वाली परिस्थितियां दलित कवि के उदार ह्रदय को झकझोर देती है।

८० का दशक दलित विषयक निर्मम सामाजिक घटनाओं का युग था। रघुवीर सहाय के संपादन में प्रकाशित 'दिनमान' की एक रिपोर्ट के अनुसार ६फरवरी १९८० को घटित ' पारस बीघा 'कांड के खून के दाग सूखे नहीं थे कि २५ फरवरी कि रात को पटना से मात्रा ३५ किलोमीटर कि दूरी पर बसे हरिजनों की एक छोटी सी बस्ती ' पिपरा ' को जला कर राख कर दिया गया जिसमे १४ लोगों की जान गयी। १९८१ में भी दैनिक 'नवभारत' रिपोर्ट के अनुसार बिहार प्रान्त के बेलछी गावं में ११ अछूतों को जिन्दा जला दिया गया था। मोहनदास नैमिशराय के पत्र ' बहुजन अधिकार ' में प्रकाशित आनंद स्वरुप की कविता की पंक्तियाँ मानव रक्तपात पर चिंता व्यक्त करती है -

" यहाँ हर चीज महँगी है बस एक खून सस्ता है --" १०

दलित कविता में निराशा और हताशा ही नहीं अपितु आशा और उत्साह के भी पात्र मिलते है। श्योराज सिंह बेचैन वे अपने साथियों को निडर होकर आगे बढ़ने का आह्वान करते है- " नया सबेरा दस्तक देगा द्वार द्वार पर हर कुटिया के

उठो साथियों जंग छिड़ी है ,उजियाले की अंधियारों से।

जाग उठा है सुप्त जमाना , परिवर्तन के पंख खुले है।

शोषण और दमन के पंजे क्षीण हुए है , टूट चुके है। " ११

स्वतंत्रता के बाद दलित की दशा में सुधार के बहुत दावे किये गए।'दलित साहित्य आंदोलन ' और ' दलित मुक्ति आंदोलन ' से प्रेरणा लेकर 'दलित साहित्य आंदोलन' साहित्यिक क्षेत्र में नई चेतना का विस्तार कर रहा था। दया पवार, अर्जुन डांगले , नामदेव ढसाल , जे वि पवार ,राजा ढाले आदि दलित युवा रचनाकार अमरीका के अश्वेत साहित्य और क्रान्तिकारी आंदोलन से प्रभावित होकर ९ जुलाई १९७२ को साहित्यकार जे वि पवार और कवि नामदेव ढसाल ने 'दलित पैंथर' की स्थापना की और दलित पर हो रहे अत्याचारों के विरोध में इसे 'काले दिवस' के रूप में मनाया गया। दलित पैंथर काफी हद तक' ब्लैक पैंथर पार्टी ' से प्रेरित थी। 'अस्मितादर्श ' त्रैमासिक पत्रिका ने इस आंदोलन में मुख्या भूमिका निभाई। २ अक्टूबर १९८५ को संस्थापित ' भारतीय दलित साहित्य मंच' हिंदी दलित कवियों की गतिविधियों का पहला केंद्रीय मंच था। जिसकी स्थापना डॉ सोहनपाल समुनाक्षर , डॉ कुसुम वियोगी , कर्मशील भारती , मंसा राम विद्रोही , लक्ष्मी नारायण सुधाकर , रामदास शास्त्री , राजपाल सिंह 'राज' आदि के संयुक्त प्रयासों से की गई थी। इसके करीब एक साल के बाद बाबू जगजीवन राम के सहयोग से डॉ सोहनपाल सुमनाक्षर ने ' भारतीय दलित साहित्य अकादमी ' की स्थापना की। यह अकादमी प्रत्येक साल ६ दिसम्बर को बाबा साहब डॉ भीमराव आंबेडकर के पुण्यतिथि पर 'परिनिर्वाण दिवस ' के रूप में राष्ट्रीय स्तर के दलित साहित्यकार सम्मलेन आयोजन करती है। आचार्य गुरु प्रसाद ,नवल वियोगी , पद्मश्री डॉ श्याम सिंह शशि , डॉ धर्मवीर , डॉ सुखवीर सिंह ,मोहनदास नैमिशराय आदि लेखक इस अकादमी के माध्यम से दलित साहित्य के क्षेत्र में आगे आये है।

उपसंहार : अम्बेडकरवादी साहित्य ने दलित समाज की अस्मिता , अस्तित्व की पहचान और मानवीय स्वतंत्रता , समानता , न्याय ,बंधुता , प्रेमभाव और समता की मूल्यों की स्थापना की। नवी सदी के दलित साहित्य ने असमानता ,अन्याय , शोषण , विषमता और अत्याचारों का कड़ा विरोध किया। नयी सदी के हाशिये के गरीब दलितों की एक बड़ी आबादी भुखमरी ,बेरोजगारी , कुपोषण , अशिक्षा ,और स्वास्थ्य से वंचित होकर अमानवीय जीवन जीने को बाध्य रही है। ऐसे बहुजन समाज की आर्थिक विषमता ,धार्मिक विद्रुपताओं , राजनैतिक शोषण , सांस्कृतिक उत्पीड़न के प्रति क्रांति का स्वर गुंजित हुआ है।

अंग्रेजो की गुलामी से भारत को मुक्ति तो मिल गई लेकिन आजादी के ७६ सालों के बाद भी न तो गाँधी के सुधारों ने हमें सुधारा और न तो तिलक का स्वराज्य हमें स्वंत्रता दे पाया। लेकिन अवश्य ही डॉ आंबेडकर के जीवन संघर्ष जो दलितों में एक नई चेतना का सूत्रपात करता है , यही चेतना साहित्य की प्रेरणा बनकर दलित साहित्य के रूप में दिखाई देता है। जिसमें मुक्ति के साथ साथ पाखंड कर्मकांडो और वर्ण व्यवस्था का विरोध ,पूंजीवाद और बाजारवाद का विरोध इत्यादि के सवाल शामिल है।

संदर्भ ग्रन्थ -सूची:

१ डॉ रमेश कुमार ,२१वी सदी के हिंदी साहित्य में दलित विमर्श , श्री नटराज प्रकाशन , नईदिल्ली , २०१८

२ डॉ वलवंत साधु जाधव , प्रेमचंद साहित्य में दलित चेतना , अलका प्रकाशन , १९९२

३ आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी , कबीर , हिंदी ग्रथ रत्नाकर कार्यालय , बम्बई

४ माता प्रसाद गुप्त , हिंदी काल में दलित काव्यधारा

५ नन्द किशोर , निराला रचनावली , २या संस्करण , राजकमल प्रकाशन

६ नागार्जुन , उजाले की आगवानी

७ रामचंद्र शुक्ल , अछूतों की आह उजाले की आगवानी

८ केशव मिश्र , संचेतना (४थ दिसम्बर १९८१), अनुवाद चंद्रकांता वांदी रामजी तिवारी

९ कृष्णदत्त पालीवाल , दलित साहित्य बुनियादी सरोकार , वाणी प्रकाशन , २य संस्करण २०१२

१० हरिनारायण ठाकुर , दलित साहित्य का समाज शास्त्र , भारतीय ज्ञानपीठ ,२य संस्करण ,२०१०

११ आनंद स्वरुप , बहुजन अधिकार (पाक्षिक), मेरठ , १९९२

B.Aadhar' International Peer-Reviewed Indexed Research Journal

Impact Factor -(SJIF) –8.632, Issue NO, (CDXLVI) 451-A

ISSN : 2278-9308 December, 2023

हमारी राजभाषा हिन्दी और उसकी चुनौतियां

कुमारी प्रेमलता

सहायक प्राध्यापक, इतिहास विभाग,सुंदरवती महिला महाविद्यालय, भागलपुर

तिलकामांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर, बिहार- 812001

Mobile no. 8789289035 Email :prem.bgp19@gmail.com

सारांश

हिन्दी भाषा हमारे देश की पहचान है। आज यह एक विश्व भाषा बन चुकी है, परंतु भारत में हिन्दी को वह गौरव प्राप्त नहीं है, जिसकी वह सही मायने में हकदार है। आखिरकार स्वतंत्रता के इतने वर्षों के पश्चात् भी हिन्दी को 'राष्ट्रभाषा'क्यों नहीं बनाया जा सका। आज तक भारत देश की अपनी राष्ट्रभाषा का प्रश्न अनुत्तरित क्यों रह गया। जबकि किसी विकसित देश की पहचान उसकी राष्ट्रभाषा से होती है। भारत की स्वतंत्रता के पश्चात् संविधान सभा ने हिन्दी को भारत की राजभाषा के रूप में 14 सितंबर, 1949 को स्वीकृत किया। लेकिन इसके साथ ही संवैधानिक प्रावधानों के अनुसार अंग्रेजी का सभी सरकारी कार्यों के लिए 1965 ई॰ तक प्रयोग किये जाने की घोषणा भी की गई। इसके पश्चात् यह स्थान हिन्दी को प्राप्त होगा।राष्ट्र भाषा के मुद्दे पर लगातार मतभेद उत्पन्न होते रहे। इस कारण एक समृद्ध और संपन्न भाषा होते हुए भी हिन्दी हमारी राष्ट्रभाषा अभी तक नहीं बन पाई है। वास्तविकता में यह हिन्दी भाषा के लिए सबसे बड़ी चुनौती है की वह भारत की राष्ट्रभाषा बने।

विशिष्ट शब्द: हिन्दी, राष्ट्रभाषा, भारतीय संविधान, अंग्रेजी, विदेशी भाषा।

हमारी राजभाषा हिन्दी के विषय में अनेकों महत्वपूर्ण बातें स्मरण योग्य हैं। स्वतंत्रता के तत्काल पश्चात् हमारा देश भारत भाषा संबंधी समस्या से घिरा हुआ था। राजभाषा का प्रश्न अनिर्णित एवं अनुत्तरित था। क्योंकि समस्या यह थी की स्वतंत्र भारत की राजभाषा हिन्दी हो या अंग्रेजी। ध्यान देने योग्य बात यह है कि जब तक देश में अंग्रेजों का शासन था, तब तक अंग्रेजी को विशेष आदर प्राप्त था। अंग्रेजी ही सरकारी काम-काज की भाषा थी। परंतु अंग्रेजों द्वारा भारत को आजादी प्रदान करने के पश्चात् यह आवश्यक नहीं रह गया था कि अब देश के सम्पूर्ण राज-काज अंग्रेजी भाषा में ही किए जाएँ।

अतः जब हमारे देश भारत के संविधान का निर्माण होने लगा तब यह प्रमुख प्रश्न उपस्थित हुआ कि आखिर हमारे देश भारत की राष्ट्रभाषा कौन सी हो? इस क्रम में यह वर्णन लाजिमी है कि महात्मा गाँधी आरंभ से ही इस बात से सहमत थे कि, आम जनता की प्रतिभा एवं उनकी संस्कृति कभी भी एक विदेशी भाषा में नहीं खिल सकती। वास्तव में इस महत्वपूर्ण मुद्दे पर गाँधीजी के विचारों को विस्तार से जानने की आवश्यकता है। 1920 के दशक में ही गाँधीजी ने विशेष ज़ोर देकर कहा कि "अंग्रेजी एक अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की भाषा है। यह राजनय एवं राजनीति की भाषा है, इसमें समृद्ध साहित्यिक खजाना मौजूद है और यह हमें पश्चिमी विचारों और संस्कृतियों का परिचय प्रदान करती है।" लेकिन इसके साथ ही उन्होंने यह भी विशेष रूप से कहा कि "अंग्रेजों के साथ हमारे असमान संबन्धों के कारण ही अंग्रेजी ने अनुचित स्थान ले रखा है।"[1]

गाँधीजी के विचार अंग्रेजी के प्रति विदेशी भाषा के रूप में ही था क्योंकि उन्होंने यह भी कहा कि "अंग्रेजी ने हमारे राष्ट्र की ऊर्जा को सोख लिया है। इसने जनता से उनको दूर कर दिया है। अतः जितनी जल्दी शिक्षित भारतीय अपने को विदेशी माध्यम के सम्मोहन से दूर करेंगे, उतना ही उनके लिए और आम जनता के लिए बेहतर होगा।[2]

वहीं गाँधीजी ने बाद में अपने विचारों को इस प्रकार प्रकट किया कि अंग्रेजी से उन्हें कोई द्वेष नहीं, परंतु उन्होंने यह भी वर्णित किया था कि "अपनी जगह पर अंग्रेजी को मैं बहुत प्यार करता हूँ; परंतु यदि अंग्रेजी वो स्थान छिनना चाहे, जो इसका है ही नहीं तो मैं इसका घोर विरोधी हूँ। निश्चय ही अंग्रेजी आज विश्व भाषा है। अतः मैं इसे भारत के लिए दूसरी वैकल्पिक भाषा के रूप में स्थान अवश्य देना चाहूँगा।"

हिन्दी के विषय में आजादी के पूर्व भी काफी कुछ कहा गया। इस विषय में पंडित जवाहरलाल नेहरू ने 1937 में बहुत साफ तौर पर इस विचार को प्रस्तुत किया था कि "हमारी महान प्रादेशिक भाषाएँ समृद्ध विरासत वाली प्राचीन भाषाएँ हैं जिनमें से प्रत्येक को बोलने वाले लोगों की संख्या लाखों में है। प्रत्येक भाषा आम जनता एवं उच्च वर्ग के जीवन, संस्कृति और विचारों के साथ गहराई से जुड़ी हुई है। यह तो स्वतः सिद्ध ही है कि आम जनता का शैक्षणिक और सांस्कृतिक विकास सिर्फ अपनी भाषा के माध्यम से ही संभव है। अतः हमारे लिए यह अनिवार्य है कि हम प्रादेशिक भाषाओं पर विशेष ज़ोर डालें और ज़्यादातर कामकाज उसके माध्यम से करें। अतः यह स्पष्ट है कि हमारी शिक्षा और सार्वजनिक कार्यों कि व्यवस्था प्रादेशिक भाषाओं पर आधारित होनी चाहिए।[3]हमारा देश भारत 15 अगस्त, 1947 ई॰ को स्वतंत्र हुआ। अतः अब हमारे देश के समक्ष यह विकट प्रश्न उठ खड़ा हुआ कि देश की राष्ट्रभाषा कौन सी हो? क्योंकि किसी भी देश की राष्ट्रभाषा उस सम्पूर्ण राष्ट्र की आत्मा को शक्ति प्रदान करती है। प्रत्येक राष्ट्र अपनी राष्ट्रभाषा के प्रचार एवं प्रसार का प्रयत्न करता है। देखा जाए तो ज़्यादातर विकसित देशों के पास अपनी-अपनी राष्ट्रभाषायें हैं। राष्ट्रभाषा सम्पूर्ण देश के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

भारतीय संविधान निर्माण काल में कुछ ऐसे भी व्यक्ति थे, जो विदेशी भाषा अंग्रेजी को ही राष्ट्रभाषा बनाए रखने के पक्ष में थे। उनके द्वारा यह तर्क दिया जा रहा था कि स्वतंत्रता आंदोलन के समय बुद्धिजीवियों के नेतृत्वकर्ता अंग्रेजी भाषा का ही प्रयोग कर रहे थे। इस अंग्रेजी भाषा के समर्थक मुख्यतः वे भारतीय थे जो अंग्रेजी साहित्य में निपुण थे। वे ऊँचे-ऊँचे पदों पर आसीन थे और जिन्हें हिन्दी भाषा या तो थोड़ी बहुत आती थी या बिलकुल नहीं आती थी। उन्हें यह भय था कि यदि हिन्दी राष्ट्रभाषा बनी तो कहीं उनका पद उनसे छिन न जाए या वे अंग्रेजी भाषा जैसी निपुणता के साथ हिन्दी भाषा में सफलतापूर्वक कार्य न कर सकें। ये भारतीय हिन्दी भाषा के आलोचक मुख्य रूप से इस भाषा के साहित्यिक, विज्ञान एवं राजनीति की भाषा के रूप में पिछड़े होने का तर्क प्रस्तुत कर रहे थे। परन्तु वास्तविकता में वे इससे भयभीत हो रहे थे कि यदि हिन्दी राष्ट्रभाषा बन गयी तो उन्हें आर्थिक स्तर पर बहुत हानि उठानी होगी। इस प्रकार इस विचारधारा के पीछे केवल स्वार्थ की भावना निहित थी, न की कोई राष्ट्रीय भावना। वहीं कुछ लोग अन्य प्रांतीय भाषाओं के पक्षधर भी थे। भारत में लगभग सौ से अधिक भाषाएँ हैं। जिनमें हिन्दी, उर्दू, गुजराती, मराठी, बंगाली, तमिल और तेलुगू आदि प्रमुख हैं।

राष्ट्रीय भाषा के मुद्दे का समाधान तो संविधान द्वारा सभी प्रमुख भाषाओं को भारत की भाषाएँ अथवा भारत की राष्ट्रीय भाषाएँ मानकर सुलझा लिया गया। परन्तु मामला वहीं समाप्त नहीं हो गया, क्योंकि देश का आधिकारिक काम-काज इतनी अधिक भाषाओं में नहीं किया जा सकता था। देश में एक ऐसी भाषा अति आवश्यक थी जिसमें केंद्रीय सरकार अपना काम करें एवं राज्यों के साथ संपर्क स्थापित करें। परंतु मुख्य सवाल यह था कि कौन सी भाषा इस अखिल भारतीय संवाद का माध्यम होगी? दूसरे शब्दों में भारत के कार्यालयों और संपर्क की भाषा कौन सी होगी। भारत में इस महत्वपूर्ण विषय पर सर्वाधिक वाद विवाद चलता रहा।

अंग्रेजी को राष्ट्रभाषा इसलिए घोषित नहीं किया जा सकता था, क्योंकि छत्तीस करोड़ भारतीयों में से एक करोड़ भी ऐसे नहीं थे जो आत्म विश्वास पूर्वक विदेशी भाषा अंग्रेजी बोल सकते हों या लिख सकते हों।किसी ऐसी भाषा को राष्ट्रभाषा बना देना लोकतंत्रात्मक देश की जनता पर अत्याचार ही था। वहीं दूसरी ओर अन्य प्रांतीय एवं प्रादेशिक भाषायें भी अपनी व्यापकता में हिन्दी से बहुत पीछे थीं। वहीं हिन्दी भाषा की मुख्य विशेषता यह थी कि यह एक भारतीय भाषा थी एवं जितनी संख्या हिन्दी भाषी जनता की भारत देश में है उतनी किसी अन्य भाषा की नहीं। अतः इस उद्देश्य के लिए सिर्फ दो ही भाषाएँ उम्मीदवार थीं, अंग्रेजी और हिन्दी। यही वह मुद्दा था जिसपर संविधान सभा में काफी तीखी बहस हुई थी।

पण्डित नेहरू ने 1952 ई॰ में कहा था "सबसे महत्वपूर्ण पहलू एवं सर्वोच्च पहलू भारत की एकता है।"[4]वहीं एक अन्य स्थान पर उन्होंने टिप्पणी की "भारत की एकता का पालन पोषण मेरा पेशा है।"[5]अंततः संवैधानिक प्रावधानों के अन्तर्गत देवनागरी लिपि में लिखी हिन्दी अंतर्राष्ट्रीय अंकों के साथ भारत की राजभाषा घोषित की गई। इस प्रकार भारत की स्वतंत्रता के पश्चात् संविधान सभा ने हिन्दी को भारत की राजभाषा के रूप में 14 सितंबर, 1949 को स्वीकृत किया। संवैधानिक प्रावधानों के अनुसार अंग्रेजी का सभी सरकारी कार्यों के लिए 1965 ई॰ तक प्रयोग किया जाएगा। इसके बाद इसका स्थान हिन्दी को प्राप्त होगा। हिन्दी भाषा को कई चरणों में लागू किया

जाएगा।1963 ई॰ में राजभाषा अधिनियम बनाया गया।संभवतः 1965 ई॰ के बाद हिन्दी को एकमात्र सरकारी भाषा बना दिया जाएगा।भारतीय संसद के पास अधिकार होंगे कि वह 1965 ई॰ के बाद भी कुछ विशेष कार्यों के लिए अंग्रेजी के प्रयोग को बढ़ा सके।

राजभाषा आयोग की रिपोर्ट ने गैर हिन्दी भाषी प्रदेशों में संदेह उत्पन्न करने का कार्य किया। वहीं सी॰ राजगोपालाचारी ने घोषित किया कि "हिन्दी गैर हिन्दी लोगों के लिए ठीक उतनी ही विदेशी है, जितनी की हिन्दी समर्थकों के लिए अंग्रेजी।" 1965 ई॰ में दक्षिण भारत में हिन्दी विरोधी आंदोलन तीव्र होने लगे क्योंकि दक्षिण भारतीयों को यह भय था की कहीं 26 जनवरी 1965 ई॰ से हिन्दी एक मात्र राष्ट्रभाषा न बन जाए। वहीं हिन्दी के समर्थन में संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी जनसंघ ने उग्र आंदोलन आरंभ किया। दूसरी ओर तमिल मंत्रियों सी॰ सुब्रमण्यम एवं अल्गेसन ने अंग्रेजी के समर्थन में केन्द्रीय मंत्रिमण्डल से इस्तीफा दे दिया।

इन असमान परिस्थितियों में केंद्रीय मंत्री के रूप में इन्दिरा गाँधी ने अंग्रेजी के समर्थन में अपनी सहानुभूति जताकर लोकप्रियता और विश्वास अर्जित किया।तत्कालीन प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्रीजी के निधन के पश्चात् इन्दिरा गाँधी ने प्रधानमंत्री बनने के बाद राजभाषा अधिनियम को संशोधित कर अंग्रेजी को अनिश्चित काल के लिए प्रयोग करने की अनुमति प्रदान कर दी।

निष्कर्ष

हिन्दी हमारे देश भारत की अपनी भाषा है। इसके बावजूद हिन्दी भाषा आज तक मात्र हमारे देश की राजभाषा के पद पर ही सुशोभित हो पाई है। इसके राष्ट्रभाषा बनने के रास्ते में आज भी अड़चन बनी हुई है। वास्तविकता में हिन्दी के विरोध में जितनी भी आवाजें उठ रहीं हैं, उनके मूल में प्रमुख कारण राजनैतिक ही हैं। यह आवश्यक है की हिन्दी के प्रति हम उदार दृष्टिकोण अपनाएं। हमारे देश कि भाषा हिन्दी एक सम्पन्न और समृद्ध भाषा है और राष्ट्रभाषा के रूप में इसे सहज ही स्वीकार किया जाना आवश्यक है।इस विषय में युग-प्रवर्त्तक भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने लिखा है-

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल ।
बिन निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल ॥

संदर्भ ग्रंथ

1. गाँधी, द कलेक्ट वर्क्स ऑफ महात्मा गाँधी, खंड- 17, द पब्लिकेशन डिविज़न पृ. 314-315
2. गाँधी, द कलेक्ट वर्क्स ऑफ महात्मा गाँधी, खंड-37, द पब्लिकेशन डिविज़न, पृ.22
3. नेहरू, सेलेक्टेड वर्क्स ऑफ जवाहर लाल नेहरू, बी. आर., पब्लिशिंग कार्पोरेशन, दिल्ली, खंड- 8, पृ. 831
4. नेहरू,जवाहर लाल नेहरूज स्पिचेज, नई दिल्ली, 1983, खंड 3, पृ.193
5. कृष्ण भाटिया, द आरडील ऑफ नेशनहुड, न्यूयोर्क , 1971, पृ.19
6. चंद्र, विपिन, आजादी के बाद का भारत, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2015
7. यशपाल एवं बी. एल. ग्रोवर, आधुनिक भारत का इतिहास: एक नवीन मूल्यांकन, एस चंद पब्लिकेशन, 2015
8. सिंह, अयोध्या, भारत का मुक्ति संग्राम, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2009
9. चंद्र, विपिन, मृदुला, मुखर्जी, आदित्य,भारत का स्वतन्त्रता संघर्ष, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय,2015.

21वी सदी के हिंदी उपन्यास और कृषक विमर्श

देवयानी झाड़े

शोधार्थी रा. तू. म. ना. वि. नागपुर

मो. न. 8830451820 ई मेल – devyaneezade1703@gmail.com

भारत देश हमेशा से कृषिप्रधान देश रहा है| भारत की अर्थव्यवस्था का लगभग 80% भाग कृषि पर निर्भर है| परिणामतः किसान को देश का अन्नदाता भी कहा जाने लगा| इसी बात को ध्यान में रखकर पुरातन काल में सम्राट तथा राजाओं द्वारा जो भी नीतियाँ बनाई जाती थी, वे सभी कृषि की उन्नति को केंद्र में रखकर ही बनाई जाती थी| फलतः भारतवर्ष में कृषि तथा कृषि से जुड़े लघु और कुटीर उद्योग अपनी उन्नत अवस्था में थे| यही कारण था कि भारत को 'सोने की चिड़िया' भी कहा जाता था| समय में परिवर्तन हुआ और देश पर विदेशी आक्रान्ताओं ने कई आक्रमण किये| भारत पर विदेशी हुकूमत स्थापित हुई| शासनकर्ताओं ने अपनी नीतियों में परिवर्तन किया| अब नीतियाँ प्रजा के बड़े हिस्से को ध्यान में रखकर नहीं वरन राजा तथा उसके करीबी व्यक्तियों के हितों को ध्यान में रखकर बनाई जाने लगी| ऐसे में देश की कृषि और अर्थव्यवस्था पर नकारात्मक प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था|उपनिवेशिक काल में अंग्रेजों ने देश को बहुत बुरी तरह से लूटा| भारत की अर्थव्यवस्था की तो जैसे कमर तोड़ कर रख दी थी| जिस देश की 80% जनसंख्या कृषक थी, आज वह सारी की सारी गरीबी रेखा के नीचे आ गई| अशिक्षा, बेरोजगारी आदि की मार झेलना हमारे लिए असह्य हो गया था| देश के सभी विद्वान नेता पूरी जी-जान लगाकर देश को स्वतंत्र करने की कोशिश में लगे हुए थे, वही आम आदमी अशिक्षा, बेरोजगारी और भुखमरी से जूझते हुए स्वतंत्रता का सपना देख रहा था|स्वतंत्रता के तुरंत बाद किसी जादू की तरह देश की गरीबी, भुखमरी, अशिक्षा, बेरोजगारी आदि से छुटकारा पाना असंभव था| लेकिन आज जब देश स्वतंत्र हुए 75 साल हो गए हैं, हम सभी आजादी का अमृत महोत्सव मना रहे हैं, फिर भी आज किसानों की स्थिति में सुधार क्यों नहीं हुआ? यह प्रश्न विचारणीय है| मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति करना भी किसानों के लिए दूभर हो गया है| अपनी अनिवार्य आवश्यकताओं को पूर्ति हेतु भी भारत के किसान को अत्यधिक संघर्ष करना पड़ रहा है| इसी कारण गाँव में खेती रहने वाला किसान अब शहरों की ओर पलायन कर रहा है| अपने खेतों में काम करने से बेहतर उसे शहरों में मजदूरी करना आसन लग रहा है| भारत में कृषि की यह स्थिति बहुत चिंताजनक भविष्य की ओर इशारा करती है| स्थिति इतनी गंभीर हो गई है कि किसान आत्महत्या करने के लिए मजबूर हो गया है| किसान आत्महत्या के ये आंकड़े दहला देने वाले हैं| हिंदी साहित्य में वर्तमान में किसानों की दुर्दशा को चित्रित करते हुए कई उपन्यास लिखे हैं| इन उपन्यासों में कृषक जीवन के अलग-अलग पहलुओं को ध्यान में रखते हुए किसान जीवन की कठिनाइयों तथा आत्महत्या के कारणों को चित्रित किया है|कृषि तथा कृषि के इन हालातों को देखते हुए वर्तमान में अन्य विमर्शों के साथ कृषि विमर्श भी बड़ी तेजी से चर्चा में है|21 वी सदी में हिंदीसाहित्य में कृषक जीवन को केंद्र में रखते हुए कई रचनाएँ की गई है|उपन्यास विधा की बात करे तोसंजीव ने अपने उपन्यास 'फाँस' में किसानों की मूलभूत समस्याओं के साथ आत्महत्या के कारणों को बड़ी मुखरता एवं बेबाकी के साथ दिखाया है| इस उपन्यास के कथानक का आधार महाराष्ट्र के विदर्भ के ग्राम हैं| विदर्भ में भी यवतमाल जिले में स्थित बनगांव को कथानक के केंद्र में रखा गया है| सब का पेट भरने वाले और तन ढकने वाले देश के लाखों किसानों की आत्महत्या को न रोक पाना शासकीय तंत्र की हार है| यह उपन्यास किसान आत्महत्या पर केन्द्रित अनेक वर्षों के शोध का परिणाम है| यह उपन्यास समस्या को उसकी यथार्थ अवस्था में चित्रित करता है| और आत्महत्या के विरुद्ध दृढ़ आत्मबल भी

प्रदान करता है|'फाँस' उपन्यास को लेकर सुधीर सुमन कहते हैं- "विदर्भ के 11 जिलों के किसानों को करीब से देखने, जानने, समझने के क्रम में संजीव ने यह उपन्यास लिखा है| वे मानते हैं कि किसान की आत्महत्या 'देश की आत्महत्या' है|" [1]'फांस' उपन्यास में संजीव ने किसान जीवन के महीन से महीन पहलू को उजागर करने का सफल प्रयास किया है| इस उपन्यास में महाराष्ट्र की संस्कृति, लोगों की धार्मिक मान्यताएं, कर्ज की भयावहता, मौसम की मार,भाषागत सौन्दर्य आदि का सफलता पूर्वक चित्रण किया गया है|किसान के घर पलने वाले सभी जानवर उस किसान के घर का बहुत अनिवार्य हिस्सा बन जाते हैं| मोहन द्वारा कसाई को बैल बेचे जाने के प्रसंग को संजीव जी बड़ी मार्मिकता के साथ चित्रित करते हैं| वे मोहन के मुख से कहलवाते है-"मोहन जी दादा जी इगत जी बाघमारे ने फफकते हुए कहा – "मुझ पर थूको सिंधु, थूको| कल तक मैं बाघमारे था, आज से भाई मारे .....!" [02] इसी प्रकार कर्ज देते समय सूदखोरों के रवैये को भी अत्यंत सटीक शब्दों में समझाते हहुए संजीव जी लिखते हैं- "फसल के लिए पैसा चाहिए या मुलगी की शादी के लिए, घर की मरम्मती के लिए या किसी और कार्य के लिए- हम जानकर क्या करेगा- जमीन का कागज जमा करो, टीप दो और ले जाओ| हाँ, रेट टेन परसेंट है|" [03] यह उपन्यासकिसान जीवन के प्रत्येक पहलू को पाठकों के सम्मुख लाने में सक्षम हुआ है|

इसी श्रेणी में अगला उपन्यास पंकज सुबीर द्वारा लिखित 'अकाल में उत्सव' है| इस उपन्यास में शहरी तथा ग्रामीण दो कथानक समान्तर चलते हैं| शहरी कथानक में ग्रामीण जीवन के प्रति उदासीनता तथा संवेदनहीनता को स्पष्ट रूप से चित्रित किया गया है|इस उपन्यास में ग्रामीण जीवन विशेषतः किसानों की जीवन दृष्टि पर बहुत करीने रोशनी डाली गई है| किसान की सारी आर्थिक गतिविधियाँ उसकी छोटी जोत की फसल के चारों ओर केन्द्रित रहती हैं| और किन उम्मीदों के सहारे वे अपने आप को जीवित रखते है, यह उपन्यास का कथानक है| इस उपन्यास में लेखक ने किसान जीवन की छोटी- छोटी समस्याओं को जगह दी है| किसानों की आर्थिक समस्या, प्राकृतिक समस्या, तथा सरकारी मुआवजा जैसी समस्याओं को उपन्यासकार ने बड़ी गहराई के साथ चित्रित किया है|कर्ज के विकराल रूप को दर्शाते हुए पंकज सुबीर लिखते हैं- "हर छोटा किसान किसी न किसी का कर्जदार है, बैंक का, सोसायटी का, बिजली विभाग का या सरकार कासरे कर्जों की वसूली इन्हीआर. आर. सी. (रेवेन्यूरिकवरी सर्टिफिकेट) के माध्यम से पटवारी और गिरदावरों को करनी होती है|" [04] किसान पर कर्ज की मार केवल सूदखोरों की ही नहीं है वरन हमारा प्रशासन भी इसके लिए बहुत अधिक मात्र में जिम्मेदार है|इस उपन्यास में निरंतर समृद्ध शाली, सुविधा संपन्न, अत्याधुनिक हो रहे मानव समाज में पशुओं से बदतर और हताशा से भरा जीवन जीने को विवश किसान और मजदूरों के सवाल को प्रखरता से उठाया गया| इस उपन्यास के सन्दर्भ में वरिष्ठ आलोचक मैनेजर पाण्डेयका कथन है- "यह गाँव और किसान जीवन के दुःख-दर्द कहने वाली रचना है|इस उपन्यास को पढ़कर कहा जा सकता है कि किसान जीवन में आज कल सुखा कम दुःख ज्यादा है|" [05] किसान की करुण कहानी कहता यह उपन्यास कृषक विमर्श का मिल का पत्थर है|

इसी कड़ी में अगला उपन्यास सुनील चतुर्वेदी द्वारा लिखित काली चाट है| इस उपन्यास के केंद्र में मध्य प्रदेश का मालवा क्षेत्र है| किसानों की जर्जर अवस्था का कोई एक कारण नहीं है| वरन कई परिस्थितियां मिल कर किसान की जिजीविषा को तोड़ने का कार्य करती हैं| 'काली चाट' में सुनील चतुर्वेदी जी ने जल की समस्या को दूर करने के लिए किसान द्वारा कुएं की खुदाई को चित्रित किया है| कुएं को खोदते हुए कुदाल किसानों के लिए अभिशाप कहलाने वाली चट्टान से टकरा जाती है, जिसे काली चाट कहते हैं| यह काली चाट बहुत ही मजबूत होती है और जमीन के भीतर पता नहीं कितने भाग में फैली रहती है| इसे केवल डायनामाईट से ही तोड़ा जा सकता है| इसी काली चाट को तोड़ने के संघर्ष को लेखक ने बड़ी मार्मिकता के साथ इस उपन्यास में चित्रित किया है| इसके अतिरिक्त लेखक ने कृषि पर पड़ने वाले बाजारवाद के प्रभाव को भी बखूबी समझाया है|आलू तथा प्याज की तुलना करते हुए सुनील चतुर्वेदी कहते हैं- "आज के बाजार में सबसे सस्ता क्या है? किसान का उत्पादन| किसान को आलू का भाव दो रुपये किलो मिलता है और उसी आलू से बने पोटेटोचिप्ससौ गुना अधिक दाम पर बाजार में

बेचे जाते हैं|[06] समय के साथ-साथ प्रत्येक वस्तु के मूल्य में वृद्धि हो रही है|किन्तु किसान द्वारा उत्पादित फसलों में आनुपातिक रूप से अपेक्षित वृद्धि नहीं हो सकी है|जिसका परिणाम यह है की किसान की आर्थिक स्थिति अत्यंत सोचनीय गई है|

निष्कर्ष -

वर्तमान में जहाँ विकास के नए कीर्तिमान रचे जा रहे हैं वही देश का एक बहुत बड़ा तथा अत्यंत महत्वपूर्ण तबका मूलभूत सुविधाओं से वंचित है| किसानों के वंचित होने के विभिन्न कारणों पर उल्लेखितउपन्यासकारों ने बहुत विस्तृत तथा क्रमबद्ध चिंतन किया है| ये सभी उपन्यास अन्नदाता किसानों के भयावह यथार्थ को पाठकों के सम्मुख उपस्थित करते हैं| ये सभी उपन्यास किसान जीवन से जुड़े प्रत्येक पहलू को चित्रित करते हैं| साथ ही प्रशासन को कठघरे में खड़ा करने का माद्दा भी रखते हैं|वर्त्तमान समय में देश के अन्नदाता का अस्तित्व बचाए रखने के लिए के सरकार को किसानों के हक़ में नीतियाँ बनाने तथा उनके क्रियान्वयन की समुचित व्यवस्था करने की नितांत आवश्यकता है|किसानों के प्रति सरकार की उदासीनता इन तीनों उपन्यासों के केंद्र में जान पड़ती है|

सन्दर्भ ग्रन्थ –

1. प्रो. संजीव नवले: उपन्यासकार संजीव किसान–आत्महत्या यथार्थ और विकल्प, वाणी प्रकाशन, शाखा- पटना, पृष्ठ 29
2. संजीव: फाँस, वाणी प्रकाशन, शाखा- पटना, पृष्ठ 52
3. संजीव: फाँस, वाणी प्रकाशन, शाखा- पटना, पृष्ठ 98
4. पंकज सुबीर: अकाल में उत्सव,शिवना प्रकाशन,सीहोर, पृष्ठ 27
5. सं. सुधा ओम धींगरा: पुस्तक विमर्श – अकाल में उत्सव,शिवना प्रकाशन, सीहोर, पृष्ठ 17
6. सुनील चतुर्वेदी : कालीचाट,अंतिका प्रकाशन, गाजियाबाद, संस्करण 2015,पृष्ठ 142

दूधनाथ सिंह तथा ज्ञानरंजन की कहानियों में वृद्ध विमर्श चिंतन और चुनौतियाँ

श्रीमती. ज्योति एकनाथ गायकवाड

शोध छात्रा, हिंदी विभाग शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर (महाराष्ट्र)

भ्रमणध्वनि- 9890826632 ईमेल – jyotigaikwad3686@gmail.com

हिंदी कहानी-साहित्य में कई विमर्शप्रचलित हैं, जैसे कि दलित विमर्श, स्त्री विमर्श, किन्नर विमर्श, आदिवासी विमर्श आदि। अब कुछ वर्षों पहले वृद्ध विमर्श पर भी साहित्य लेखन हो रहा है। वृद्धों की सामाजिक एवं मानसिक संवेदनाओं को कहानीकारों ने अपनी कहानियों में विशेष रूप से प्रस्तुत किया है। समकालीन कहानीकार वृद्धजनों के जीवन पर प्रकाश डालते हैं। वृद्धावस्था के बारे में स्वातितिवारी लिखती हैं, "वृद्धावस्था को एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में पारिभाषित किया गया है जिसे संपूर्ण शारिरिक क्षमताओं में उत्तरोत्तर कमी से आँकाजाता है।"[1] आज के युग में वृद्ध विमर्श अत्यंत आवश्यक हो गया है क्योंकि आजकल हर व्यक्ति इतना व्यस्त हुआ है कि उसके पास बुजुर्गों को समझने का समय ही नहींहै।

विमर्श याने संवाद, वार्तालाप, बहस या विचारों का आदान-प्रदान। अत: वृद्ध विमर्श में वृद्धों को लेकर होनेवाले वार्तालाप या विचारों का आदान-प्रदान।साठोत्तरी काल के प्रमुख कहानीकार दूधनाथ सिंह तथा ज्ञानरंजन ने अपनी कहानियों में वृद्ध विमर्श प्रस्तुत किया है। वृद्धों की समस्याओं पर चिंतन करके उनकी समस्याओं से छुटकारा पाने की चुनौती समाज के सामने प्रस्तुत की है।

दूधनाथ सिंह की 'लौटना' कहानी में बूढे लोगों की दयनीय अवस्था का गहराई से चित्रण किया है। लेखक के शब्दों में, "चारों ओर सन्नाटा था। औरतें घरों में काम-काज समेट रही होंगी। बच्चे स्कूल गये होंगे। और बूढे? शायद इने-गिने होंगे। किसी भी औद्योगिक बस्ती में बूढ़े नहीं रहते। वे अपने बेटों की राह ताकते किसी कस्बे, गाँव या दूसरे शहर में खत्म होते रहते हैं। इसलिए बूढे वहाँ नहीं थे। होते तो इतने खूबसूरत पार्क में वे बेंचों पर धूप सेंकते होते, या जो उनके पास नहीं होता - जैसे किस्वास्थ्य, जैसे कि संगीत, जैसे कि वैराग्य उसकी चर्चामें निमग्न होते।"[2] अतः यहाँ पर बूढ़े लोगों की स्थिति काचित्रण स्पष्ट होता है। 'रक्तपात' कहानी में बूढी माँ के साथ बहू अन्यायपूर्वक व्यवहार करती है। बेटा संजय की पत्निअपनी सास के साथ झगडती रहती है। बीमार माँ का कमरा दुर्गंध से भरा होने के कारण उसे बुढ़िया के प्रति घृणा आती है।अंत में वह बुढ़िया को गुस्से में आकर धकेल देती है और बुढ़िया की मृत्यु हो जाती है, "चल हट यहाँ से।"[3] उनके मुँह से कोई भद्दी गाली निकलते'निकलते रह गयी और उन्होंने बुढ़िया को आगे की ओर धकेल दिया।

'दुर्गंध' कहानी में अपने पिता केप्रति तिरस्कृत भावसे देखता हुआ बेटा दिखाई देता है, "लोगों की प्रशंसा और लिबलिबी विनम्रता से चिकनाया हुआ बैलोंसतांबई चेहरा लिए एक दिन जब वह घर लौटा तो पाया कि उसका बाप उसके सबसे छोटे बच्चे को गोद में लिए हुए बाहर बरामदे में बैठ उसकी राह ताक रहा है। बाप को देखकर वह कुढ गया और झुंझलाता हुआ अंदर चला गया।"[4] अतः यहाँ परं परिलक्षितहोता है, कि बेटा अपने पिताजी के साथ उपेक्षिता सेव्यवहार करता है। जिस व्यक्ति ने उसे जन्म देकर पाला-पोसकर बढा करने पर उसके साथ इसतरह का बूरा व्यवहार करना गलत दिखायी देता है। बूढे, असहाय पिताके मन को चोट लगती है। अत: यहाँ पर दूधनाथ सिंह ने प्रभावकारी ढंग से वृद्धों की दयनीय अवस्था का चित्रण किया है।

'रज्जत' कहानी का निर्दयी बेटा अपनी माँ की मृत्यु होने पर भी उसे कोई दुःख नहीं, बल्कि मृत्यु होने पर उसके अंतिम विधि की बात करता है, "अचानक उसका हिलना-डुलना बंद हो गया तो उसके बेटे ने चकित होकर उसकी ठठरी को देखा। उसने अपनी उस दोपहर के सन्नाटेवाली गली में बाहर झाँका, खँखारकर थूका और इस सच्चाई से दो-चार हुआ कि बुढिया टें बोल गई है, और उसे निपटाना पडेगा।"[5] मन को झकझोर देनेवाली बात है। इतना निर्दयी, निर्ममता पूर्ण व्यवहार करने0वाले बेटे के प्रति घृणा आती है।

'क्या करूँ साथ साडब जी' कहानी के अपने कोई का काम-धंधा न करनेवाले बेटे शामलाल के प्रति चिंतित पिता ओमप्रकाश जी की दर्दभरी व्यथा चित्रित हुई है। संस्थान में कर्मचारी होनेवाले सोमप्रकाशजीअपने जवानाबेटे शामलाल को कुछ काम-धंधानहोनेके कारण चिंतित रहते हैं। शामलाल को नौकरी मिल जाए इसकारण ओमप्रकाश जी आत्महत्या करते हैं। "ओमप्रकाश जी ने प्रिसेंज क्वार्टर के कॉरिडोर से उस खडडनुमा आँगन में छलाँग लगाकर आत्महत्या कर ली और उस खडडनुमा शामलाल को ओमप्रकाश जी की जगह अनुकंपा के आधार पर नौकरी मिल गई है।"[6]यहाँ पर अपने बेटे के लिए खुद को मिटानेवाले पिताजी के प्रति करुणा उत्पन्न होती है। समाज में चल रही आर्थिक विपन्नता तथा बेटे की नाकामयाबी से पिडित पिता की व्यथा स्पष्ट होती है।

इसीतरह ज्ञानरंजन ने भी अपनी कहानियों में वृद्ध विमर्श प्रस्तुत किया है। 'याद और याद' कहानी के नायक को अपनी माँ के जाने के बाद याद आती है औरवह दु:खीहो जाता है, "अम्मा की उबलती हुई याद। अम्मा जो दुःख से लद गई, अम्मा जो अभागी मर गईं। उसकी धँसी आँखों पर हमेशा चढी रहने वाली पनीली छलछलाहट, कब्र-सी सूनी दृष्टि की ढहती मुस्कान और कम्पित काया हमेशा के लिए सो गई।"[7]अपनी माँ की पीडा से व्यथित बेटा दुःखी हो जाता है। यहाँ वृद्धत्व के कारण शारीरिक तथा मानसिक पीडाओं से त्रस्त अम्मा का चित्रण हुआ है।

'पिता' कहानी के पिता बेटों द्वारा घर में की गई सुविधाएँ स्वीकारते नहीं है। खुद कष्ट सह लेते है। गर्मियों के दिनों में बेटा घर में बहुत सारे पंखे लगाता है लेकिन पंखों की हवा पिता नहीं लेते हैं। इसकारण बेटा चिढ़ जाता है।"गजब तो पिता की जिद है, वह दूसरे का आग्रह-अनुरोध मानें तब न। पता नहीं क्यों, पिता जीवन की अनिवार्य सुविधाओं से भी चिढते हैं। वह झल्लाने लगा।"[8] जीवन भर कड़ी मेहनत करके अपना गुजारा करने वाले पिताजी अपने लिए अनायास खर्च नहीं करते हैं। मध्यवर्ग के प्रतिनिधि पिता खुद के ढंग से जीते हैं। वर्तमान समय की चमक-धमक से परे रहना पसंद करते हैं। पूरी कहानी 'पिता' के इर्द-गिर्द घूमती है। पूरे जीवन का अनुभव लेनेवाले पिता अपने विचारों पर ही अडिग रहते हैं।

'क्षणजीवी' कहानी का बेटा अपने बूढ़े बापपर क्रोधित है। कहानी में बेटा घर से बाहर रहता है। बूढे पिताजी अपनी सौ रूपयों की पेंशन में से तीस रूपए अपने बेटे के लिए मनीऑर्डर करके भेजते हैं। जिंदगी के सैंकडों जाल में जीनेवाला बेटा मनीऑर्डर देर से मिलने के कारण पिताजी पर क्रोधित होता है, "मुझे अपने बूढ़े बाप की उम्मीद पर बडा क्रोध आ रहा है। भगवान यह बुढामर ही जाए। मैंने सोचा कि मान लो कल रात उसे खाँसी उठी हो और उसने दम तोड़ दिया हो, थोडी देर बाद घर पहुँचने पर मुझेमौत की निर्दयी तार मिले फिर।"[9] बूढे बापके पैसों पर जीनेवाला निर्दयी बेटा बाप के बुढापे की लाठी होने के बजाय उसके मौत की प्रतीक्षा करता है। अपने पिता के प्रति अनादर रखना है। यह वास्तविकता को देखकर वृद्धों की व्यथाओं पर मन द्रवित हो जाता है।

विवेच्य कहानीकारों ने अपनी कहानियों में वृद्ध विमर्श को प्रस्तुत करके विश्व के समक्ष वृद्धावस्थासंबंधि समस्याएँ बड़ी चुनौती बनकर सामने आती है। इन कहानियों में वृद्धावस्था पर व्यापक तथ्य हमारे समाज के संदर्भ में अत्यंत प्रासंगिक है। हमारे समाज, साहित्य और संस्कृति में वृद्ध सदा उपस्थित रहे है, लेकिन उनकी यह उपस्थिति केंद्र की

अपेक्षा परिधि पर अधिक रही है। केंद्र से अपदस्थ हुए वृद्ध लोग समाज की उपेक्षा के पात्र होते हैं। इन लोगों को अपना बचा हुआ जीवन वृद्धाश्रमोंमें बिताना पड़ता है। वृद्धावस्था विमर्श में इस उपेक्षित समुदाय की दृष्टि से साहित्य में नई व्याख्या करनेवाला विमर्श है। वृद्धों और वृद्धावस्था पर चिंतन बडी परंपरा का विषय है। समाज में वृद्धों के लिए सन्यास याने सबकुछ त्याग देने की अपेक्षा होती है। इसके विपरीत वृद्धि विमर्श में वृद्धोंको समाज में पुनर्वासित देखना चाहता है। वैचारिक पीठिका पर विवेच्य कहानीकारों ने वृद्ध विमर्श का अनुसंधान और विश्लेषण पाठकों के सामने यथार्थ जीवन प्रस्तुत किया है।

इन कहानीकारों की तरह। हिंदी कहानी साहित्य में वृद्ध विमर्श को स्वीकार किया गया है। अनेक कहानीकारों ने अपनी कहानियों का मुख्य कथ्य के रूप में वृद्ध विमर्श पर कहानी लेखन किया है। इन कहानियों में प्रेमचंद की 'बूढी काकी', भीष्म साहनी की 'चीफ की दावत', उषा प्रियंवदा की 'वापसी' गोविंद मिश्र की 'साधें' रामधारी सिंह 'दिनकर' की 'अपना घर', मिथिलेश्वर जी की 'हरिहर काका', नरेंद्र कोहली की 'शटल', मंजुल भगत की 'दादी का बहुआ' आदि कहानियाँ सम्मिलित हैं। भारतीय परंपरा के परिप्रेक्ष्य में वृद्धों की स्थिति दयनीय नहीं कही जा सकती। यहाँ बड़ों का मान-सम्मान किया जाता है। संस्कृत की एक उक्ति है 'अभिवादन शीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविन: । चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विदया यशो बलम्।'अर्थात प्रतिदिन बुजर्गों को प्रणाम करने और उनकी सेवा करने वाले व्यक्ति की आयु, विद्या, कीर्ति और शक्ति की वृद्धि होती है। साठोत्तर युग की कहानियों में वृद्धों की सेवा करने के विचारों में बदलाव आया है। स्थितियों के साथ-साथ मूल्यों में भी परिवर्तन आया है। परिवार का विघटन हो रहा है। वार्धक्य समस्या बनने लगा है। जैसे-जैसे मनुष्य बुढ़ापे की ओर बढ़ता है वैसे-वैसे अकेलापन, संजास, असुरक्षा और भय आदि उसको घेर लेते हैं। दरअसल वृद्धों को सुरक्षा और स्नेह की आवश्यकता होती है।

वृद्धावस्थाबचपन से लेकर जवानी तक के जीवनानुभवों का कोश होता है, वह एक ऐसा प्रकाश पुंज होता है जिसने बचपन से लेकर जवानी तक के वर्तमान में व्यक्तिवादी सोच के बढ़ने के कारण भारतीय वृद्ध परिवार हाशिये पर है। जिन बुजुर्गों की वजह से हमारा अस्तित्व है उनके लिए हर व्यक्ति के मन में संवेदनाएँ होनी चाहिए। समाज में उचित सम्मान न मिलने के कारण वृद्ध व्यक्ति निराशाजनक जिंदगी जी रहे हैं। व्यावसायिक जीवन की व्यस्तता के कारण नई और पुरानी पिढ़ी में सामंजस्य नहीं हो पा रहा है। व्यक्ति बुजुर्गों की तरफ ध्यान न दे पा रहे हैं और यह बात हमारी सभ्यता और संस्कृति से हमें दूर ले जारही है।

निष्कर्षत: यहाँ वृद्ध विमर्श पर विचार मंथन करने पर हमें चुनौतियों पर विचार-विमर्श करना पडेगा। आज की परिस्थितियों का विचार करने पर यह बात ध्यान में आती है कि लुप्त हुए मानव मूल्यों के समाज में वृद्धों की समस्याओं को हल करने का प्रयास करें। वृद्ध व्यक्ति स्नेह और सम्मान की लालसा रखता है। विवेच्य कहानीकारों ने वृद्धों की समस्याओं की तरफ लोगों का ध्यान आकर्षित किया हैं। वृद्धविमर्श का साहित्य में प्रयोग वृद्धों के लिए सम्मान का मार्ग है। वृदध विमर्श आज के युग की आवश्यकता है। इससे वृद्धोंकी स्थिति में सुधार कर सकते हैं।

संदर्भ सूची-

1. तिवारी स्वाति- अकेले होते हुए लोग, पृष्ठ - 31
2. सिंह दूधनाथ- माई का शोकगीत, पृष्ठ -59
3. सिंह दूधनाथ- कथा-समग्र, पृष्ठ- 47
4. सिंह दूधनाथ- धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे, पृष्ठ- 3|
5. सिंह दूधनाथ- जलमुर्गियों का शिकार, पृष्ठ- 15

6. दूधनाथ सिंह, जलमूर्मियों का शिकार, पृष्ठ- 106
7. ज्ञानरंजन- सपना नहीं, पृष्ठ- 22
8. ज्ञानरंजन- सपना नहीं, पृष्ठ-161
9. ज्ञानरंजन- सपना नहीं, पृष्ठ – 43

B.Aadhar' International Peer-Reviewed Indexed Research Journal

Impact Factor -(SJIF) –8.632, Issue NO, (CDXLVI) 451-A

ISSN : 2278-9308 December, 2023

आधी आबादी की आर्थिक स्थिती का बदलता रूप (स्त्री लेखिकाओं के संदर्भ में)

डॉ. पल्लवी भूदेव पाटील

अध्यक्ष, हिंदी विभाग, राजर्षी शाहू महाविद्यालय (स्वायत्त), लातूर

पुरूष मेंव्यक्तिगत संपत्ति का मोह जब से शुरू हुआ तब से स्त्री के आर्थिक आधार कम करने की कोशिश पुरूष ने शुरू की। इसापूर्व काल से स्त्री को आर्थिक दृष्टि से परावलंबी किया गया। परिवार के अंतर्गत सारे आर्थिक व्यवहार पुरुष के हाथ में थे। और आज भी इस अवस्था में कोई बहुत परिवर्तन नहीं हुआ है। आज भी भारत के 90% परिवारों में अर्थ पर पुरुष का ही नियंत्रण होता है। प्रेमचंद की कहानियों में और उपन्यासों में स्त्री की आर्थिक मजबूरी का बड़ा दर्दनाक चित्रण किया गया है। पति की मृत्यु के बाद यदि उसे जमीन या संपत्ति मिल जाय तो निकट के रिश्तेदार अथवा बेटे धीरे-धीरे उससे कैसे संपत्ति छिन लेते है, इसपर स्वतंत्रपूर्व काल में कई कहानियाँ लिखी गयी है।

स्वातंत्र्योत्तर काल में शिक्षा की सुविधा और कानुनन अधिकार प्राप्त होने से स्त्री कुछ अंशो में आर्थिक दृष्टि से सबल होने लगती है, परंतु पुरूष इसे सह नही पाता। विशेषतः जो कामकाजी महिलाएँ हैं उनके पति या पिता उनसे उनकी आय का सतत हिसाब किताब माँगते रहते हैं। विशेषतः मध्यमवर्गीय स्त्री आर्थिक दृष्टि से सबल होते हुए भी पति के आर्थिक नियंत्रण को चुपचाप सहन करते हुए जीती है। लेकिन श्रमिक स्त्री जो अपनी आय में अपने पति का हस्तक्षेप कुछ सीमा के बाद स्वीकार नहीं करती।

यहाँ यह प्रश्न उठाया जा सकता है कि आर्थिक स्वावलंबन के कारण स्त्री को निर्णय लेने की दृष्टि से क्या स्वतंत्रता प्राप्त हो सकती है? उससे सम्मुख जो कुछ समस्याएँ थीं, क्या आर्थिक स्वावलंबन ने उन समस्याओं को मिटाया है। इसका उत्तर यह है कुछ सीमा तक तो उसमें निर्भिडता आ गयी है। कुछ सीमा तक तो वह परिवार की निर्णयों में हस्तक्षेप कर रही है। इसके साथ-साथ दुसरी यह भी वास्तविकता है की उससे सम्मुख नयी समस्याएँ खडी हो गई है। प्रश्न यह है कि आर्थिक स्वावलंबन के कारण स्त्री के सम्मुख जो नयी समस्याएँ खडी हैं, उससे वह किस प्रकार टकरा रही है?

आर्थिक स्वावलंबन के कारण उसकी मानसिकता में उसके आचरण में किस प्रकार का परिवर्तन हुआ है। हिंदी की लेखिकाओं ने इस परिवर्तन को किस रूप में पकड़ा है, उसे परखना यही इस शोध पत्र का उद्देश्य है। स्त्री के आर्थिक स्वावलंबन का अध्ययन निम्नलिखित पद्धति से करने का प्रयत्न किया गया है।

साठोत्तरी हिंदी कहानियों में व्यक्त स्त्री का आर्थिक जीवन और उसके व्यक्तित्व में हो रहे परिवर्तन के विविध पहलु :

स्त्रियाँ आज यह महसूस करने लगी हैं कि स्त्री जीवन का लक्ष्य गृहस्थी तक सीमित नहीं है। आज हमारा जिस स्त्री से साक्षात्कार होता है, वह घर तथा परिवार दोनों भूमिकाओं को निभानेवाली, स्वयं की क्षमताओं को सिद्ध करनेवाली स्त्री है। आज स्त्री ने अपना कार्यक्षेत्र बढाया है। परिवार के आर्थिक ढाँचे को मजबूत करने का कार्य कर रही है। औद्योगिक क्रांति, शिक्षा तथा जीवन स्तर को विकसित करने के लिये स्त्री के मस्तिष्क में अर्थार्जन की प्रवृत्ति जागृत हुई है। आज की कामकाजी स्त्री समाज की एक शक्ति है। अधिकाधिक महिलाएँ अपने आत्मसम्मान और व्यक्तित्व विकास को ही जीवन का लक्ष्य मानने लगी हैं।

उनकी आर्थिक स्वावलंबिता ने उनमें एक प्रकार का आत्मविश्वास भर दिया है। वह अपनी अस्मिता के प्रति जागरूक तथा अधिक कर्तव्यदक्ष बन गई हैं।

4.1.1 बढ़ता आत्मविश्वास :

स्त्रियों में अर्थाजन के कारण एक प्रकार का आत्मविश्वास आ गया है। अर्थार्जन के कारण उनमें सही-गलत, अच्छे-बुरे की समझ आ गयी है, इसी आधार पर वह खुद के सभी निर्णय खुद ले रही है। परिवार द्वारा या समाज द्वारा थोपे गये निर्णयों का वह खुलकर विरोध कर रही है। विरोध करने की यह ताकद उसे अर्थ से प्राप्त हुई है।

मृदुला गर्ग की 'तीन किलो की छोरी' कहानी में शारदा बेन आर्थिक रूप से स्वतंत्र स्त्री है। अर्थार्जन के कारण उसमें स्वाभिमान तथा आत्मविश्वास आदि गुण दिखाई पडते हैं।

शारदा बेन एक ग्रामसेविका का कार्य करनेवाली दलित स्त्री है। वह दाई का काम करती है। सौ रूपये महिना कमाती है। फौंडेशन की मोटी बेन के साथ रहकर उसमें काफी जागरूकता आ गयी है। गाँव भर में प्रबोधन करती फिरती है। वह कमाती है इसलिए उसे अपने पे बड़ा नाज है। वह बड़ी कर्मठ तथा आत्मनिर्भर है। वह स्त्री-पुरूषों की बराबरी का समर्थन है। उसे अपनी कमाई का महत्व भी मालूम है। जब उसने छोरा-छोरी के समानता की बात की थी तब उसके पति से मार खाते-खाते बची थी। लेकिन जब उसने अपनी कमाई की बात की तह उसे पति ने ऐसी लात मारी की वह खटिया के नीचे जाकर गिरी थी। लेकिन फिर भी उसे पक्का मालूम है कि उसके कमाए रुपयों से ही उसकी जिंदगी में परिवर्तन आया है। उसका बेटा भी उसी की कमाई पर पल रहा है। "छोरे को स्कूल बिला नागा पढ़ाई करने पठाती है। गर्व से उसकी छाती फूल गई।"[1]

जब लीली बहन ने स्वस्थ तीन किलो की छोरी को जन्म दिया था तब शारदा बेन को लगा था कि वह इसे ग्रामसेविका बनायेगी लेकिन दूध के अभाव में बच्ची की जब मौत हो जाती है तब शारदा बेन बड़ी दुःखी और व्यवस्था के खिलाफ विद्रोही बन जाती है। गाँव में जागरूकता लाने का प्रयास करती है। काम में भी शारदा बेन बड़ी तेज़ है। बुनकरों की बस्ती में घुम-घुमकर लोगों को दवा देती है। लोगों के दुःख दूर करती है। उसके सामाजिक कार्यों से लोग यह भूल गये कि वह एक अस्पृश्य महिला है। लोगों के लिए वह केवल शारदा बेन है।

अर्थात् शारदा बेन ग्रामीण, कम पढ़ीलिखी होने के बावजूद भी आत्मस्वतंत्र है, आत्मनिर्भर है। भले ही पति की नज़रों में उसका स्थान कुछ भी न हो लेकिन गाँव की नजर में वह एक आत्मनिर्भर, निर्भय, आत्मविश्वासु स्त्री है।

अस्मिता के प्रति जागरुकता :

आज की शिक्षित स्त्री किसी मंदिर की मूर्ति नहीं बनना चाहती, वह किसी शहाजहाँ की मुमताज भी नहीं बनना चाहती जो संगेमरमर की दीवारों में कैद विश्व का आश्चर्य बनकर रह जाय। न ही अपनी तकदीर को कोसती रहनेवाली एक गृहिणी बनना चाहती है। वजर चाहे जो हो पारिवारिक दायित्व अथवा अपनी स्वतंत्रता के लिए स्त्री आर्थिक दृष्टि से सबल होना चाहती है। धीरे-धीरे वह आर्थिक दृष्टि से स्वतंत्र भी हो गई। आर्थिक दृष्टि से सबल होते ही वह अपने अस्तित्व के प्रति, अपनी अस्मिता के प्रति सजग हो गई है।

कई बार पारिवारिक माहौल उसके व्यक्तित्व एवम् अस्तित्व के हित में नही होता है ऐसी विपरित परिस्थितियों में भी उसने हार नहीं मानी है। क्योंकि वह जान गई है कि उसका अस्तित्व ही उसे सीमित दायरे से बाहर निकालकर असीमित बना देगा।

आज आर्थिक दृष्टि से सबल स्त्री का परिवार में स्तर भी बढ़ गया है। स्त्री जब परिवार तक सीमित थी, तो परिवार की जिम्मेदारियों को उसने बखुबी निभाया। आज वह परिवार से निकलकर समाज में आई है। आर्थिक क्षेत्र

में भी स्त्री ने पर्दापन किया है। आर्थिक भार को उठाकर उसने साबित किया है कि वह एक बहन, पत्नी, बेटी तथा माँ के अलावा एक सफल अधिकारी भी है, सफल शासक भी है, और सफल शिक्षिका भी है।

निरूपमा रेवती की 'कीवाड़भर रोशनी' इस कहानी की विधवा स्त्री गीता अपने दमघोटू वातावरण से बाहर निकलने के लिए नौकरी करने लगती है। आत्मनिर्भर बनती है, नौकरी करते समय उसकी मुलाकात शेखर नाम के व्यक्ति से हो जाती है। दोनों की मित्रता देखकर ससुरजी उदारता वश विधवा गीता के सामने शेखर से शादी का प्रस्ताव रखते है। पहले गीता इनकार करती है, लेकिन अपने अकेलेपन को मिटाने के लिए गीता ने जो मार्ग निकाला था, वह सास-ससुर को मंजूर नहीं था। अतः गीता शेखर के साथ विवाह के लिए तैयार हो जाती है। लेकिन गीता जब देखती है कि शेखर के मन में गीता के लिए वह भावना, वह सम्मान नहीं था, जो गीता के मन में शेखर के प्रति था। एक दिन शेखर द्वारा अपने मित्र को कही गई बातें वह सुनती है। शेखर गीता का नाम विशेष सम्मान से नहीं लेता। गीता को बात बहुत खटकती है। वह तुरंत शेखर से विवाह करने के अपने निर्णय को बदल देती है। तथा अपने स्वाभिमान का परिचय शेखर को देती है।

वास्तव में गीता विधवा है, अकेली औरत है। उसे किसी पुरूष की अत्यंत आवश्यकता है। किन्तु फिर भी वह ऐसे व्यक्ति का साथ कदापि नहीं चाहती जो उसके अस्तित्व को कुचल दै, जो उसके प्रति मान-सम्मान न रखे। गीता को साथी से भी महत्वपूर्ण उसका मान-सम्मान उसकी अस्मिता थी। वह अकेली रहना पसंद करती है लेकिन अस्मिता से समझौता उसे मान्य नहीं।

मृणाल पांडे की 'याने कि एक बात' कहानी की स्त्री भी अपनी पहचान बनाने के लिए अपने परिवार तथा बच्चों को त्याग देती है। लेकिन 'स्व' पर आँच नहीं आने देती। कहानी में 35 वर्षिय प्रौढ महिला है। कॉलेज में प्राध्यापिका है। पंद्रह वर्ष के वैवाहिक जीवन के उपरांत पति से अलग रहने लगी है। एक दिन वह पति से होटल में मिलती है। दोनों की औपचारिक बाते होती हैं। पति अब दयालु बनकर उसके साथ जीना चाहता है। परंतु अब वह उसकी इस दया पर जीना नहीं चाहती। उसे लगता है कोई उसकी जिंदगी की घुमावदार सच्चाइयों का साथी बने। वह किसी की बनी बनाई व्यवस्था के आवरण में अपने आप को विलिन कर किसी की बनकर जीना नहीं चाहती। वह अपनी अलग पहचान बनाना चाहती है। उसके सामने एक और उसकी गृहस्थी है तो दूसरी ओर नौकरी। दोनों जीवन के लिए अतिआवश्यक हैं। लेकिन उसके लिए परिवार से अधिक महत्वपूर्ण थी उसकी नौकरी। वह कहती है, "पर मैं न तो ठापी जाना चाहती हूँ न उघाडी जाना चाहती हूँ। गर्दन उठाएँ सड़क से इसपार से उसपार जाना चाहती हूँ।"[2] और वह उठकर चली जाती है। अर्थात आज स्त्री केवल पति की परछायी बनकर जीना नहीं चाहती। उसे अपना स्वतंत्र रुप ही प्यारा है, अधिक महत्वपूर्ण है।

मृदुला गर्ग की 'बर्फ बनी बारिश' कहानी एक शिक्षित आत्मनिर्भर स्त्री के अस्मिता की सशक्त कहानी है। स्त्री की अस्मिता ने उसे उसके स्वाभिमान के प्रति जागरूक बनाया है।

बिन्नी आधुनिक स्त्री है जो अपने निर्णयों को महत्व देनेवाली है। पति अमर पारिवारिक विचारों का व्यक्ति है। अमर बेटे के पीछे-पीछे खुद भी अमेरिका जाने का निर्णय लेता है। इतना बडा निर्णय लेते समय उसने पत्नी बिन्नी को पुछना जरुरी नहीं समझा। पति ने अकेले में यह निर्णय लिया था। इसीलिए बिन्नी नाराज थी। बिन्नी एक स्कूल में टीचर थी। वह अपनी नौकरी छोड़कर अमेरिका नहीं जाना चाहती थी। उसे लगा कि एक-बार अमर से पुछूँ कि, "आपने निर्णय ले लिया और सोचा मैं चुपचाप तुम्हारे पीछे चली आऊँगी। मेरा कोई अस्तित्व नहीं, चुनाव नहीं, निर्णय नहीं।"[3] वास्तव में इस निर्णय में अमर ने पत्नी को दोय्यम स्थान दिया था। इसीलिए बिन्नी छटपटा उठी थी। अपनी अस्मिता को अमर द्वारा नकारा जाने के बाद बिन्नी अपनी स्वतंत्र अस्तित्व बनाकर रखती

है। वह अमेरिका जाने से इनकार करती है। उसने अमर को दिखा दिया कि वह भी जिंदगी के बारे में खास राय रखती है। वह अपने विचारों के अनुकूल जिंदगी जीती हैं। अमर का अर्ह और बिन्नी की अस्मिता एक दूसरे से टकरा रहे थे फिर भी ऐसी स्थिति में भी बिन्नी अपनी अस्मिता बचाकर रखती है।

चित्रा मुदगल की 'लक्षागृह' कहानी की सुन्नी प्रौढ़ महिला है। रुप की कमी के कारण उसका विवाह नहीं हो रहा था। सुन्नी आर्थिक रुप से स्वतंत्र विचारों से स्वतंत्र स्त्री है। पिताजी द्वारा आये देवेन के रिश्ते को ठुकराती है और उसी के विभाग में मिस्टर सिन्हा काम करते हैं उनसे वह दोस्ती करती हैं और दोनों विवाह का निर्णय भी लेते हैं। इसके पहले ही सुन्नी अपने पैसों से एक फ्लैट लेती है और मिस्टर सिन्हा के नाम करती है।

एक दिन मिस्टर सिन्हा को उनके किसी मित्र से बात करते सुनती है कि, "आठ सौ रूपये महिना कमानेवाली कहाँ मिलेगी? सौदे की कोई शक्ल सुरत नहीं होती।" सिन्हा के इस वक्तव्य के कारण वह सिन्हा से शादी न करने का निर्णय लेती है। नौकरी का भी त्यागपत्र देती है। घर आकर देवेन से शादी करने को तैयार हो जाती है। अर्थात् सुन्नी ने सिन्हा जैसे व्यक्ति से शादी करने से इनकार कर अपने अस्तित्व की रक्षा की है।

राजी सेठ की 'उसी जंगल में' कहानी के केंद्र में स्त्री पात्र 'वह' है। जो पति के अन्याय अत्याचार सहन कर रही है। लेकिन उस दिन वह पति का घर छोड़ने का निर्णय लेती है, जिस दिन उसका पति उसे अपने ही घर में अन्य लोगों से संबंध रखने को मजबूर करता है। गर्भवती होने के बावजुद वह घर छोड़ने का निर्णय लेती है। उसे कुछ ही दिनों में नौकरी लग जाती है। इसी बीच उसे बेटा होता है। बेटे से उसे खास लगाव नहीं है, कारण बेटा उसी आदमी का लडका है, जिसे उसने ठुकराया है। निःसंतान भैया भाभी की गोद में बेटे को डालकर वह दूसरे गाँव नौकरी करने चली जाती है। पति जब तलाक के कागजाद भेज देता है तब वह पति को तलाक देना नहीं चाहती। क्योंकि उसे लगता है यदि वह उसे तलाक दे देगी तो फिर वह किसी और से शादी करके उसकी भी जिंदगी खराब कर देगा। लेकिन पति किसी विधवा लडकी को बिना ब्याह किए रख लेता है, जो अभी गर्भवती है। अंत में वह उस और के लिए तथा उसके बच्चे के लिए तलाक दे देती है। अर्थात वह अत्यंत निर्भिक, स्वतंत्र स्त्री है। जिसे जीने के लिए बैसाखी की जरुरत नहीं। वह न ही पति का आधार चाहती है, न ही भाई का, न ही बेटे का। केवल आत्मनिर्भरता के कारण वह अपने अस्तित्व की रक्षा कर पायी।

संदर्भ :

1) संगति-विसंगती - मृदुला गर्ग, वाणी प्रकाशन, पृ.सं. 63
2) दरम्यान - मृदुला पांडे, राजकमल प्रकाशन, पृ.सं. 22
3) संगति-विसंगती - मृदुला गर्ग, वाणी प्रकाशन, पृ.सं. 44
4) मामला आगे बढ़ेगा अभी - चित्रा मृदगल, पृ. सं. 44
5) नववे दशक की कामकाजी स्त्री - तृष्णा पंडित, पृ.सं. 39

B.Aadhar' International Peer-Reviewed Indexed Research Journal

Impact Factor -(SJIF) –8.632, Issue NO, (CDXLVI) 451-A

ISSN : 2278-9308 December, 2023

स्त्री विमर्श : हिंदी उपन्यास चिंतन और चुनौतियां

प्रा. डॉ.पठाण खातून बेगम अकबर खाँन

पीपल्स कॉलेज, नांदेड

हिंदी महिला लेखिकाओं ने स्त्री विमर्श को समृद्ध कराने में महत्वपूर्ण योगदान दिया हैं। अपने साहित्य के माध्यम से इस आधी दुनिया जो उपेक्षित पीडित हैं। उन्हें मनुष्य होने का दर्जा दिलाने का योगदान सराहना के पात्र हैं। अपनी कलम की धार से असंभव को संभव स्थिति की ओर तथा अपनी विचारधारा के प्रति जागरूक करती हैं। तथा उन्हें लडने की प्रेरणा देती हैं। साथ ही महिला साहित्यकारों ने उनके मनोभावों तथा सवेंदनाओं को मार्मिक ढंग से साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्त किया हैं।

स्त्री का जीवन काफी संघर्षमय तथा सोचनीय हैं। उसे अपने जीवन में परिवर्तन लाना हो तो स्वयं विचार विश्लेषण करना होगा अन्यथा पुरुषप्रधान संस्कृति द्वारा स्थापित व्यवस्था के अनुसार ही जीवन जिना पडेगा। उसे स्वयं ही उसे परंपरओं तथा रुढियों को त्यागना होगा। जब से लेखिकाओं, कलाकर्मियों ने इस सत्य को जाना तभी से स्त्री विमर्श की विचारधारा का जन्म हुआ। स्त्री विमर्श ने पितृसत्तात्मक समाज के अंतर्विरोधों को के पटल पर लाया साथ ही उसका विखंडन भी किया हैं। स्त्रियों ने अपने ऊपर सालों से हो रहे अन्याय, अत्याचार के खिलाफ आवाज उठाना शुरू किया। वह अपनी समस्याओं खुलकर व्यक्त करने लगी। रूढ़ी परंपराओं का त्याग कर नवीनता का स्वीकार किया हैं। स्त्री विमर्श स्त्री की व्यथा, दुःख और संघर्ष की अभिव्यक्ति हैं।

स्त्री विमर्श ने हजारों वर्षों से चल रहे पितृसत्तात्मक विमर्श, सिद्धान्तों, प्रतिमानों को चुनौती दी जो सिद्धान्त पुरूष द्वारा निर्मित हैं। स्त्री विमर्श ने पितृसत्तात्मक तथा पुरुषप्रधान सिद्धान्तों में व्याप्त विविध विसंगतियों, विद्रूपताओं तथा विरोधाभासो को साहित्य के माध्यम से अंकित किया जो स्त्री विरोधी हैं। सच कहा जाए तो पुरुष कभी भी स्त्री विमर्श को खुले मन से स्वीकार नही करेगा। वह बस स्त्री पर अपना वर्चस्व स्थापित करना चाहता हैं। सिमोन द बोऊवार, जैटी फ्राइडन, जुडिथ बप्लट , निटफिट , मिलेट किस्तिविया, भारत मे महाश्वता देवी, सुनीता भट्टाचार्य,रमणिका गुप्ता, मल्लिका सेनगुप्त आदि स्त्री लेखिकाओं ने पैतृक साहित्य शास्त्र, सिद्धान्तों के अन्तर्वरोधों को सामने रखा और पैतृक सिद्धान्तों में निहित पुरुष, समाज की संकीर्ण मानसिकता, तथा विरोधाभासों को तोडते हुए स्त्री विमर्श को उपयुक्त तथा प्रासंगिक बनाया हैं।

स्त्री विमर्श में लेखिकाओं का संघर्ष पीड़ा वेदना तथा अनुभवों को अभिव्यक्त किया गया। पश्चिम में फेमिनिजम का आंदोलनों के माध्यम से विकास हुआ। वहाँ स्त्रयों ने समान मानवीय अधिकारों के लिए तीव्र संघर्ष किया। लेकिन जो स्त्री विमर्श सामने आ रहा हैं वह स्त्री आंदोलन की देन हैं। जो भिन्न वैचारिक तीखेपन तथा परिवर्तन से सामने आ रहा हैं। इसलिए यह अनुमान लगाना भी उचित नही कि जहाँ फेमिनिस्ट आंदोलन नहीं चल रहे वहाँ स्त्री विमर्श नहीं होगा। दरसल वह कितने ही युगों तक स्त्री की भीतरी दुनिया में चल रहा विमर्श था। आज उसने यह रूप धारण किया हैं - " जो स्त्रियां बौद्धिक, रचनात्मक,सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक दृष्टि से जागरूक हैं, उनके भीतर पैतृक सत्ता के विरुद्ध जबरदस्त आत्मसंघर्ष, आत्मचेतना चल रही हैं वहीं स्त्री विमर्श की संभावनाएं उतनी ही प्रचण्ड होती जा रही हैं। स्त्री विमर्श में जो नए- नए प्रश्न, मुद्दे उठने लगे हैं उन्होंने इस दिशा में नवीन संभावनाओं के क्षितिजों को फैलना शुरू कर दिया हैं। स्त्रियों की दुनिया में यह जो नया बौद्धिक

सांस्कृतिक जागरण हैं इसे कोई भी अस्वीकार नहीं कर सकता। दुनिया की आधी आबादी ने जो स्त्री विमर्श छेडा हैं उसकी ठोस आर्थिक- ऐतिहासिक स्थितियां हैं। अब वे हाशिये टूटने लगे हैं।"1

स्त्री विमर्श की उपयुक्तता तथा सार्थकता की महत्ता प्रतिपादित करते हुए रचनाकर तस्लीमा नसरीन साफ शब्दों में कहती हैं - "हमारा विरोध पुरुष जाति से नहीं, विरोध हैं पुरुष की उस सामंती मनोवृत्ति से, जो नारी को दासी से अधिक दर्जा नहीं देती।"2

वही दूसरी ओर आशारानी व्होरा का कथन उल्लेखनीय हैं - " अधिकारों की मांग नहीं अधिकारों का अर्जन ही वह लक्ष हैं, जिसके लिए हमें अपने आपसे और अपने बाहर दो मोर्चोपर दुहरा संघर्ष करना हैं। यह संघर्ष जितना तीव्र होगा जीत उतनी ही सुनिश्चित होगी।"3

मृणाल पांडे लिखती हैं- " स्त्री के अस्तित्व को, इसके पुरुष से जुड़े संबधों तक ही सीमित करके न देखा जाए बल्कि पुरूष की ही तरह उसे भी मानवता का एक भिन्न तथा अनिवार्य और पुरुष तत्व माना जाए।"4 यह बात महत्वपूर्ण हैं किंतु समाज इसे स्वीकार करने को तैयार नाही कुछ लोग इसे उग्रता मानते हैं पर वह तर्कसंगत नहीं हैं।

" स्त्री की सबसे बडी त्रासदी यही हैं कि वह अपनी भूमिका स्वयं कभी तय नहीं करती। न परंपरा में न हीं आधुनिकता में। उसकी भूमिका हमेशा ही अपनी जरूरतों को ध्यान में रखकर ताकतवर पुरूष या व्यवस्था करती हैं।"5 हमारे भारतीय समाज मे स्त्री की भूमिका और निर्णयाधिकर कही न कही पुरुषों पर निर्भर होते थे। भारतीय स्वाधीनता आंदोलन का दौर हो या उसके पूर्व नवजागरण का या आज का भूमंडलीकरण , वैश्वीकरण, समाजीकरण का दौर सभी मे स्त्री जीवन का संघर्ष तथा स्थितियों में परिवर्तन कहीं पर भी दिखाई नहीं देता हैं। अंग्रेजों के आने से कुछ मात्रा में उनके जीवन शैली से चेतना प्रदान की पर वह ज्यादा दिनों तक टिक नहीं पाया। स्त्री को लेकर पुरुषों के नजरिये में ज्यादा बदलाव दिखाई नहीं देता। अपनी मनुष्यता की लडाई लडती स्त्री को बहुत कुछ हासिल करना था पर usme सफल न हो पायी।आजादी के सपने भी बेरंग साबित हुए। उसके गुलामी भरे जीवन में बदलाव तथा परिवर्तन होने के बजाय उसमें बढ़ोतरी हुई हैं।

हमारी भारतीय संस्कृति महान मानी जाती हैं परंतु हमारी भारतीय संस्कृति सही मायने में स्त्री कथा-व्यथा की रही हैं। स्त्री को करुण तथा सहनशील होने से उसका जीवन विवशता, पीड़ा तथा संघर्ष की चुंगल में फसा दिखाई देता हैं। पुरुषप्रधान संस्कृति हमेशा स्त्री पर हवी रही हैं।उसका शोषण करने में ही अपना पुरुषार्थ समझती हैं। 'छिन्नमस्ता' उपन्यास की नायिका प्रिया अपने घर की मर्यादाओं को तोडकर पढ-लिखकर तथा व्यापार कर पहचान बनाना चाहती हैं।उसकी यह मांग स्वाभाविक हैं परंतु उसपर वह सब कुछ गुजरता हैं जो एक आम भारतीय स्त्री के जीवन में गुजरता हैं। उसका पढा लिखा व्यवसायी पति उसके व्यापार करने के निर्णय और अपने व्यवसाय को अपनी पहचान का आधर बनाने के निर्णय पर संदेह, मजाक और ईर्ष्या करने लगता हैं, वह देखने योग्य हैं- " नरेन्द्र मैं व्यवसाय रुपये के लिए नहीं कर रही। हाँ चार साल पहले

जब मैंने पहले-पहले काम शुरू किया था, मुझे रुपयों की भी जरुरत थी। पर आज मेरा व्यवसाय मेरी आइडेंटिटी हैं। यह आए दिन की विदेशों की उडान....यह मेरी जिंदगी के कैनवास को बडी करती हैं। नित्य नये लोगों से मिलना-जुलना जीवन के कार्य जगत को समझाना मुझे जिंदगी उद्देश्यहीन नहीं लगती।"

" तुम यह क्यों नहीं कहती कि तुम्हें अकेले मौज करने की आदत पड गई हैं।"

" यह तुम क्या कह रहे हो, नरेंद्र।"

हाँ.हाँ. हाँ. मैं कह रहा हूँ और ठीक कह रहा हूं। तुम वहां क्या करती हो, क्या मैं कोई देखने जाता हूँ? और देखो प्रिया जिस दिन तुमने काम शुरू किया था, उसी दिन मैंने कह भी दिया था, काम करो पर यह मत भूलो कि तुम विवाहित हो, एक बच्चे की माँ हो अग्रवाल हाऊस की बहू हो।"

"दरसल तम्हें इतनी खुली छूट देने की गलती मेरी ही थी। मुझे पहले ही चिडिया के पंख काट डालने चाहिए थे। पर मैं तुम्हारी बातों में आ गया। तुम्हारे इस भोले चेहरे के पीछे एक मक्कार औरत का चेहरा हैं।"6 यहाँ पर एक बात स्पष्ट होती हैं कि प्रिया पुरुषों के क्षेत्र में अपने आप को आजमाकर अपना वर्चस्व स्थापित करना चाहती हैं।उसका यह निर्देश अन्य नारियों के लिए प्रेरणादायक और अनिवार्य भी हैं। दूसरी ओर उसके पति की संकीर्ण मानसिकता जो स्त्री विमर्श के लिए चुनौती बन चुकी हैं।किंतु महिला लेखिकाओं ने परंपराओं एवं रुढियों को तोड़कर अपने आप को साबित करने का तथा पुरूषों के कंधों से कंधा मिलकर काम करने का निर्णय काबिले तारीफ हैं।

समकालीन स्त्री लेखन और स्त्री विमर्श साहित्य में कामकाजी स्त्री और उसकी चुनौतियों पर गंभीरतापूर्ण तथा यथार्थवादी दृष्टि से चिंतन हुआ हैं। विभिन्न प्रकार की भूमिकाओं को सहजता से निभाती स्त्री में अब कोई कमी नहीं हैं। साहित्य, विज्ञान, अंतरिक्ष, खेल, युद्ध, खेती, व्यवसाय हर क्षेत्र में उसने अपने कर्तव्य तथा निष्ठा द्वारा पहचान बनायी हैं। स्त्री अपनी योग्यता एवं श्रम के बलबूते पर आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न बनना चाहती हैं और नारी कमजोर नहीं वह पुरुषों के काम करना जानती हैं। जो स्त्रियों ने अपने कार्य द्वारा सिद्ध कर दिया हैं।

स्त्री अपने संतुलित मानवीय विचारों से वर्चस्वहीन और समरस दुनिया की स्थापना करना चाहती हैं। आज वह आधी नहीं बल्कि पूरी दुनिया की जिम्मेदारी अपने कंधों पर उठाना चाह रही हैं। 'आवाँ' इस दृष्टि से एक महत्वपूर्ण उपन्यास हैं। कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं-

" आत्मनिर्भर होने की परिभाषा हैं स्वयं के बुद्धि विवेक का उपयोग न कि पुरुषों के समकक्ष आर्थिक सक्षमता।"7

"फिर मैं आत्मनिर्भर हूँ दीदी! अपनी बच्ची की परवरिश कर सकने में समर्थ। मेरा मातृत्व ब्याह के टुच्चे प्रमाण पत्र का मोहताज नहीं। असुविधा हैं तो मात्र इतनी भर कि मां स्वयं काम पर जाएगी या मेरी बच्ची की देखभाल करेगी?"8 उपर्युक्त पंक्तियों से हमें यह पता चलता हैं कि स्त्री आत्मनिर्भर बनाना चाहती हैं।किसी के ऊपर बोझ बनना नहीं चाहती हैं। एक आत्मनिर्भर व्यक्ति ही अपने आत्म को समझता हैं और अभिव्यक्ति भी कर सकता हैं।

मुझे चाँद चाहिए उपन्यास की वर्षा वशिष्ठ एक सजग आत्मनिर्भर स्त्री हैं। वह प्रेम में अपने अस्तित्व को मिटाने वाली सांस्कृतिक शिक्षा का प्रतिरोध करती हैं। प्रेम और पहचान दोनों को अपना भविष्य मानती हैं। हर्ष से वह बहुत चाहती हैं। प्रेम करती हैं पर वह उसके इशारों पर नाचना नहीं चाहती हैं।हर्ष और वर्षा की दोस्ती एवं प्रेम में बेबनाव की स्थिति निर्माण होती हैं।इसके अनेक कारण हैं किन्तु मुख्य कारण हैं पुरुष का अहं। हर्ष वर्षा को कामयाब होता देख नहीं पाता दूसरी ओर अपनी असफलताओं का कारण भी उसीपर थोप देता हैं।वह वर्षा पर लांछन लगाने लगता हैं।किंतु आत्मस्वभिमानी वर्षा अपनी बेगुनाही तथा हर्षा के आरोपो का जवाब भी देती हैं। हालांकि परंपराप्रिय पुरुषों का स्वभाविक गुण हैं कि वे औरतों को अपने नीचे देखना पसंद करते हैं।लेकिन वर्षा हर्ष के प्रश्नों का उत्तर देती हैं। वह उसके आत्मचेतस व्यक्तित्व और अपने निजी निस्वार्थ प्रेम का प्रमाण हैं- " यह तुमने अपना हिसाब बराबर किया?" हर्ष ने सामान्य स्वर में पूछा। (सिद्धार्थ निर्देशक के साथ वर्षा के संबधों पर मीडिया में हो रही चर्चा को सही मानकर) " तुम यही सोचते हो ?" वर्षा ने उसकी ओर देखा क्या सोचूँ? बताओ" हर्ष कुछ कहते कहते रुका। कुछ सोचा।

आखिरकार बोला, " मुझे तुमसे यह उम्मीद नहीं थी।"

वर्षा ने गहरी सांस ली। हर्षविहीन दिल्ली के भेदते क्षण याद आये।

अपनी स्थगित, निर्जीव जीवन शैली याद आयी।

" मैं इस दुनियां में तुम्हारी अपेक्षाएं पूरी करने के लिए नहीं।" उसने स्थिर स्वर में कहा।

हर्ष ने उसकी ओर देखा, जैसे नये सिर से पहचान रहा हो।

"काश मुझे पता होता.... कि तुम्हारी अपेक्षाएं मुझसे अलग भी जा सकती हैं।"

" काश मुझे भी पता होता..... वर्षा सूनी आँखों से सामने देखती रही, " तुमने क्या सोचा हैं।"9 यहां पर हमें पुरुषोचित अहंकार एवं संकीर्ण मानसिकता का परिचय मिलता हैं। ठीक ऐसी ही स्थिति वर्षा की दोस्त शिवानी के जीवन में उत्पन्न होती हैं। वह भी अपने ऊपर हो रहे अन्याय अत्यचार का विरोध कर करारा जवाब देना चाहती हैं।

मैत्री पुष्पा ने 'चाक' उपन्यास में स्त्री की अस्मिता को पूरी गहराई और मानवीय सवेंदनाओं के साथ रेखांकित किया है। सारंग इस उपन्यास की केंद्रीय पात्र हैं।पूरी कथावस्तु में आत्मसंघर्ष एवं सामाजिक संघर्ष को उजागर किया हैं। वह परंपरागत जीवन मूल्यों पर हमेशा विचार करते दिखाई देती हैं। कुप्रथाएं, रूढ़ी परंपरा, पुरुष प्रधान संस्कृति का वर्चस्व उसे पीड़ादायक लगता हैं वह उससे छुटकारा पाने के लिए छटपटाती हैं। खुली सास लेना चाहती हैं। परंतु पुरुषोंपर इसका कोई असर होता नहीं उनके जीवन में स्त्री का कोई महत्व नहीं हैं। वह केवल भोग की वस्तु बनकर रह गई। एक स्त्री की मौत का असर, दुख एवं खेद भी पुरुषों को नहीं होता। लेखिका लिखती हैं- " स्त्री की मौत मानो कोई बहुत बडी क्षति नहीं हैं।यह तो होता ही हैं। आखिर अधिक दिन स्त्री जीकर भी क्या करेगी?

"मैं जानती हूँ कि औरात के मरने का गम ज्यादा देर भी नहीं मनाते। उम्र भर तो कौन मनाएं....।"10 अपनी फुफेरी बहन रेशम की हत्या हो जाती हैं। उसका असर अपने घर परिवार और गाँव व समाज में चर्चाएं सुनती देखती । वह स्त्री जीवन और उसका समाज में क्या स्थान हैं उसका कडवा सच हैं।

उषा प्रियवंदा के 'पचपन खम्भें लाल दीवारे' उपन्यास में मध्यवर्गीय परिवार के बड़ी बेटी शुषमा के बिनब्याहे रह जाने की समस्या को बडी बखूबी ढंग से चित्रित किया हैं।सुषमा शिक्षित और कॉलेज में नौकरी करती हैं। उसी के ऊपर घर परिवार के भरण-पोषण की जिम्मेदारी हैं।उसके माँ-बाप भी यही चाहते हैं कि वह घर का सहारा बने। उनकी निगाहों में उसके बजाय उसके भाई बहनों का जीवन सवारना महत्वपूर्ण लगता हैं। ढलती जवानी में नील नामक युवक के साथ भावात्मक और फिर शारीरिक संबंध बनते हैं परंतु सुषमा जानती हैं कि दोनों के उम्र में काफी अंतर हैं, जो विवाह योग्य नहीं हैं। और समाज भी इस विवाह को स्वीकृति नहीं देगा। इसलिए नील से कहती हैं- " मेरी जिंदगी खत्म हो चुकी हैं। मैं केवल साधन हूँ। मेरी भावना का कोई स्थान नहीं। मैंने अपने को ऐसी जिंदगी के लिए ढाल लिया है। तुम चले जाओगे तो मैं फिर अपने को उन्हीं प्राचीरों में बंद कर लुंगी।" 11 इस प्रकार सुषमा अपने बाजय अपने भाई बहनों का भविष्य बनाना चाहती हैं। अगर देखा जाए तो स्त्री विमर्श के सामने चुनौती हैं। स्त्री दूसरों के बारे में सोचते-सोचते स्वयं जीना भुल जाती हैं। उसका जीवन नीरस बन जाता हैं। फिर भी उसे कोई शिकायत नहीं हैं। इस प्रकार की स्थितियों का सामना भावनात्मक दृष्टि से न करते हुए सजग होकर करना चाहिए। स्त्री विमर्श की लेखिकाओं ने इन्हीं समस्याओं को वाणी देने का महत्वपूर्ण कार्य किया हैं।

नासिरा शर्मा ने 'शाल्मली' उपन्यास शाल्मली नामक एक सर्वगुण संपन्न लडकी के आत्मसंघर्ष का चित्रण किया हैं। जिसकी शादी पढे-लिखे परन्तु संकीर्ण सोचवाले पुरुष नरेश से हो जाती हैं। और वह पूरी जिंदगी उसकी त्रासदी तथा पीड़ा को झेलती हैं। शाल्मली एक परिपूर्ण स्त्री थी।सुंदर, बुद्धिमान, सवेंदनशील, नैतिक मूल्यों के प्रति सचेत, कर्तव्यपरायण आदि गुणों से सम्पन्न हैं। शाल्मली के सामने नरेश टिक नहीं पाता हैं। वह शाल्मली के गुणों से

परिचित भी हैं और भयभीत भी हैं। उसे डर हैं कि कई वह उसे छोड़कर न जाए। लेकिन पारम्परिक पति की तरह उसे अपने पत्नी का वर्चस्व हजम नहीं होता। वह कभी शाल्मली के साथ समानता का व्यवहार नहीं करता बल्कि अपनी कमजोरी को छिपाने के लिए उग्रता को अपनाकर मनमानी करने लगता हैं। घर के अंदर और बाहर दोनों जगह वहीं शाल्मली की सीमाएं तय करने लगता हैं। शाल्मली कहती हैं- " जब औरते अनपढ़, अनपढ़ मिलती हैं, तो पुरुष उनसे कुढ़े-ऊबे बाहर की तरह भागते हैं और जब शिक्षित, चुस्त औरते पत्नी के रूप में मिल जाती हैं, तो उन्हें उनसे घबराहट का अहसास होता हैं और भयभीत होकर तीसरी किस्म की औरतो की तरफ भागता हैं। क्या वे स्वयं जानते हैं कि उन्हें कैसी औरते, कैसी पत्नियां चाहिए?"12

'माई' गीतांजलि श्री बहुचर्चित औपन्यासिक कृति हैं। इस रचना में लेखिका बडी गंभीरता एवं धर्य के साथ स्त्री जीवन की विडम्बना, सफलता एवं सार्थकता से जुडे सवालों का सामना करती हैं। उत्तर बार-बार भ्रामक और पीड़ादायक ही मिलता हैं। माई अपनी कैद की जिंदगी में खुश हैं और उससे मुक्ति भी नहीं चाहती हैं। पर सुबोध और सुनैना दोनो माई को परिवार के घुटन भरे माहौल से बाहर निकलना चाहते हैं। दोनों उसकी नियति से दुखी हैं। उसकी जिंदगी को कैद मानते हैं। अतः हर संभव कोशिश करते हैं कि माई आजाद हो सके और नई जिंदगी जी सके। उन्हीं के शब्दों में- " लेकिन हमें तो माई में आजाद इच्छाएँ भरनी थी।.....एक हमी थे जो उसे खोखला नहीं छोडना चाहते थे.... वह कमजोर हैं, कठपुतली हैं, हमारे सिवाय उसका कोई नहीं.... हम उसके लिए लडते हैं और वह पीछे हट जाती हैं।"13 इसप्रकार न जाने कितनी महिलाएं समाज में होगी जो अपना अस्तित्व भूलकर नरकमय यातनाएं भोग रहे हैं। लेखिका ने इस उपन्यास के माध्यम से यह बताने का प्रयास किया कि स्त्री का भी अपना जीवन होता हैं उसकी भी इच्छाएँ , सपने होते उसे भी पुरुषों की तरह जीवन जीने का अधिकार हैं।

निष्कर्ष:

नारी आदिकाल से पुरुषप्रधान संस्कृति से पीड़ित एवं शोषित रही हैं। पुरुषप्रधान समाज ने उसे मर्यादाओं तथा बंधनों में रखा। कभी घर की इज्ज़त तो कभी देवी समझकर चार दीवारों कर अंदर कैद रखा। उसे निर्णय के अधिकार से वंचित रखा। स्त्री जन्म से लेकर मृत्यु तक पुरुष के किसी-न-किसी रूप पर आश्रित रही हैं। उसे स्वतन्त्र नहीं था।उसका अस्तित्व नहीं के बराबर था।उसके जीवन में नैराश्य, उदासिनता फैली थी। इन्हीं परंपरागत पितृसत्तात्मक बेड़ियों को तोडने का काम स्त्री विमर्श ने किया हैं।स्त्री विमर्श ने पुरुष प्रधान तथा पितृसत्तात्मक संस्कृति में स्त्री चेतना जगाने का महत्वपूर्ण कार्य किया हैं। जिसमें स्त्री-पुरुष संबंध, पुरुष प्रधान संस्कृति में स्त्री की दुर्दशा को यथार्थ रूप से अंकित किया है। स्त्री विमर्श के साहित्य में विद्रोह का स्वर मुखरित होता हैं इसका मूल उद्देश्य हैं समतामूलक समाज की स्थापना करना। शिवाय नारी को भी पुरुषों की तरह जीवन जीने का अधिकार हैं। अब स्त्री खुलकर अपनी भावनाओं तथा इच्छाओं को व्यक्त करने लगी, निर्भय होकर अपने विचारों को अभिव्यक्त करने लगी, मनचाहे क्षेत्र में काम करने लगी, निर्भीकता से उसने यह सिद्ध कर दिया की वह कोई भी काम कर सकती हैं। अतः स्त्री विमर्श ने नारियों में नई शक्ति, उत्साह, चाहत और हिम्मत जुटाने का महत्वपूर्ण कार्य किया हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूचि

1) राजेश कुमार, नारीवाद विमर्श, पृ.76

2) मोहन कृष्ण बोहरा, तस्लीमा के हक में, पृ.100

3) आशारानी व्होरा, भारतीय नारी दशा और दिशा, पृ.16

4) मृणाल पांडे, स्त्री देह की राजनीति से देश की राजनीति तक, पृ.21

5) स्त्री, परंपरा और आधुनिकता (संपादित) राजकिशोर (लेख-मणिमाला) पृ.156

6) प्रभा खेतान, छिन्नमस्ता, पृ.11

7) चित्रा मुदगल, आवाँ, पृ.129

8) वही, पृ.111

9) सुरेन्द्र वर्मा, मुझे चाँद चाहिए, पृ.404

10) मैत्री पुष्पा, चाक, पृ.10

11) उषा प्रियवंदा, पचपन खम्भे लाल दीवारे, पृ.84

12) नासिरा शर्मा, शाल्मली, पृ.32

13) गीतांजलि श्री, माई, पृ.48-49

B.Aadhar' International Peer-Reviewed Indexed Research Journal

Impact Factor -(SJIF) –8.632, Issue NO, (CDXLVI) 451-A

ISSN : 2278-9308 December, 2023

स्वाधीनता संग्राम में हिंदी कविता की भूमिका

डॉ.सहदेव वर्षाराणी निवृत्तीराव

शोधालेख प्रस्तोता श्री विजयसिंह यादव महाविद्यालय, पेठवडगाव ता. हातकणंगले जि. कोल्हापुर

8806919900 Email- varsha.sahadev@gmail.com

आधुनिक हिन्दी कविता में राष्ट्रीयता की भावना तथा राष्ट्रीयता का स्वर प्रखरता से उद्घाटित हुआ है| भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन में भारतेंदु एवं द्ववेदी युगीन कवियों का योगदान सराहनीय रहा है| भारत के स्वतंत्रता संग्राम में हिन्दी कविता का बेहद महत्वपूर्ण स्थान रहा है| हिन्दी कविता ने देश की आम जनता को स्वतंत्रता संग्राम का हिस्सा बनने हेतु प्रेरित किया| भारतेंदु हरिश्चंद्र, महावीर प्रसाद द्विवेदी, मैथिलीशरण गुप्त, श्रीधर पाठक, माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा नवीन, सुभद्राकुमारी चौहान आदि कवियोंने अपनी तलवार रूपी कलम चलाकर देश के लोगों के मन में राष्ट्रपेम की भावना जागृत की| यह परंपरा भारतेंदु हरिश्चन्द्र से शुरू होकर आगे हिन्दी कविता में प्रभावी रूप से प्रवाहित हुई दिखाई देती है| इन कवियों ने स्वतंत्रता आन्दोलन को अपनी कविता का विषय बनाया| साथ ही राष्ट्रीयता की भावना को बढाकर युगीन समस्याओं के प्रति लोगों को सजग किया| स्वतंत्रता का मूल अर्थ भयमुक्त होना ही हो सकता है| जब तक मन भय मुक्त न हो स्वतंत्रता से साक्षात्कार हो नही सकता| स्वतंत्रता का दायरा बहुत बड़ा, व्यापक और विविध आयामी है क्योंकि समाजरचना के सम्पूर्ण आदर्श इसमें वैयक्तिक स्वतंत्रता के रूप में समाहित होते है| इस बात को स्वीकारते हुए हिन्दी कवियोंने हिन्दी कविता का विषय स्वतंत्रता को बनाया है|

मुख्य शब्द- राष्ट्रीयता, देशभक्ति, समर्पण के भाव आदि|

स्वतंत्रता आंदोलन भारतीय इतिहास का वह युग है जो पीड़ा, कड़वाहट, आत्मसम्मान, शौर्य, गौरव तथा सबसे अधिक शहीदों के लहू की समिधा है| स्वतंत्रता के इस महायज्ञ में समाज के प्रत्येक वर्ग ने अपने-अपने तरीके से बलिदान दिए| इस स्वतंत्रता के युग में हिंदी कवियों ने भी अपना मौलिक योगदान दिया है| अंग्रेजों को भगाने में इन साहित्यकारों ने अपनी भूमिका बखूबी निभाई है| क्रांतिकारियों से लेकर देश के आम लोगों तक के अंदर लेखकों, कवियों ने अपने शब्दों से जोश भरा| इन हिंदी कवियों ने अपनी कविता से लोगों में देश प्रेम की ऐसी भावना जगाई की लोग घरों से बाहर निकल आए और क्रांतिकारी आंदोलन का हिस्सा बने| भारत में स्वाधीनता का आंदोलन का इतिहास उतना ही पुराना है जितना की हमारी परतंत्रता का इतिहास| यह देश 1000 वर्ष से भी अधिक समय तक गुलाम रहा परंतु इसका सांस्कृतिक स्वरूप बना रहा| भारत की राष्ट्रीयता का आधार राजनीतिक एकता ना होकर सांस्कृतिक एकता रही है|

भारतेंदु हरिश्चंद्र ने जिस आधुनिक युग का प्रारंभ किया उसकी जड़ें स्वाधीनता आंदोलन में ही थी| भारतेंदु और भारतेंदु मंडल के साहित्यकारों ने युवा चेतना को गद्य और पद्य दोनों में अभिव्यक्ति दी| इसके साथ ही इन रचनाकारों ने स्वतंत्रता आंदोलन की प्रशंसा करते हुए भारत के स्वर्णिम अतीत में लोगों की आस्था जगाने का प्रयास किया| वहीं दूसरी ओर उन्होंने अंग्रेजों की शोषणकारी नीतियों का खुलकर विरोध किया| भारतेंदु हरिश्चंद्र ने स्वतंत्रता आंदोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई| अंग्रेजों द्वारा भारतीय जनता पर जुल्म का विरोध किया| उन्हें इस बात का मलाल था कि, अंग्रेज यहां से सारी संपत्ति लूट कर विदेश ले जा रहे थे; इस लूटपाट और भारत की बदहाली पर उन्होंने काफी लिखा 'अंधेर नगरी चौपट राजा' नामक काव्य के माध्यम से तत्कालीन राजाओं की निरंकुशता अभिव्यक्त कर दी और उनकी मूर्खता का सटीक वर्णन किया है| अपने युग की वस्तुस्थिति को समझते हुए, राष्ट्रीय जागरण की आवश्यकता महसूस करते हुए साहित्य को आम जनता के साथ उन्होंने कुशलतापूर्वक जोड़ा| अपनी भावनाओं को 'भारत दुर्दशा' नाटक में व्यक्त करते हुए उन्होंने लिखा-

"भीतर तत्व न झूठी तेजी|
क्यों सखि सज्जन नहिं अंगरेजी|"[१]

द्विवेदी युग के साहित्यकारों ने भी स्वतंत्रता संग्राम में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई| महावीर प्रसाद द्विवेदी, मैथिलीशरण गुप्त, श्रीधर पाठक, माखनलाल चतुर्वेदी आदि ने भी भारतीय स्वाधीनता हेतु अपनी तलवार रूपी कलम को और धारदार किया| इन कवियों ने आम जनता में राष्ट्रप्रेम की भावना जगाने तथा उन्हें स्वाधीनता

आंदोलन का हिस्सा बनने हेतु प्रेरित किया| भारतेंदु युग की तुलना में द्ववेदी युगीन हिन्दी कविता में राष्ट्रीयता का स्वर और अधिक तीव्र तथा प्रखर रहा है|देश की पूंजी के विनाश को रोकने की बात करते हुए द्ववेदी जी ने अपनी कविता में स्वदेशी का आग्रह और विदेशी वस्तुओं का विरोध किया है| वे लिखते है-

"विदेशी वस्त्र क्यों ले रहे है?
वृथा धन देश का क्यों दे रहे है?
न सूझे है अरे भारत भिकारी |
गई है हाथ तेरी वृद्धी मारी|
स्वदेशी वस्त्र को स्वीकार कीजै
विनय इतना हमारा मान लीजै|
शपथ करके विदेशी वस्त्र त्यागी
न जावो पास उससे दूर भागो|"[२]

मैथिलीशरण गुप्त राष्ट्रकवि कहलाए| माखनलाल चतुर्वेदी ने भी 'पुष्प की अभिलाषा' कविता लिखकर सैनिकों के प्रति सामान्य लोगों के मन में सम्मान का भाव जागृत किया| सुभद्रा कुमारी चौहान ने 'झांसी की रानी' कविता के माध्यम से स्वाधीनता आंदोलन को तेज करने में अद्वितीय भूमिका अदा की| मैथिलीशरण गुप्त ने भारतवासियों को स्वर्णिम अतीत की याद दिलाते हुए वर्तमान और भविष्य को सुधारने की बात की| यथा-

"हम क्या थे? क्या है? और होंगे?
अभी आओ विचारे मिलकर यह समस्याएं|
राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्तने 'भारत भारती' में लिखा-
"जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है
वह नर नहीं नर पशु नीरा है और मृतक समान है|"[३]

मैथिलीशरण गुप्त के अलावा सुभद्रा कुमारी चौहान की 'झांसी की रानी' कविता ने अंग्रेजों को लाल करने का काम किया| सुभद्रा कुमारी चौहान की 'झांसी की रानी' कविता को कौन भूल सकता है? जिसने अंग्रेजो की जड़ें हिला कर रख दी| वीर सैनिकों में देश प्रेम की भावना तथा जोश भरने वाली यह कविता आज भी प्रासंगिक है-

"सिंहासन हिल उठे, राजवंशों ने भृकुटी तानी थी,
बूढ़े भारत में भी आई फिर से नई जवानी थी,
गुमी हुई आज़ादी की कीमत सबने पहचानी थी,
दूर फिरंगी को करने की सबने मन में ठानी थी,
चमक उठी सन सत्तावन में वह तलवार पुरानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुंह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसी वाली रानी थी|"[३]

इसी प्रकार जयशंकर प्रसाद ने 'अरुण यह मधुमय देश हमारा' सुमित्रानंदन पंत ने 'ज्योति भूमि जय भारत देश', इकबाल ने 'सारे जहां से अच्छा हिंदुस्ता हमारा', तो बालकृष्ण शर्मा नवीन ने 'विप्लव गान' लिखा| इन सबके अलावा बंकिम चंद्र चटर्जी का देश प्रेम से ओतप्रोत गीत वंदे मातरम ने लोगों की रगों में उबाल ला दिया| अब किसी कीमत पर देश के लोगों को पराधीनता स्वीकार नहीं है|

'वंदे मातरम सुजलाम, सुफलाम, मलयज शीतलाम,
सस्य श्यामला मातरम वंदे मातरम...

देश प्रेम की भावना जगाने के लिए जय शंकर प्रसाद ने 'अरुण यह मधुमय देश हमारा', सुमित्रानंदन पंत ने 'ज्योति भूमि जय भारत देश', निराला ने 'भारती जय विजय करे स्वर्ग शिष्य कमल रे', कामता प्रसाद गुप्त ने 'प्राण क्या है देश के लिए', इकबाल ने सारे 'जहां से अच्छा हिंदुस्ता हमारा', तो बालकृष्ण शर्मा नवीन ने विप्लव गान में लिखा है-

'कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ, जिससे उथल-पुथल मच जाए
एक हिलोर इधर से आए एक ही लोग उधर को जाए|'

यह कहकर रणबांकुरे में नई चेतना का संचार किया| इसी श्रंखला में शिवमंगल सिंह सुमन, रामनरेश त्रिपाठी, रामधारी सिंह दिनकर, राधाचरण गोस्वामी, बद्रीनारायण चौधरी प्रेमघन, राधा कृष्ण दास, श्रीधर

पाठक, माधव प्रसाद शुक्ल, नाथूराम शर्मा शंकर, गया प्रसाद शुक्ल स्नेही, माखनलाल चतुर्वेदी, सियारामशरण गुप्त, अज्ञेय जैसे अगणित कवियों के साथ ही बंकिम चंद्र चटर्जी का देश प्रेम से ओतप्रोत वंदे मातरम गीत| देशभक्ति से ओतप्रोत एक अन्य रचना है जिसके जरिए माखनलाल चतुर्वेदी ने आजादी की बलिवेदी पर शहीद हुए वीर सपूतों के प्रति अगाध श्रद्धा दिखाई है| और बलिदानों को सर्वोपरि बताया है| एक फूल के माध्यम से उन्होंने अपनी बातों को जिस उत्कटता के साथ कहा है वह बेहद सराहनीय है|

"चाह नहीं मैं सुरबाला के
गहनों में गूंथा जाऊं|
चाह नहीं प्रेमी माला में
बिंध प्यारी को ललचाऊ|
चाह नहीं सम्राटों के शव,
पर, हे हरि डाला जाऊं|
चाह नहीं, देवों के सिर पर,
चढ़ूं भाग्य पर इठलाऊ|
मुझे तोड़ लेना वनमाली
उस पथ पर देना तुम फेंक
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने
जिस पथ जावें वीर अनेक|"[४]

इसप्रकार आजादी को हिन्दी कवियों ने अपनी कविता का विषय बनाया| इससे उन्होंने दुहरा दायित्व निभाया|एक तो राष्ट्रीयता को अपनी कविता का विषय बनाया और दूसरा युगीन समस्याओं के प्रति अधिक सावधान तथा संवेदनशील रहे| इस जंगे आजादी में अपनी रचनाओं के माध्यम से विशेष भूमिका निभाने वाले साहित्यकारों की एक लंबी फेहरिस्त है| जैसे- राधा कृष्ण दास, बद्रीनारायण चौधरी, प्रताप नारायण मिश्र, पंडित अंबिकादत्त व्यास, बाबू राम किशन वर्मा, ठाकुर जगमोहन सिंह, रामनरेश त्रिपाठी, सुभद्रा कुमारी चौहान, बालकृष्ण शर्मा नवीन जैसे रचनाकारों ने राष्ट्रीयता एवं देश प्रेम की ऐसी गंगा बहाई जिसके तीव्र वेग से जहां विदेशी हुक्मरानों की नीव हिलने लगी वही नौजवानों के अंतस्थ में अपनी पवित्र मातृभूमि के प्यार का जज्बा गहराता चला गया| एक और बंकिम चंद्र चटर्जी ने आनंद मठ में वंदे मातरम जैसी कालजई रचनाओं का सृजन किया तो कविवर जयशंकर प्रसाद की 'उठी हिमाद्रि तुंग श्रृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती, स्वयंप्रभा सम उज्जवला स्वतंत्रता पुकारती' जैसी कविता ने लोगों के मन में राष्ट्रप्रेम की अखंडित धारा प्रवाहित की| इन कवियों ने अपनी कविताओं में राष्ट्रीयता के द्वारा भारतीय लोकतान्त्रिक ढांचे और परम्परा को कायम करने का प्रयत्न किया| साथ ही देश के लोगों में प्रेम और एकता को बढ़ावा दिया है|

सन्दर्भ:-

१. भारत दुर्दशा- भारतेंदु हरिश्चन्द्र
२. द्ववेदी काव्य माला – स्वदेश वस्त्र का स्वीकार पृ. ३६८
३. भारत भारती – मैथिलीशरण गुप्त
४. झांसी की रानी – सुभद्राकुमारी चौहान
५. पुष्प की अभिलाषा – माखनलालचतुर्वेदी

B.Aadhar' International Peer-Reviewed Indexed Research Journal

Impact Factor -(SJIF) –8.632, Issue NO, (CDXLVI) 451-A

ISSN : 2278-9308 December, 2023

हिंदी आदिवासी विमर्श एवं चुनौतियाँ : एक परिचयात्मक अध्ययन

शेख अलीम हबीबसाब

शोधाछात्रा हिंदी विभाग दयानंद कला महाविद्यालय उदगीर

शोधसारः

भारत के आदिवासी वर्तमान में तीव्र संक्रमण से गुजर रहे हैं। आधुनिक समाज के सम्पर्क से पूर्णतया तो वे कभी वंचित नहीं रहे, लेकिन बाहर के लोगों से अधिक सम्पर्क भी नहीं रहा। आधुनिकीकरण की इस प्रक्रिया ने उन्हें आज एक मोड़ पर लाकर खड़ा कर दिया है। आवागमन एवं यातायात के साधनों के विकास ने आदिवासी क्षेत्रों में जनसंख्या के दबाव के परिणाम उनकी अर्थव्यवस्था को नष्ट कर दिया। जिससे उन्हें आधुनिक समाज की ओर आना पड़ा। जहाँ आदिवासी निवास करते थे, वहाँ खनिज पदार्थों का बाहुल्य था, जिस कारण से आधुनिक समाज के लोगों की आदिवासियों पीढा यातना देते हुए उनके जमीन पर कब्जा करने लगे। यही आदिवासीयों के जीवन की त्रासदी संघर्ष शुरू हो जाता है। और विमर्श का दौर शरू हो गया है। साहित्य में भी आदिवासी विमर्श को लिखा जाने लगा। और उनके जीवन शैली एवं उनकी अस्मिता पर चिंतन किया जा रहा है।

प्रास्तावना:

आज हिंदी साहित्य में अनेक विमर्शा के दौर पर चल रहा है। शुरू में स्त्री विमर्श, दलित विमर्श से शुरू होकर आज आदिवासी विमर्श, अल्पसंख्यक विमर्श, किन्नर विमर्श, किसान विमर्श, विकलांग विमर्श, बाल विमर्श, पर्यावरन विमर्श आदि तक आ गया है। आदिवासी शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है, आदि और वासी। आदि का अर्थ 'मूल' और 'वासी' का अर्थ 'निवासी' है। अतः आदिवासी से तात्पर्य धरती के मूल निवासी से हैं, जो घने जंगलों, ऊँचे पर्वतों और दुर्गम घाटियों में निवास करते है। आदिवासी उन्हें कहते हैं जो सभ्य जगत से दूर पर्वतों और जंगलों में दुर्गम स्थानों पर निवास करते हैं, समान जनजातीय बोली का प्रयोग करते हैं तथा अधिकांशतया माँस-भक्षी तथा अर्ध-नग्न अवस्था में रहते हैं। आदिवासी का शाब्दिक अर्थ है आदिकाल से देश में रहने वाली जाति। आदिवासी की विभिन्न विद्वानों ने भिन्न-भिन्न परिभाषाएँ दी हैं जो निम्न है- आदिवासी लेखक माया बोरसे के अनुसार] आदिवासी समाज ऐसा समाज है जिसके नाम में ही उसकी पहचान छिपी हुई है। आदिवासी शब्द के लिए 'मूलनिवासी' शब्द का भी प्रयोग किया जाता है अर्थात् आदिवासी समाज इस भूमि का मूल निवासी है और वही इस भूमि का उत्तराधिकारी भी है।"1 इन्होंने आदिवासियों को भारत का मूल निवासी माना है। इम्पीरियल गजेटियर के अनुसार, "एक आदिम जाति परिवारों का एक समूह है, जिसका एक सामान्य नाम होता है, जिसके सदस्य एक सामान्य भाषा बोलते हैं तथा एक सामान्य क्षेत्र में या तो वास्तव में रहते हैं या अपने को उसी क्षेत्र से सम्बन्धित मानते हैं तथा ये समूह अंतर्विवाही होते हैं।"2 इनके अनुसार एक जैसी पहचान रखने वाले आदिवासी कहलाते हैं।

आदिवासी विमर्श बीसवीं सदी के अंतिम दशकों में शुरु हुआ अस्मितामूलक विमर्श है। इसके केंद्र में आदिवासियों के जल जंगल जमीन और जीवन की चिंताएं हैं। ई.सन् 1991 के बाद भारत में शुरु हुए उदारीकरण और मुक्त व्यापार की व्यवस्थाओं ने आदिम काल से संचित आदिवासियों की संपदा के लूट का रास्ता भी खोल दिया। विशाल एवं अत्यंत शक्तिशाली बहुराष्ट्रीय एवं देशी कंपनियों ने आदिवासी समाज को उनके जल, जंगल और जमीनों से बेदखल कर दिया। इसने आदिवासी इलाकों में बड़े पैमाने पर विस्थापन को जन्म दिया। बड़ी संख्या में झारखंड, छत्तीसगढ़, दार्जिलिंग आदि इलाकों से लोग बड़े महानगरों जैसे दिल्ली, कोलकाता आदि में आने को विवश हुए। इन आदिवासी लोगों के पास न धन था, न ही आधुनिक शिक्षा थी। शहरों में ये दिहाड़ी मजदूर या घरेलु नौकर बनने को बाध्य हुए।

डॉ. रमणिका गुप्ता के अनुसार, "बिना जंगल, जमीन, अपनी भाषा, जीवन शैली, मूल्यों के बिना आदिवासी, आदिवासी नहीं रह सकता। आदिवासी इस देश का मूल निवासी है।"8 साधारणतः आदिवासी जनजाति अन्तर्विवाह सिध्दांत का समर्थन करती है और उसके सभी सदस्य अपनी ही जनजाति के अन्तर्गत विवाह करते हैं। कई गोत्र मिलाकर मिलकर आदिवासी जनजाति की रचना करते हैं। प्रत्येक गोत्र के सदस्यों का परस्पर रक्त-संबंध जुड़ा होता है। इनमें या तो अनेक लघु वर्ग एक वृहत् वर्ग में सम्मिलित हो जाते हैं, अन्य था उनका वंश परम्परागत सरदार होता है। इस तरह आदिवासी जनजाति को एक राजनीतिक संघ भी माना जाता है।"3

वर्तमान समय में साहित्य का अधिक सृजन हो रहा है। इसमें नारी, दलित और आदिवासी केंद्र में है। इस समय आदिवासी विमर्श प्रमुख मुद्दा बना हुआ है। आदिवासी विमर्श में आदिवासी महिला को भी केन्द्र में रखकर अनेक रचनाएँ लिखी गई है। इन रचनाओं के द्वारा इनका साहित्य में स्थान दिया गया है। और आज के वर्तमान दौर में आदिवासी कथा साहित्य समृध्द हो चुका है। साहित्यकारों ने विभिन्न दृष्टिकोणों से आदिवासी साहित्य लिखा है। इन लेखकों ने अपने कथा साहित्य में आदिवासी जीवन के अनेकानेक पक्षों, उनकी समस्याओं तथा परिणामों को संवेदनापूर्ण अभिव्यक्ति दी है। यह कथा साहित्य हिन्दी साहित्य में विशिष्ट स्थान पाने का अधिकारी है। इस प्रकार अपने अस्तित्व के लिए लड़ रहे, आदिवासी समाज के जीवन संघर्षों और उनकी चुनौतियों को स्वर देता आदिवासी साहित्य एक नये ढंग से इनके अपरिचित पहलुओं को उजागर कर रहा है।

आदिवासी जीवन केंद्रित हिंदी उपन्यासों में मुख्यतः आदिवासियों को मुख्य रूप से स्थान मिला है। जिसमें इन उपन्यासों के नाम लिये जा सकते हैं। रथ के पहिए (देवेन्द्र सत्यार्थी - 1952), कब तक पुकारूँ (रांगेय राघव-१1958), सूरज किरण की छाँव (राजेन्द्र अवस्थी-1958), जंगल के फूल (राजेन्द्र अवस्थी-1969), जंगल के आस-पास (राकेश वत्स-1985) शैलूष (शिवप्रसाद सिंह-1986), धार (संजीव-1990), गगन घटा घहरानी (मनमोहन पाठक-1991), पाँव तले की दूब (संजीव-1995), जहाँ बास फूलते हैं (श्री प्रकाश मिश्र-1997), अल्मा-कबूतरी (मैत्रेयी पुष्पा-2000), जंगल जहाँ शुरू होता है (संजीव-2000), सावधान! नीचे आग है (संजीव-2000), आदिभूमि (प्रतिभा राय-2002), काला पादरी (तेजिन्दर 2002), पठार पर कोहरा (राकेशकुमार सिंह-2003), रेत (भगवानदास मोरवाल-2008), धूणी तपे तीर (हरिराम मीणा - 2008), ग्लोबल गाँव के देवता (रणेन्द्र-2009), अरण्य में सूरज (श्रीमती अजित गुप्ता-2009), मरंगगोड़ा नीलकंठ हुआ (महुआ माजी-2012) आदि है।

समय के साथ आदिवासी लेखन आगे बढ़ रहा है। आदिवासी लेखक, कहानी, उपन्यास, व्यंग्य, नाटक आदि विधाओं में लिख रहा है। लेखक अपनी रचनाओं में देश की समस्याओं को उजागर कर रहे हैं। आदिवासी जीवन से जुड़े उपन्यासों व कहानियों का उद्देश्य इस गतिमान समय में जीते हुए आदिवासियों के समग्र पहलुओं को उद्घाटित करता है। रमणिका गुप्ता, मैत्रेयी पुष्पा, महाश्वेता देवी, वीणा सिन्हा, संजीव, पुन्नी सिंह, मधु कांकरिया, राकेश कुमार सिंह, एम. वीरप्पा मोयिलि, संजीव बख्शी, रणेन्द्र, लाकबाबू आदि के उपन्यासों व कहानियों में आदिवासियों को संघर्ष जीवन संघर्ष एवे उनकी अस्मिता को चित्रित किया गया है।

हिंदी आदिवासी साहित्य पर जब विचार करते हैं तो हमें विशेष रूप से इक्कीसवीं सदी के आदिवासी उपन्यास आकर्षित करते हैं। इसकी खास वजह है कि यह उपन्यास केवल आदिवासियों के सांस्कृतिक, प्राकृतिक जीवन को व्यक्त नहीं करते तो वैश्वीकरण, बाजारीकरण के युग में आदिवासियों के सामने आ रही नवनवीन समस्याओं को सामने रखते हैं और उनसे कैसे निपटा जा सकता है का सुझाव भी देते हैं।

आदिवासी समाज सहज भाव से प्राकृतिक-जीवन-पद्धति में जीता हुआ जंगलों में रहता रहा है। वह अपने आपको जितना सहज जंगलों और प्रकृति के साथ खुलेपन में महसूस करता है उतना शहर या नगरीय चकाचौंध में नहीं। आदिवासी समाज परिवर्तनशील समय के साथ साथ एक संक्रमणकालीन दौर से भी गुजर रहा है। अतः उसके जीवन के यथार्थ को पकड़ में लाने के लिए लेखन और चिंतन में स्थायित्व लाना होगा। वंदना टेटे जी इन आदिवासीयों की चिंता का व्यक्त करते हुए निम्नलिखित कविता की पंक्तियाँ को चिंता और गंभीरता से व्यक्त करती हैं।

"सच में
मैं चिंतित और उदास हूँ
कि नहीं जान पाएंगे मेरे बच्चे डोरी,
कुसुम से तेल निकालने की
मछली और चिड़िया पकड़ने की देसज तकनीक।
महुआ लट्ठा, इमली के बीज के साथ
औटाया गया खाने का स्वाद ।"4

वर्षों से हो रहे आदिवासियों पर अत्याचार की सच्ची दास्तान हिन्दी साहित्य में कविता, कहानी, उपन्यास आदि विधाओं में स्पष्ट रूप से देख सकते हैं। आदिवासी समाज के अस्मिता और संस्कृति पर प्रहार करना संभ्रांत वर्ग के लोगों का एकाधिकार बन गया है। पूँजीपतियों का आक्रामक चेहरा और सरकारी योजनाओं के नाम पर सरकार का वीभत्स चेहरा दिखाई देता है। आदिवासी समुदाय वर्षों से अस्मिता की लड़ाई लड़ते आ रहे हैं। 'काला पादरी' उपन्यास में जेम्स खाखा कहता है "आखिर एक-दो पीढ़ी पहल तो हमें अपने अस्तित्व का पता नहीं था ठीक से, और अब पता चल गया है तो कहते हैं कि भूल जाओ, तुम्हारा कुछ नहीं है, जो कुछ है प्रभु परमेश्वर का है और परमेश्वर का रास्ता मिशनरीज़ से होकर जाता है, माई फुट, मैं कहता हूँ, परमेश्वर का रास्ता हमारी हमारी छोटी-सी नदी ईब से होकर गुजरता है, हमारे पेड़ों और पहाड़ों से होकर जाता है, और तो और सोजेलिन मिंज की आँखों से होकर जाता है।"5

रणेन्द्र का 'ग्लोबल गाँव का देवता' एक महत्त्वपूर्ण एवं चर्चित उपन्यास है। वर्ष 2009 में प्रकाशित यह उपन्यास वस्तुतः आदिवासियों-वनवासियों के जीवन के सन्तप्त का सारांश है। उपन्यास के ब्लर्ब पर असुर समुदाय के जीवन के बारे में लिखा गया है- "शताब्दियों से संस्कृति और सभ्यता की पता नहीं किस छन्नी से छन कर अवशिष्ट के रूप में जीवित रहने वाले असुर समुदाय की गाथा पूरी प्रामाणिकता व संवेदनशीलता के साथ रणेन्द्र ने लिखी है। आग और धातु की खोज करने वाली, धातु पिघलाकर उसे आकार देने वाली कारीगर असुर जाति को सभ्यता, संस्कृति, मिथक और मनुष्यता सबने मारा है। 'ग्लोबल गाँव के देवता' असुर समुदाय के अनवरत जीवन संघर्ष का दस्तावेज है। हाशिए के मनुष्यों का सुख-दुख व्यक्त करता यह उपन्यास झारखण्ड की धरती से उपजी महत्त्वपूर्ण रचना है। असुरों की अपराजेय जिजीविषा और लोलुप-लुटेरी टोली की दुरभिसन्धियों का हृदयग्राही चित्रण।"6

रणेन्द्र का उपन्यास 'ग्लोबल गाँव के देवता' आदिवासी पुरुषों और स्त्रियों की पीड़ा और संघर्ष का मार्मिक आख्यान है। रणेन्द्र ने आदिवासी समाज के सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिदृश्य को परस्पर गूंथ-रचकर असुर समाज से जुड़े अस्तित्व व अस्मिता के प्रश्नों को ऐतिहासिक तथ्यों, मिथकीय वृत्तान्तों और समकालीन जीवन की घटनाओं के बीच से जिस विवेक एवं कौशल से उठाया है, वह असुरों के जीवन यथार्थ को समग्रता में देखने-समझने के साथ ही उनके बारे में प्रचलित एवं प्रचारित मिथकों के प्रभाव से मुक्त प्रमाणिक जीवन इतिहास को प्रस्तुत करता है।

ब्रह्मवीर सिंह जी का 'दंड का अरण्य' में उपन्यासकार ब्रह्मवीर सिंह की नक्सलवाद से उपजे दर्द को लेकर निष्पक्ष दृष्टि है। नक्सली और खाकी के बीच पिसती आदिवासियों की साँसों का लेखा-जोखा है और मौतों के बाद छलके आँसुओं को स्वर देनेवाली अभिव्यक्ति है। दंड का अरण्य सैकड़ों लोगों की हत्याओं के सौदागरों और गुनहगारों के चेहरे से नकाब उठाता है। बेबस लोगों की लाशों पर भावनाओं का कड़वा सच है। वैसे नक्सलवाद को लेकर लेखन बहुत हुआ है, बहुत हो रहा है। परंतु यह कृति निष्पक्षता का भरोसा दिलाती है। दंड का अरण्य किसी वाद का विरोध नहीं करता। किसी विवाद को जन्म नहीं देता। यह उपन्यास विचारों की हिंसा में टूटती साँसों की

दो-टूक अभिव्यक्ति है। आशा है, उपन्यास नक्सलवाद के रहते उपजी लोगों की बेबसी को नए नजरिए से पारिभाषित करेगा। विचारों के आवरण को हटाएगा और...सच न देखने के लिए मुँदी आँखों को खोल सकेगा।

आदिवासी साहित्य जनवादी साहित्य है। इसमें आदिवासी जीवन से संबंधित प्रत्येक विशेषताएँ, मान्यताएँ, लोककथाएँ, मिथक, लोकविश्वास, आदिवासियों की प्रकृति, आदिवासियों का अस्तित्व, आदिवासियों का अन्य मानवेतर प्राणियों के साथ सहअस्तित्व, सामूहिकता की भावना, आदिवासी संस्कृति, नृत्य, गीत, संगीत, आदिवासियों की समस्याएं, आदिवासियों की स्वतंत्रता, जल, जंगल तथा ज़मीन विषयक दृष्टिकोण, अपनी मातृभाषा के प्रति लगाव आदि आदिवासी के बुनियादी तत्त्व हैं जो दर्शन के अंतर्गत समाहित किये जा सकते हैं। इन तत्त्वों को जिस साहित्य में समाहित किया जाता है वह साहित्य आदिवासी साहित्य है।

आदिवासी साहित्य केवल आदिवासियों के प्रति सहानुभूति का साहित्य नही है यह तो आदिवासियों के जीवन संघर्ष से प्रेरित है। आदिवासी साहित्य में मूल स्वर विद्रोह का होता है परंतु इसके साथ ही आदिवासी जीवन की वेदना, संवेदना, आकांक्षा और संभावना को भी साहित्यकार अपने साहित्यिक कृति में अभिव्यक्त करता है। आदिवासी साहित्य से आदिवासी लोगों में चेतना जागृत हुई है।

आदिवासी अपने अधिकारों के प्रति सजग हुये हैं। आदिवासी साहित्य आदिवासी समाज के प्रति नवीन दृष्टिकोण विकसित करता है तथा आदिवासी संस्कृति को बचाए रखने में सहयोग देता है। यह आदिवासियों के समक्ष उपस्थित समस्याओं जैसे आर्थिक शोषण, विस्थापन, स्वास्थ्य, गैर आदिवासी समाज के हस्तक्षेप से उत्पन्न समस्या आदि से परिचय करवाता है। आदिवासी साहित्य अस्तित्व और अस्मिता की रक्षा के लिए प्रतिबद्ध साहित्य है। आदिवासी समाज अपने हितों व अस्तित्व के लिए लड़ाई वर्षों से लड़ता आ रहा है परंतु कोई विमर्श तभी विमर्श बनता है जब सभ्यता, संस्कृति, भाषा व क्षेत्र की अस्मिता की पहचान हाशिए पर चली जाए। आदिवासी विमर्श आदिवासी साहित्य के संदर्भ में आदिवासियों के अस्तित्व की रक्षा व जीवन जीने के अधिकार की पैरवी करता है। 'साहित्य समाज का दर्पण है' का प्रचार-प्रसार तो काफी हुआ लेकिन आदिवासी चिंतन के सन्दर्भ में इस सिद्धान्त की परिणति व्यावहारिक रूप में नहीं हुई। विवेचनात्मक रूप से आदिवासी समाज जितना उपेक्षित रहा उतना उनका साहित्यिक विमर्श भी। इसलिए आदिवासी साहित्य को आदिवासी समाज व संस्कृति के धरातल पर विकसित व परिमार्जित करने की आवश्यकता है।

निष्कर्ष:

आदिवासी साहित्य विविधताओं से भरा हुआ है। आदिवासी साहित्य की समृद्ध परंपरा का लाभ आदिवासी रचनाकारों को भी मिला है। आदिवासी साहित्य की उस तरह कोई केंद्रीय विधा नहीं है, जिस तरह स्त्री साहित्य और दलित साहित्य की आत्मकथात्मक लेखन है। कहानी, उपन्यास, नाटक, कविता, सभी प्रमुख विधाओं में आदिवासी और गैर-आदिवासी रचनाकारों ने आदिवासी जीवन समाज की प्रस्तुति की है।

आदिवासी लेखन में आत्मकथात्मक लेखन केन्द्रीय स्थान नहीं बना सका, क्योंकि स्वयं आदिवासी समाज 'आत्म' से अधिक समूह में विश्वास करता है। अधिकांश आदिवासी समुदायों में काफी बाद तक भी निजी और निजता की धारणाएं घर नहीं कर पाईं। परंपरा, संस्कृति, इतिहास से लेकर शोषण और उसका प्रतिरोध-सब कुछ सामूहिक है। समूह की बात आत्मकथा में नहीं, जनकविता में ज्यादा अच्छे से व्यक्त हो सकती है।

आदिवासी रचनाकारों ने आदिवासी अस्मिता और अस्तित्व के संघर्ष को अपना मुख्य हथियार बनाया है। भारत के आदिवासियों की समस्याएँ एवं चिंतन बहुत कठिन है और उनके रीति-रिवाज, रहन-सहन, सभ्यता, आचार-विचार, संस्कृति, धर्म ललित कला आदि में सुधार की जरुरत है। सभ्य समाज से सम्पर्क में आने के कारण उनके सामने अनेक समस्याएँ खड़ी हो गई है। बाहरी संस्कृति के सम्पर्क में आने के कारण वे अपनी संस्कृति का त्याग करते जा रहे हैं। विभिन्न संवैधानिक प्रावधानों तथा आरक्षण के बाद भी आदिवासी समाज का एक बड़ा भाग

सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़ा ही रह गया। अब ऐसे प्रयास किये जाने चाहिये जो जनसामान्य तक पहुँच सके, जिससे इनका विकास हो सके।

आदिवासी कलम की धार तेजी से अपने प्रभाव क्षेत्र का विस्तार कर रही है। आजादी से पहले आदिवासियों की मूल समस्याएं वनोपज पर प्रतिबंध, तरह-तरह के लगान, महाजनी शोषण, पुलिस-प्रशासन की ज्यादतियां आदि हैं, जबकि आजादी के बाद भारतीय सरकार द्वारा अपनाए गए विकास के गलत मॉडल ने आदिवासियों से उनके जल, जंगल और जमीन छीनकर उन्हें बेदखल कर दिया। विस्थापन उनके जीवन की मुख्य समस्या बन गई। इस प्रक्रिया में एक ओर उनकी सांस्कृतिक पहचान उनसे छूट रही है, दूसरी ओर उनके अस्तित्व की रक्षा का प्रश्न खड़ा हो गया है। अगर वे पहचान बचाते हैं तो अस्तित्व पर संकट खड़ा होता है और अगर अस्तित्व बचाते हैं तो सांस्कृतिक पहचान नष्ट होती है, इसलिए आज का आदिवासी विमर्श अस्तित्व और अस्मिता का विमर्श है।

संदर्भ:

1. सं. रमणिका गुप्ता, आदिवासी कौन, राधाकृष्ण, पृ. 27
2. डॉ. एस.के.सोनी, राजस्थान के आदिवासी, यूनिक ट्रेडर्स, पृ. 8
3. डॉ. हरिशचंद्र उप्रेती, भारतीय जनजातियाँः संरचना एवं विकास, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, पृ. 1
4. वंदना टेटे, कोनजोगा, प्यारा केरकेटटा फाउंडेशन, झारखंड, 2015, पृ. 12
5. तेजिंदर सिंह, काला पादरी, नेशनल पेपर बैक्स, नई दिल्ली, 2005, पृ. 44-45
6. रणेन्द्र, ग्लोबल गाँव के देवता, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2016, उपन्यास के ब्लर्ब से उद्धृत

दलित अस्मिता, अस्तित्व और संघर्ष का जिंदगीनामा: उजास"

प्रा. डॉ. मारोती भरतराव लुटे

हिंदी विभागप्रमुख प्रतिभा निकेतन महाविद्यालय, नांदेड

Email : lutemb2011@gmail.com

दलित साहित्य के नीव में दलितों की अस्मिता, स्वाभिमान, स्वतंत्रता, अस्तित्व और संघर्ष आदि का स्थायी रुप से हैं। इसे प्रत्यक्ष साकार करने के लिए डॉ. बाबासाहेब आंबेडकरजी ने शिक्षा, संघटन और संघर्ष की घोषण की है। दलितों का सदियों से वर्ण व्यवस्था के नाम पर शोषण हुआ है। उसे वाणी प्रदान करने का कार्य साहित्यकारों की लेखनी लगभग चालिस साल से कर रहीं है। फिर भी दलितों का शोषण वर्णभेद जातीभेद के नाम पर जारी हैं। २७ नवंम्बर २०२३ में महाराष्ट्र के रामटेक के प्रसिद्ध गड्मंदिर की शोभायात्रा को देखने गए दलित युवक की 'दलित होकर मंदिर क्यों आया?' कहकर सात-आठ युवकोंने पिटाई की, जिसमें दलित युवक की मृत्यु हो गयी। यह घटना यह साबित करती है की दलितों शोषण पूरी तरह से ख़त्म नहीं हुआ। हम कितना भी कहे कि भारतीय समाज जातिवाद की मानसिकता से बाहर निकल गया है। लेकिन संपूर्ण देश में दलितों पर अन्याय-अत्याचार की भयंकर वारदात होती हुई दिखाई देती है। देहात में रहनेवाला दलित समाज आज भी शोषण तथा राजनीती का शिकार बनकर शोषित, पीड़ित, उपेक्षित जीवन जी रहा है। कुछ अंश में नागरी क्षेत्र में क्रांतिपुरुष महात्मा फुले, राजर्षी शाहू महाराज और डॉ. बाबासाहब अंबेडकर के विचारों से प्रभावित होकर दलित समाज की वर्तमान पीढ़ी में जागृति और नव चेतना का उदय देखने को मिलता है। साथ ही उनमें अपने अस्तित्व और अस्मिता के प्रति अधिक सजगता दिखाई दे रहीं है। दलित समाज ग्रामीण जीवन में जातिव्यवस्था के बंधन और शोषण को नियति मानकर जी रहा था वह आज उसके विरुद्ध खड़ा हुआ है। उसी अस्मिता के लिए लड़ने वाले दलित समाज का जिंदगीनामा अधोरेखित करना शोधकर्ता का लक्ष्य है। प्रस्तुत शोध आलेख में सुप्रसिद्ध हिंदी साहित्यकार रत्नकुमार सांभरिया जी द्वारा लिखित नाटक 'उजास' का दलित समाज के अस्मिता को केन्द्र मे रखकर अनुशीलन किया गया है।

रत्नकुमार सांभरिया :-

21वीं सदी के समाज दृष्टा साहित्यकार के रूप में रत्नकुमार सांभरिया जी की पहचान है। उनका जन्म गांव बड़ावास जिला रेवाड़ी हरियाणा में हुआ। लेकिन पिछले 38 वर्षों से वे राजस्थान में रहते हैं। इनका बचपन अत्यंत गरीबी से बीता। घर पर छप्पर नहीं होती थी खाने के लिए घर में कभी रहता कभी नहीं। ऐसी स्थितियों में भी वह कभी निराश हताश नहीं रहे। अपनी शिक्षा जारी रखें। फुले-शाहू-आंबेडकर विचारधारा के प्रभाव से उन्हें ज्ञात हुआ था कि अपनी चरम उन्नति का शिक्षा एक ही मार्ग है। अपनी विषम परिस्थिति के संबंध में डॉ. संतोष कुमार सोनकर से हुए साक्षात्कार में रत्नकुमार सांभरिया जी स्वयं कहते हैं, "हम खूब अभाव में जीते रहे लेकिन विषमताओं से कभी समझौता नहीं किया मेरे मां-बाप दोनों ने मजदूरी की लेकिन मेरे हाथों में किताब रहने दी।"[01] रत्नकुमार सांभरिया जी ने शिक्षा के बल पर हरियाणा में रोडवेज में क्लर्क, राजस्थान के आदिवासी क्षेत्र में प्राइमरी स्कूल टीचर, लेखा ढकने लेखाकार, आकाशवाणी केंद्र जोधपुर एवं जयपुर में सिंधी अनुवादक तथा राजस्थान सूचना एवं जनसंपर्क में जनसंपर्क अधिकारी, उपनिदेशक आदि विभिन्न पदों पर कार्य किया। इतनी भागदौड़ की जिंदगी होने के बावजूद भी उन्होंने साहित्य सृजन का महान उत्तरदायित्व निभाया यह उनकी विशेषता रही। उजास नाटक उनके यही संघर्षशीलता की ही उपलब्धि है।

सांभरिया जी ने हाशियें के समाज की वेदनाओं अपनी कलम का विषय बनाया। यही कारण है की उनकी अधिकाधिक रचनाएँ दलित अस्मिता को लेकर लिखी है। उनके अनुसार दलितों, शोषितों एवंम वंचितों के सिर्फ अंधेरे पक्ष का यथार्थ चित्रण करना ही दलित साहित्य का लक्ष्य नहीं है। वह तो केवल जागृति का मार्ग है। उन्होंने हिंदी साहित्य को अधिक समृद्ध बनाने के लिए अपना मौलिक योगदान दिया है। उन्होंने 'हुकुम की दुखी', 'काल

तथा अन्य कहानियाँ', 'दलित समाज की कहानियाँ' और 'यमन का घोड़ा' आदि कहानी संग्रह एवं लोकप्रिय उपन्यास 'साँप' का सृजन किया। 'समाज की नाक' (एकांकी), भभुल्या, वीमा एवं उजास आदी नाटकों का सृजन किया। उन्होंने केवल कहानी,उपन्यास, नाटक का सृजन ही नहीं किया तो अंग्रेजी, मराठी, पंजाबी, हिंदी एवम् गुजराती आदी भाषाओं में अनुवाद का कार्य भी किया है। उनके इस मौलिक योगदान के लिए सन 2006 में उप-राष्ट्रपति द्वारा सम्मानित भी किया गया है। सन 2017 में हरियाणा साहित्य अकादमी द्वारा 'हरियाणा गौरव सन्मान 2017' से भी पुरस्कृत किया गया है। अम्बेडकर राइट मोमेंट ऑफ कल्चर एंड लिटरेचर नागपुर की ओर से मधुरम सभागृह नागपुर में 9 फरवरी 2020 को नाट्य कृति 'वीमा' के लिए राष्ट्रीय अश्वघोष पुरस्कार से भी किया सम्मानित किया है। सन 2023 में उनके 'साँप' उपन्यास को माता रमाई सामाजिक उत्थान संस्थानरेवाड़ी हरियाणा हिंदी पुस्तक प्रतियोगिता में प्रथम पुरस्कार से सन्मानित किया गया।

दलित अस्मिता और उजास :-

रत्नकुमार सांभरिया जी हिंदी साहित्य के क्षेत्र में कहानी, लघुकथा, एकांकी और नाटक के दलित समाज का वास्तविक चित्रण करनेवाले रचनाकार हैं। उनकी कलम का लक्ष्य केवल हंगामा खड़ा करना नहीं तो सूरत बदने का प्रयास है। दलितों, शोषितों एवंम वंचितों की यातनाओं का यथार्थ चित्रण करना ही दलित साहित्य का लक्ष्य नहीं है। उनके अनुसार, "साहित्य समाज का दर्पण है, 'जुमला दलित समाज की कसौटी नहीं है। दलितों के अंतरे कोने अंधेरा रहा है। अंधेरे में प्रत्येक वस्तु अंधेरे में तब्दील हो जाती है। दर्पण भी। 'साहित्य समाज का दर्पण है' की जगह 'साहित्य समाज का दीपक है' समीचीन जान पड़ता है। अभिनय नाटक में दर्पण का नहीं, दीपक का चेतना भाव निहित हो।"[02] यही चेतना का भाव उनके साहित्य के माध्यम से दलित अस्मिता को जाग्रत करने का उत्तरदायित्व निभाता है। जिसका एक अंश 'उजास' है। नाटक में रचनाकार ने बड़ी कुशलता के साथ दलित क्रांति चेतना को उजागर किया है। नाटक का नायक वह क्रांति की मशाल लेकर शोषण के खिलाफ डटकर खड़ा होता है। वह दलित समाज को झिनझोड़कर उनमें अस्मिता को जाग्रत करता है। परिणामत: अपना जन्म ही शोषण के लिए ही हुआ है ऐसा माननेवाला समाज अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करने के लिए तैयार होता हैं ।

'उजास' रंगमंच की दृष्टि से अत्यंत सरल दो अंक का नाटक है। जो प्रमुख छ: और अन्य दो-चार पात्रों द्वारा वाल्मीकि समाज अस्मिता, अस्तित्व और संघर्ष के जिंदगीनामा को मंच पर प्रस्तुत करता है। गांव के मंदिर में गांव की साफ सफाई और मैला उठानेवाले समाज को वर्षों से प्रवेश निषेध की प्रथा है। इस बात का गांववालों को बड़ा गर्व भी है। लेकिन इस बार इस निषिद्ध प्रथा को सत्ता प्राप्ति की सीडी बनाने की महत्वाकांक्षा शहर से गांव में आए पंडित रामानंद के शातिर दिमाग में निर्माण होती है। वे मेहतर समाज को मंदिर प्रवेश के लिए आंदोलन छेड़ने की तैयारी करते हैं। वे मेहतरानी संती और भोलू को अपनी महत्वकांक्षी मीठी बानी में फसाकर संघर्ष करने बात करते हैं। "हमें संघर्ष करना होगा, संती। संघर्ष! वैसा ही संघर्ष, जैसा बाबा साहब डॉ. अंबेडकर ने कालाराम मंदिर प्रवेश अधिकार के लिए किया था।"[03] रामानंद जानते हैं कि गांव का सरपंच बनना है तो वाल्मीकि समाज के वोटों की आवश्यकता है। क्योंकि गांव में सबसे अधिक वोट वाल्मीकि समाज के ही है। यही कारन है की वह अपनी राजनीतिक हवस को पूरा करने के लिये दलित समाज को उकसाता है। वह संती को समझाते हुए कहता है, 'छुआछुत भगवानी की नहीं तो आदमी की खुरापत है। सभी मानव जाती के लिए भगवान सामान है। जिस तरह हवा पानी सबके लिए सामान है वैसे ही भगवान भी। आज आदमी विज्ञान आधार पर चाँद पर जा रहा है और यहाँ आदमी की छाया से दूर भाग रहा है।' पंडित रामानंद संती को अपनी राजनीती की पहली चाल का मोहरा बनाकर दलितों के मंदिर प्रवेश की अभियान का बीज बो ता हैं। इस अमानवीय बेदभाव को जडोंसे मिटने के षड्यंत्र की आड़ में दलित बस्ती के लोगों को इकठा करने की जिम्मेदारी उसे देता है। संती और भोलू बस्ती के सभी लोगो को पंडित रामानंद भले आदमी होकर भेदभाव मिटाना चाहते है यह समझाते है। लेकिन प्रगतिशील विचारों का दलित युवक तथा नाटक का नायक कालिया इस षड्यंत्र को भलीभांति जनता है। वह दलित लोगो में अपने अस्मिता को जगाने का प्रयास करता है। वह कहता है, "यह स्वांग है। पंचायत के चुनाव आ रहे है। स्वार्थ की लीला रची जा रही है। यह लोग चुपड़ी चपड़ी बातें करके हमारा अमूल्य वोट ठग लेते हैं।...पंडित रामानंद हमारे वोटों पर सरपंच बनाने की मंसूबा पाले हुए हैं। गाँव में सबसे ज्यादा वोट दलितों के ही है। हम ठहरे वाल्मीकि। उनकी नज़रों में निपट मुरख। अज्ञानी। झाड़ू ,पंजा ,परात... ।"[04] कालियाने बस्तीवालों को समजने की पूरी कोशी की परन्तु वे नहीं मानते भगवान के दर्शन पाकर मोक्ष मिलने की बात उनके मस्तिष्क से नहीं जाती।

जातिभेद और अवसरवाद का पर्दाफाश :-

नाटक में वर्ण भेद और जाति भेद का पर्दाफाश किया है। कालिया वाल्मीकि समाज के लोगो को समझाता है। पंडित रमनद की मिट्टी-मिट्टी बाते उनका एक दोगलापन है। यह जातिवादी है, यानी लोग अवसरवादी है। जरुरत पड़ने पर आकर चरणों में गिरजाते है। जरुरत पूरी होने पर परछाई से भी दूर भागते हैं। ईस के पहले भी विद्यमान सरपंच शेरसिंह जैसे स्वार्थी नेता ने वाल्मीकि समाज को कुओं पर चढ़वाने का अभियान चलाकर गांव के सवर्णों से पिटवा दिया। ठीक उसी प्रकार की चाल पंडित रामानंद भी चलाना चाहते हैं। वे डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर के स्वातंत्र्य, समता, बंधुता के विचारों का समर्थन कर मनु और मनुस्मृति को मानने वालों का धिक्कार करते हैं। "हाँ तो भाइयों, मुझे रोना आता है, गांव की कम अकली पर। आदमी के वक्त की कुरीति पर। मनुस्मृति की रीति-नीति पर। सुनो-सुनो यह मनुस्मृति ही छुआछूत और जातिभेद की जननी है। हमारे बाबासाहब ने मनुस्मृति का दहन किया था।"[05] पंडित रामानंद बस्ती के लोगों के सामने बाबासाहब का नाम लेकर उन्हें आपने वश में करने की कोशिश करते है। जीमे सभी भोले भले लोग उसकी चपेट ममें आकर पंडित जी की जय जयकार करते है। पंडित रामानंद, सुनाराम और रामबिहारी एकता, समानता, मंदिर –प्रवेश, कंधेसे कंधा मिलाकर चलने की बाते तो करते है परंतु उनके लिए लाया पानी के ग्लास को छूते तक नहीं।

रामानंद अपनी अध्यक्षता में सुनाराम और रामबिहारी को साथ लेकर मंदिर प्रवेश आंदोलन समिति गठित करते हैं। मंदिर में चढ़ावा चढ़ाने के लिए वाल्मीकि लोगों से बड़ी मात्रा में चंदा इकट्ठा किया जाता है। महिला अपने गहने तक चढ़ावे के लिए देती है। मेहतरों से इकट्ठा किया हुआ चंदा और गहने रामानंद, रामबिहारी और सुनाराम आपस में ही डकार कर वाल्मीकियों धोखा देते हैं। सारे वाल्मीकि रामानंद के नेतृत्व में मंदिर की सीढ़ियां चढ़ने लगते हैं तब सुनाराम और रामबिहारी अपना पक्ष बदलकर मंदिर बचाव समिति के साथ वाल्मीकि लोगों के विरोध में खड़े हो जाते हैं। रामानंद और वाल्मीकि जय भीम के नारे लगाते हैं। साथ ही रामानंद जय श्रीराम...जय श्रीराम... के नारे लगाते हैं। लेकिन निहत्य दलितों को चारों ओर से घेरकर लाठियाँ और डंड़े से पीटने लगते हैं। चारों तरफ हाहाकार मच जाता है। मंदिर परिसर खून से रंग जाता है। भोलू और संती के साथ दलित बस्ती के लोग घायल हो जाते हैं। और दलितों के संरक्षक, मसीहा बने रामानंद उन्हें मझधार में मार खाता हुआ छोड़कर मंदिर के पुजारी अपने भाई सेवानंद के साथ सबकी नजर बचाकर भाग जाते हैं। नाटककार ने प्रस्तुत दृश्य के माध्यम से सवर्ण राजनेताओं की अवसरवाद का पर्दा फाश किया हैं।

अस्तित्व का एहसास और मुक्ति का संकल्प :-

मंदिर प्रवेश की घटना के पश्चात पंडित रामानंद, सेवानंद, सुनाराम, रासबिहारी और शेरशिंह की दलित मतों के लिए कूट निति और दलितों के प्रति विषाक्त बाते सुनकर कालिया बस्ती के लोगों के मन में अपने अस्तित्व को जगाने का प्रयास करता है। वह कहता भी है की मैंने उनकी सभी बाते सुन ली है। वे लोग हमारे अस्तित्व स्वीकार नहीं करते। कलिया अपने बात को समझाते हुए कहता है, "हम छोटी जात है। वे कहते है झाड़ू लगाने वालों, जूठन खानेवाले दारू पीकर हुड़दंग करने वालों में ज़मीर नहीं हुआ करता।"[06] कालिया की बाते सुनकर वाल्मीकि बस्ती के लोगों का जमीर जग जता हैं। उन्हें अपने अस्तित्व का एहसास होता है। सभी लोग नरक बने जिंदगी से मुक्ति चाहते हैं। कालिया भी यही चाहता है वे जनता ही की सिर पर मैला ढोना गैर क़ानूनी है। वह लोगों को गदगी से मुक्ति का संकल्प चाहता है। कालिया कहता है, "संकल्प स्वयं विकल्प की रह बन जाता है।...जिन लोगों ने अपने गंदे पैतृक धंधो से छुटकारा पाया, कोई भूखा मरा उनमें? नहीं!गंदा धंधा छोड़ते ही उन्होंने शिक्षित बनो के सिदधांत को अपनाया।"[07] कालिया गंदगी ढोनेवाले लोगो को डॉ. भीमराव आम्बेडकर के वचनों की याद दिलाकर संकल्प करने का आव्हान करता है। सभी लोग गन्दगी साफ करने का सभी सामान झाड़ू, लोहे के पंजे, परात आदि को जला देते है। यह होली सदृश दृश देखकर सवर्ण गाववाले हैरान हो जाते है। उनके सामने प्रशा है की अब गाव-बस्ती, मंदिर का परिसर साफ कोन करेगा? जिसका जवाब संती कहती है जो गंदगी फैलाएगा वही साफ करेगा। नाटककार ने सामान्य पात्रों के द्वारा क्रांति की मशाल पेश करने ककरी किया है जो रंगमंच की दृष्टि से नाटक का चरम उत्कर्ष है।

निष्कर्ष :-

संक्षेप में रत्नकुमार सांभरिया का नाटक 'उजास' में दलित अस्मिता,अस्तित्व और संघर्ष का जिंदगीनामा है। वाल्मीकि समाज के पीड़ित, शोषित, वंचित लोग आज भी शोषण के शिकार बने हुए है। वे भी पढ़-लिखकर मान-सम्मान प्राप्त करना चाहते है। शिक्षा, महापुरुषों के विचारों का प्रभाव गाँव में रहकर भी क्रांति की साहस

उन में भर देता है। रत्नकुमार सांभरिया जी ने नाटक में जमीन के संघर्ष को दिखाया वह चरम उत्कर्ष है। नाटक का कथा-शिल्प निश्चित रूप से वाल्मीकि समाज के संघर्ष, साहस, शक्ति, पीड़ा आदि के साथ ही उनकी एकता की शक्ति को भी चित्रित करने में सशक्त है। रंगमंच की दृष्टि से दलित चेतना को उद्घाटित करनेवाला यह अत्यंत सशक्त नाटक है। दलितों के हाथ में चमड़ा, मरे हुए जानवर, झाड़ू, पंजा और परात की जगह कलम और किताब का दिखाई देना नाटककार की सकारात्मक भूमिका को दर्शाता है।

संदर्भ संकेत :-

1) समाजदृष्टा साहित्यकार: रत्नकुमार सांभरिया, सं. डॉ. विवेक शंकर,डॉ. अनिता वर्मा,दृष्टि प्रकाशन, जयपुर 2020, पृष्ठ 269
2) वीमा, भभूल्या, उजास तीन नाटक, रत्नकुमार सांभरिया, श्री नटराज प्रकाशन, दिल्ली, 2020, पृष्ठ-07
3) वही, पृष्ठ-169
4) वही, पृष्ठ-170
5) वही, पृष्ठ-174
6) वही, पृष्ठ-195
7) वही, पृष्ठ-195

B.Aadhar' International Peer-Reviewed Indexed Research Journal

Impact Factor -(SJIF) –8.632, Issue NO, (CDXLVI) 451-A

ISSN : 2278-9308 December, 2023

हिंदी भाषा चिंतन और उसकी चुनौतियाँ

डॉ. वर्षा मोरे – पावडे

पीपल्स कॉलेज, नांदेड

वर्तमान में हिंदी भाषा की स्थिति और परिस्थिति पर अगर गौर किया जाए तो हिंदी की स्थिति उतनी ही बिकट नहीं है, जितना हम समझ रहे हैं | यहाँ सिर्फ हिंदी के प्रति लोगों का नजरियाँ बदलना पड़ेगा | जिसके लिए जन-जाग्रति करनी होगी, हिंदी को मान-सम्मान देना होगा | जो हमारा अन्य भाषा की तुलना में प्रथम कर्तव्य है | हिंदी भाषा को हर कोई बोलता है, समझता है और उसे पढ़ना-लिखना भी चाहता है | आप कहेंगे आज अंग्रेजी के इस दौर में कहाँ ऐसा देखने को मिलेगा? आप थोडा बाहरी देशों के बारे में सोचिए, सोशल मिडिया का अध्ययन कीजिए, प्रसार-माध्यमों का अध्ययन कीजिए हिंदी की अच्छी स्थिति दिखाई देगी | हाँ ! हमें यह भी मानना होगा की हम ही हिंदुस्थानी लोग हिंदी के विकास में सबसे बड़ी बाधा बन रहे हैं | कुछ सीमित क्षेत्रों में हिंदी को कम समझा जाता है | विश्व में सबसे प्रसिध्द भाषाओं के साथ जैसे – चीनी, अग्रेंजी, फ्रेंच, जापनीज भाषा के साथ अगर हिंदी की तुलना की जाए तो हिंदी आज भी 'तीसरे नंबर' पर सबसे ज्यादा बोली जानी वाली भाषा में आती है | वह दिन-ब-दिन लोकप्रिय होती जा रही है | अंग्रेजी भाषा के अनेक शब्द हिंदी में प्रयोग किये जा रहे हैं | जिससे हिंदी का रूप थोडा बदल रहा है | यह उसकी लवचिकता के कारण संभव हो रहा है | वह आसानी से किसी भी भाषा का शब्द ग्रहण करके अपना लेती है | आप उसे विशुद्ध हिंदी नहीं बोल सकते | वह आज की इस आधुनिकता के दौर में 'मॉडर्न और स्टैंडर्ड' होती जा रहे हैं | "विदेश में विदेशी भाषा के रूप में हिंदी शिक्षण बहुत लोकप्रिय होता जा रहा है | यूरोपियन देशों जैसे अमेरिका, कनाडा, इंग्लैण्ड, पोलैंड, बुल्गारिया, समेत 40 देश और लगभग 160 विश्वविद्यालय है जहाँ हिंदी एक विषय के रूप में पढ़ाई जाती है, क्योंकि विदेशों में आज इसे व्यवसाय की भाषा के रूप में मान्यता प्राप्त हो गई है |"[१] लोगों का उसे ग्रहण करना ही सबसे बड़ी उसकी उपलब्धि है | जरा सोचिए जिस हिंदी भाषा में फ्रेंच, चीनी, संस्कृत, मराठी आदि भाषा से आये हुए शब्द स्वीकारे जा सकते हैं, तो फिर अंग्रेजी भाषा से आये हुए शब्द भी स्वीकारने होंगे | जरा सोचिये, हम चाहकर भी शुध्द रूप हिंदी का बोल पाते हैं क्या? अगर बोलना भी चाहों तो वह जैसे पकडकर बोलने जैसा लगेगा | जैसे – देवताओं के सीरियल में सिर्फ संस्कृतनिष्ठ हिंदी का प्रयोग होता हैं | अंग्रेजी शब्द उसमें नहीं आते | वैसे हम रोज की भाषा में बोलने में असमर्थ हैं | ऐसी हिंदी बोलना गलत नहीं है | लेकिन आधुनिकता के इस दौर में किसके पास इतनी फुरसत हैं? पंडित गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही' जी ने अपनी 'त्रिशूल' नामक कविता में लिखा हैं, "काम अपना करूं की हिंदी देखूँ की उर्दू देखूँ"[२] अर्थात आज लोग अपना-अपना काम देखना पसंद कर रहे हैं | उन्हें हिंदी और अंग्रेजी में से कौन अपनी और कौन पराई ये देखने के लिए उनके पास समय नहीं है |

जब भाषा बोलने में कठिनाई हो तो उस भाषा का डर लगने लगता है | हिंदी डरानेवाली भाषा नहीं है | उसे आसानी से कोई भी बोल सकता हैं और ग्रहण भी कर सकता हैं | यही कारण है की हिंदी भाषा को अनपढ़ से अनपढ़ व्यक्ति भी बोल सकता है | हिंदी के विकास में आज सोशल मीडिया, तंत्रज्ञान, फिल्मी दुनिया, सामाजिक क्षेत्रों में अंग्रेजी के साथ-साथ हिंदी का प्रयोग हमेशा होता हैं | इन्हीं क्षेत्रों के कारण हिंदी का सबसे बड़ा विकास हुआ हैं | हाँ यह मानना होगा की हिंदी भाषा के सामने कुछ चुनौतियाँ हैं जो स्थानीय भाषाओं के सामने भी हो सकती हैं | अगर हमें अपने देश, राष्ट्र एवं मातृभूमि से प्रेम है, तो हमें हमारी निजी भाषा से प्रेम करना ही पड़ेगा | जिसके लिए भाषा के विकास में बढ़ोत्तरी करना और कुछ चुनौतियों का सामना करते हुए उस पर उपाय-योजनाएं भी बनानी पड़ेगी |

चुनौतियाँ :

हिंदी भाषा के सामने-आनेवाली चुनौतियों का अध्ययन हम निम्न प्रकार से कर सकते हैं | **१) मातृभाषा को हीन समझना :** आज अपनी मातृभाषा को हम हीन समझकर अंग्रेजी की ओर बढ़ रहे हैं | विदेशी भाषाओं को जितना मान-सम्मान दिया जाता है | वह अपनी ही भाषा में बात करनेवालों को नहीं मिलता | इसके लिए हमें मातृभाषा का सम्मान करना चाहिए | उसी भाषा में शिक्षा-दीक्षा होनी चाहिए | अपनी मातृभाषा को छोड़कर अंग्रेजी भाषा का उपयोग परिवार के साथ करना हिंदी के लिए नुकसानदायक है | **२) अंग्रेजी भाषा का मोह :** आज

गाँव-गाँव घर में अंग्रेजी भाषा का बोलबाला है | अंग्रेजी स्कूलों का बढ़ता प्रभाव देखने को मिलता है | जैसे अंग्रेजी भाषा से ही बुध्दि की गणना हो रही हो | जो अंग्रेजी बोलता है, वही सबसे ज्यादा हुशार समझा जाता | हर कोई अंग्रेजी भाषा की तरफ आकर्षित हो रहा हैं | इस मोह को समाप्त करने के लिए हमें पहले हमारी हिंदी भाषा में शिक्षा का स्तर अच्छा और उच्चतम करना चाहिए | विदेशी संस्कृति के प्रति मोह, आकर्षण के चलते सभी लोग अंग्रेजी बोलकर हुशार बनना चाहते हैं | सबसे बड़ी बात इस अर्जित भाषा को वो शिक्षा तक सीमित नहीं रखते बल्कि घरों-घरों में यह भाषा बोली जा रही है | यह सबसे बड़ा धोखा हिंदी के लिए हो सकता है | **३) आत्मविश्वास की कमी :** हिंदी भाषा सीखकर, बोलकर भी हम अपने जीवन में कामयाब हो सकते हैं | यह विश्वास हमारे भीतर नहीं हैं | हिंदी भाषा में भी हम अपना करियर कर सकते है | इस भाषा को भी अपना रोजगार का माध्यम बना सकते है | यह विश्वास हमारे भीतर निर्माण होना चाहिए | इसके लिए शासन स्तर भी कुछ कार्य होने चाहिए | ताकि हिंदी भाषा में शिक्षा ग्रहण करनेवाला व्यक्ति आगे चलकर बेरोजगार न रहे | **४) हिंदी का कार्यभाषा न बन पाना :** देश में कार्यभाषा के रूप में कुछ जगहों अंग्रेजी भाषा का उपयोग होता है | पूरी तरह से हिंदी ही हमारी कार्यभाषा नहीं बन पायी है | अमर उजाला में पत्रकार राहुल देव लिखते है कि, "15 वर्षों के प्रयासों के बाद भी हिंदी 15% भारतीयों की कार्यभाषा बन सकी |"[३] अर्थात हम समझ सकते हैं | हिंदी भाषा की अनिवार्यता जरूरी हैं | ५) हिंदी की अनिवार्यता न होना : कोई भी क्षेत्र हो उसमें हिंदी भाषा की अनिवार्यता होनी चाहिए | इससे हिंदी भाषा शिक्षा होगी, कार्य होगा जिससे हिंदी भाषा अपने-आप विकास के राह पर चलती रहेगी | आज स्कूलों में अंग्रेजी भाषा की अनिवार्यता हो गई है | हिंदी माध्यम में बच्चें नहीं पा रहे हैं | अंग्रेजी विषय भी अनिवार्य होता लेकिन हिंदी भाषा ऐच्छिक रखी जाती है | जिसके चलते अंग्रेजी भाषा का बढ़ता प्रभाव और हिंदी के प्रति नाराजगी हमें देखने को मिलती है | **६) अन्य क्षेत्र :** राजनैतिक क्षेत्र में भी हिंदी भाषा का प्रयोग अनिवार्य नहीं है | हिंदी भाषा के पर्याय रूप में अंग्रेजी विद्यमान है | सरकारी काम काज में हिंदी भाषा को अनिवार्य करना होगा | राज नेता, सांसद सदस्य आदि लोगों के लिए हिंदी भाषा की अनिवार्यता होनी चाहिए | शिक्षा क्षेत्र हो या सामाजिक क्षेत्र हो सभी में हिंदी भाषा को कम समजना बंद करना होगा | सभी ने कहीं भी अपनी भाषा में बात करनी चाहिए | इन कुछ बातों का ध्यान हम एक हिंदी प्रेमी होने के नाते अगर करेंगे तो हिंदी भाषा के विकास को कोई भी रोक नहीं सकता | आज वर्तमान में बाहरी देशों में हिंदी भाषा को बोलनेवाला बहुत ज्यादा वर्ग मिलता हैं | उनको और आकर्षित करने के लिए हमें हिंदी भाषा का प्रचार-प्रसार करना चाहिए |

अंत में, हिंदी भाषा का उज्ज्वल भविष्य है | उसे सिर्फ थोडा आगे बढाने की आवश्यकता है | भाषा कोई भी बुरी नहीं होती | उसको हम किस नजर से देखते हैं, उसका उपयोग हम किस तरह से करते है, उस पर भाषा की उन्नति निर्धारित होती है | इस लिए भारतेंदु जी ने कहाँ था, "निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल | बिन निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय के शूल |"[४] अर्थात हमे अपनी भाषा की उन्नति स्वयं करनी होगी | हिंदी सिर्फ भाषा नहीं है, हमारी संस्कृति, हमारा मान-शान और देश की जान है |

संदर्भ सूची :

१. राष्ट्रीय शिक्षा नीति और रोजगार की संभावनाएँ, सं. डॉ. सुनील जाधव व डॉ. ज्योति मुंगल, पृ. 53
२. हिंदी के सामने नई चुनौतियाँ, नामवर सिंह – www.hindibhawan.com
३. www.Amarujala.com., 12/12/2023
४. राष्ट्रीय शिक्षा नीति और रोजगार की संभावनाएँ, सं. डॉ. सुनील जाधव व डॉ. ज्योति मुंगल, पृ. 9

प्रेमचंद जी के साहित्य का चिंतन एवं चुनौतियां

डॉ. रेविता बलभीम कावले

बहिर्जी स्मारक महाविद्यालय, बसमत जि. हिंगोली मो. नं. 80 0792 6291

साहित्य समाज का दर्पण ही नहीं बल्कि पथ दर्शक भी है। बावजूद भी प्रत्येक कालखंड में साहित्य के माध्यम से समाज का चिंतन करते समय साहित्य को एवं साहित्यकारों को विभिन्न चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। अनेक चुनौतियों से गुजरना पड़ता है। साहित्यिक चिंतन के माध्यम से एक नयापन सामने आता है। नवीनता की पहचान होती है। स्थापित मूल्य एवं धारणाएं अथवा नैतिकता जब अक्षम होने लगती हैं तब साहित्यिक चिंतन आवश्यकता होता है। भले ही फिर कितनी ही चुनौतियां क्यों ना आए साहित्यकार उन चुनौतियों को स्वीकारते हुए अपने समय की नई परिभाषाएं करने का प्रयास करते हैं। समय की यथार्थ स्थिति को समाज के सामने रखकर वास्तविकता का दर्शन कराते हैं। साहित्य में एक समय में अनेक प्रकार की प्रवृत्तियां जन्म लेती हैं। साहित्यकार भी समय के अवधान को समझते हैं। समय की धड़कन को जानते हैं। विभिन्न चिजों को आत्मसात करते हैं। विभिन्नता का अनुभव करते हैं। यही आगे चलकर किसी न किसी साहित्यिक विधा के रूप में सामने आकर समाज को एक नई दिशा देने का मौलिक कार्य करते हैं। समय के अनुसार ही साहित्यकार भी आगे बढ़ते जाते हैं। मानव भी समय के अनुसार आगे चलता रहता है। मनुष्य के जैसी ही साहित्यकार और साहित्य दोनों के सामने अनेक प्रकार की विभिन्न चुनौतियां हैं। जो साहित्यकार उसको स्वीकारते भी हैं और उसका समाधान भी ढूंढने का प्रयास करते हैं। ऐसी स्थिति में किसी न किसी माध्यम से साहित्य का चिंतन होना बेहद आवश्यक है। कुछ साहित्यकार अपने जीविकोपार्जन के लिए लिखते हैं। तो कुछ साहित्यकार अपनी आत्मानुभूति की अभिव्यक्ति के सुकून के लिए लिखते हैं। लिखना कैसा भी हो लेकिन साहित्य की चुनौतियों से उनको गुजरना ही पड़ता हैं। साहित्य अकादमी पुरस्कार से पुरस्कृत कवि अरुण कमल जी एक स्थान पर कहते हैं, 'अपना क्या है, इस जीवन में। सब तो लिया उधार, सारा लोहा उन लोगों का अपनी केवल धार।' मनुष्य के सहज जीवन का प्रतिबिंब साहित्य में स्पष्ट दिखाई देता है।

हमारे हिंदी के समृद्ध साहित्य के विभिन्न पक्षों का चिंतन और विचार-विमर्श हमेशा किसी-न-किसी माध्यम से किया जाता हैं। इतना ही नहीं तो वर्तमान परिप्रेक्ष्य में या समय-समय पर साहित्य के समक्ष निर्माण होनेवाली चुनौतियां और समस्याओं पर भी विचार-विमर्श करके उसकी गहन चिंतन करके भविष्य की संभावनाओं को एवं समाधान को प्रस्तुत करके एक नई दिशा निश्चित की जाती है। एक नया रास्ता निश्चित बनाया जाता है। साहित्य तो समाज का दर्पण कहा जाता है लेकिन साहित्य तो दर्पण के पीछे भी देखता है। केवल सामने ही नहीं। आज के दौर में तो चारों और चुनौतियां ही चुनौतियां लेखक के सामने हैं। सबसे पहले तो लब्धप्रतिष्ठ लेखक, साहित्य सम्राट प्रेमचंद जी सामने की चुनौतियों पर विचार करते हैं। विचार करना क्या खुद-ब-खुद उनके साहिब पिक चिंतन और चुनौतियों की ओर ध्यान आकृष्ट होता है।

प्रेमचंद जी द्वारा लिखी गयी 'सोजे वतन' कृति को तत्कालीन अंग्रेज सरकार ने जप्त किया था। लेकिन प्रेमचंद जी रुके नहीं। ना ही हताश हुए और ना ही निराश हुए। आगे बढ़ते गए। निरंतर लिखते गए। निर्भरता से लिखते रहें। तब कहीं गरीबी, दरिद्रता, सामाजिक रूढ़िबद्धता, परंपराएं आदि अनेक समस्याएं अनेक चुनौतियां उनके सामने थी। पारिवारिक स्थिति और कई चुनौतियों का उन्होंने सामना किया है। "स्वतंत्र चिंतन, वैज्ञानिक व्याख्या,

तर्कबुद्धि की प्रधानता, अंधविश्वासों रुढ़ियों एवं बंधनों की मुक्ति से छटपटाहट, अस्तित्ववादी भावना, मानववादी विचारधारा एवं स्वतंत्र चंहुमुखी विकास।"[1] इस प्रकार के नवजागरण की विशेषताओं को लेकर ही प्रेमचंद जी आगे बढ़ते। आज भी इस प्रकार की अनेक चुनौतियां साहित्य और साहित्यकार के सामने खड़ी हैं। केवल उसका स्वरूप बदल गया है। प्रेमचंद जी को अपनी नौकरी से त्यागपत्र देना पड़ा वह भी उन्होंने दिया। लेकिन अपना साहित्यिक धर्म नहीं छोड़ा। साहित्य के माध्यम से उन्होंने समाज एवं राष्ट्र की सेवा की। अंतिम सांस तक साहित्य के लिए ही अपना जीवन समर्पित किया। वैसे तो प्रेमचंद एक ऐसा चेहरा है जो चुनौतियां में ही जन्मा, पला और बड़ा हुआ है। तमाम मुश्किलों के बावजूद भी लगभग छप्पन वर्ष निरंतर साहित्य की सेवा की।

अनेक कुरूपताओं एवं परंपराओं को तोड़ने का मौलिक कार्य उन्होंने किया है। तत्कालीन अंग्रेज सरकार भी चुनौती बनकर उनके सामने खड़ी थी। फिर भी उन्होंने लगभग पंद्रह उपन्यास और तीन सौ से भी अधिक कहानियाँ लिखी। इतना ही नहीं तो अनेक पुस्तकों का अनुवाद किया। बाल साहित्य और कई लेख भी उन्होंने लिखे हैं। उनके समक्ष खड़ी चुनौतियों की गवाह उनका साहित्य ही देता हैं। उस समय का अंधविश्वास कितना चरम पर था ? "प्राय सभी उपन्यासों और कहानियों में प्रेमचंद ने सामाजिक को प्रथम पर चोट की और नारी मुक्ति की आवाज उठाई वह सिर्फ सुधार में विश्वास नहीं करते बल्कि सामाजिक क्रांति भी चाहते हैं।"[2] आर्थिक और सामाजिक विषमता में समाज अनेक टुकड़ों में बंटा हुआ था। उनको दैनिक जीवन में भी तमाम सारी चुनौतियों से गुजरना पड़ा। अपने ही घर परिवार के शादी-ब्याह जैसे समारोह के समय भी चुनौती भरा जीवन जीना पड़ा।

इस प्रकार की विषमताओं को मिटाते समय रूढ़ि-परंपराओं का विरोध करते समय क्या वे कभी सुकून को महसूस कर पाये होंगे। लमही में भी उनके चरितार्थ को लेकर भी बहुत बड़ी समस्या थी। परंतु इन सभी चुनौतियों को, सभी समस्याओं को बहुत ही अत्यंत ठंडे दिमाग से लेकर, सब कुछ सहकर आगे बढ़ते रहे। लिव इन रिलेशनशिप तो आज के जमाने की देन है। लेकिन तत्कालीन समय में भी इसी अंदाज में, इसी प्रकार की उन्होंने 'मिस पदमा' जैसी कहानी का सृजन कर पाठकों तक पहुंचाया है। सन 1962 के हंस पत्रिका के दिसंबर के अंक में एक लेख में कहा गया है कि, "यह सार्वजनिक निर्वाचन अधिकारी चाहती है जायदाद या शिक्षा की कोई कैद उन्हें पसंद नहीं और राष्ट्रीय एकता का तो जितने जोरों से स्त्रियों ने हर एक अवसर पर समर्थन किया है उसे पर बहुमत से हिंदू मुसलमान पुरुषों को लज्जित होना पड़ेगा।"[3] 'मिस पदमा' कहानी में भी स्त्री को लेकर इस प्रकार की भूमिका देखने को मिलती है। आश्चर्य की बात तो यह है कि उनकी लेखन का हुनर इतना आगे और उच्च कैसे था। अद्भुत था यह सब उनका लेखन।

अनेक वर्षों के बाद भी प्रेमचंद जी की कहानियां, उपन्यास, लेख आदि का महत्व एवं प्रासंगिकता भी जैसे की वैसी बनी हुई है उनका साहित्य आज भी समाज के लिए पथ दर्शक की भूमिका निभाने वाला साहित्य अंत्यत मौलिक कार्य कर रहा है। अनेक चुनौतियों में पैदा होकर बड़े हुए प्रेमचंद जी की कहानियां 'कफन', 'पुस की रात', 'ईदगाह' हर किसी के मन को छूकर हृदय में अपना विशिष्ट स्थान बना लेती है। उसी प्रकार 'गबन', 'गोदान', 'रंगभूमी', 'कर्मभूमि' आदि उपन्यास भी हर किस के मन पर अपनी अमित छाप छोड़ देते हैं। यथार्थ स्थिती का परिचय कराते हैं। वाराणसी के निकट एक छोटे से गांव के अभावग्रस्त परिवार में ही उन्होंने पंद्रह से अधिक उपन्यास और तीन सौ से अधिक कहानियों के साथ ही ऐसी कई कालजयी रचनाओं का सृजन किया है। खुद पर जो भी बीता था उसको भी सफाई के साथ अत्यंत सुंदर शब्दों में चित्रित किया है।

समाज पर पूरी तरह से हावी हुई रुढ़ी-परंपराओं के बीच की प्रेमचंद जी जन्मे हुए थे। दलित, किसान एवं स्त्रियों को केंद्र में रखकर ही अधिकांश लेखन उन्होंने किया है। " जब तक स्त्रियां शिक्षित नहीं होगी और सब

कानूनी अधिकार उनको बराबर ना मिल जाएंगे तब तक महेश काम करने से काम नहीं चलेगा।"[4] क्रुर प्रथाओं की चुनौतियों का सामना करते समय ही अंग्रेज सरकार की कूटील नीति का सामना करना पड़ता था। कोई भी साहित्यकार अपने समय के देशकाल, वातावरण और आस-पास के परिवेश से प्रभावित होता है। उन्होंने अपनी लेखनी से समाज का दुख-दर्द और संवेदनाओं को अभिव्यक्त किया है। भारतीय समाज का सर्वाधिक पिछड़ा वर्ग किसान, दलित और स्त्रियों की उन्नति के लिए उनके विकास के लिए अपने विचार साहित्यिक रचनाओं के माध्यम से पहुंचाएं हैं। उनके स्वभाव में गरीबी का सामना करने की और उसे सहने की क्षमता थी। एक प्रगतिशील लेखक के साथ ही जनवादी लेखन की ख्याति ने आज प्रेमचंद जी को विश्व-विख्यात बनाया है। हिंदी और उर्दू दोनों भाषाओं पर उनकी अच्छी पकड़ होने के कारण ही हिंदी, उर्दू की अनेक अजरामर रचनाएं उन्होंने समाज को देकर हिंदी साहित्य का दायरा समृद्ध किया है। उनके साहित्य के कारण भारतीय समाज की एक पूरी सदी का मार्गदर्शन हुआ है। समाज का विकास होने में भी मदद हुई है।

सन 1908 से लेकर 1936 तक निरंतर लिखते रहे। उस समय में गरीब, दलित, किसान, मजदूर और स्त्रियों के हालात बद से बदत्तर थे। इन सभी वर्गों पर बिना वजह अन्याय-अत्याचार होता था। आमिर, सामंतशाही वर्ग के द्वारा उनको दबाया जाता था। पैरों तले कुचलाया जाता था। स्त्रियों को दासी और भोग्य के रूप में रखा जाता था। गरीब मजदूरों से अधिक मेहनत लेकर नाम मात्र का मेहनताना दिया जाता था। इस समय उनको सामंतवाद और उपनिवेशवाद की चक्की में पीसा जाता था। उनको अपना ही हक और अधिकार नहीं मिल पाता था। अपने ही हक और अधिकारों से वंचित रहना पड़ता था। जमींदार महाजन आदि के द्वारा हर एक सामान्य व्यक्ति पर अन्याय-अत्याचार होता था। उनका मानना था कि समाज के हर एक वर्ग के विकास के बिना राष्ट्र का विकास संभव नहीं है। तमाम चुनौतियों के बावजूद भी वे समाज के पीड़ित वर्गों को आदर और सम्मान देने के पक्ष में रहते थे। वे अपनी रचनाओं में मुक जनता के साथ-साथ हाशिए पर खड़े समाज की उन्नति और मुक्ति भी दिलाना चाहते थे। प्रेमचंद जी ने अय्याशी जीवन की सुंदरता को ठुकरा कर कठोर परिश्रम और गुणात्मकता को महत्व देकर नए लेखकों के सामने चुनौतियां निर्माण की हैं। हिंदी साहित्य की चर्चा प्रेमचंद जी के नाम के बिना तो नमक बिना दाल-रोटी के जैसी लगती है। सही मायने से हिंदी कथा साहित्य का यथार्थवादी आदर्श रूप प्रेमचंद जी के कथा साहित्य से शुरू होकर आगे विकसित भी होता है। उनकी रचनाओं में समाज के हर एक वर्ग के दर्शन होते हैं। समाज का एक भी वर्ग उनकी रचनाओं से अछूता नहीं रहा है। विषमता को मिटाकर भारतीय समाज व्यवस्था में सामंजस्य स्थापित कर उसे वे पुष्ट करना चाहते हैं। वे समाज का वास्तविक चित्र रुपायित करके अन्य लेखकों के लिए एक चुनौती पूर्ण कार्य करते हैं। ताकि उनके साहित्यिक रचनाओं के जैसी जीवन्तता अन्यत्र दुर्लभ है। अन्य साहित्यकारों की रचनाओं में उनके साहित्य के जैसी जीवन्तता दृष्टिचर नहीं होती है।

समाज में पनपने वाली सामाजिक विषमताएं, विकृतियां, विद्रूपताएं अनैतिकता आदि का जमकर पर्दाफाश उन्होंने किया है। साथ ही कठोर विरोध भी किया है। विद्रोही चुनौतियां को समाज के सामने रखा है। 'बालक', 'सौत', 'ज्योति', 'नया विवाह', 'बेटोंवाली विधवा', 'स्वर्ग की देवी', 'प्रेम की होली', 'भूल' आदि रचनाओं के माध्यम से समाज के प्रचलित वैवाहिक जीवन की समस्याओं को उजागर किया है। उन्होंने स्त्रियों के पुनर्विवाह, विधवा विवाह, संपत्ति में अधिकार, नारी स्वतंत्रता, नारी शिक्षा आदि को महत्व देकर समाज में बदलाव करने के लिए प्रयास किया है। उसी प्रकार 'निर्मला', 'गोदान', 'गबन', 'सेवा सदन', 'रंगभूमि', 'कर्मभूमि', आदि के माध्यम से मध्यम वर्गीय लोगों की द्विधा मानसिकता का सूक्ष्म चित्रण किया है। उनकी आर्थिक स्थिति, अभावग्रस्त जिंदगी, घुटन भरी स्थिति और असंतोष, मर्यादा पालन, सामाजिक रीति-रिवाजों का वहन, क्रुर रुढ़ियाँ जैसी अनेक

समस्याओं ने समाज के मध्य वर्ग को कुचलकर रखा था। उनमें जो नवोन्मेष एवं नई चेतना जागने के लिए प्रेमचंद जी ने अपने लेखनी की धार को अधिक तेज किया था। प्रेमचंद जी का साहित्य समाज से जुड़ा हुआ साहित्य है। मनुष्य की समस्या उनसे जोड़ा हुआ सहित्य है। सच कहा जाए तो वे एक अच्छे समाज सुधारक और यथार्थवादी विचारक भी रहे हैं। वे संयम, प्रेम, सहानुभूति, सहयोग, मानवता के साथ ही कर्तव्य परायणता की ओर संकेत करते है। उन्होंने भारतीय समाज जीवन की सामाजिक, पारिवारिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, शैक्षणिक, इन सभी समस्याओं को अत्यंत सटीकता से स्पष्ट किया है।

हिंदी साहित्य के उच्च कोटि के रचनाकार प्रेमचंद जी ने समाज के यथार्थ की स्थिति का सामना करते हुए अनेक बार विभिन्न प्रकार की चुनौतियों से गुजरते गये। दिन-दलित, किसन, पीड़ितों, मजदूरों एवं स्त्रियों के जीवन की त्रासदी का उन्होंने स्वयं अनुभव किया है। 'कफन' में सामाजिक सच्चाई का चित्रण है। 'पुस की रात' में भारतीय किसान की दिन-हीन दशा है। विशेष रूप से छोटे किसानों की बर्बादी और महामंदी का संकट है। कहानी का गरीब किसान हल्कू मजदूरी करके तीन रुपए कमाकर कंबल खरीद कर जाडे के दिनों में खेती की रखवाली करना चाहता है। लेकिन गांव का महाजन सारे पैसे ले जाता है। "जाड़े का मौसम और सहाना साहूकार के जुल्म की दोहरी मार के बीच छटपटाता हल्कू जो एक बहुत ही छोटा और गरीब किसान है पूस के मौसम में रात को अपनी छोटी सी फसल की रक्षा के लिए खून जमा देने वाली ठंड में पहरा देने के लिए हल्कू को एक कंबल चाहिए। जिसे खरीदने के लिए उसकी पत्नी मुन्नी ने बमुश्किल तीन रुपया बचा के रखा था, पर सहाना साहूकार की गाली और अपमान से बचने के लिए तीन रुपया उसे देना पड़ता है।"[5] तो यह भारतीय किसानों के सामने इस प्रकार की अनगिनत समस्याएँ हैं। निसर्ग के साथ चुनौती भरा कार्य हल्कू किसान के माध्यम से कहानी में प्रस्तुत किया है।

'रंगभूमि' में ग्रामीण और शहरी परिवेश के संघर्ष का चित्रण है। यह संघर्ष औद्योगिकरण और सहकारी सभ्यता के बीच का है। उपन्यास का नायक सूरदास के पास दस बीघा जमीन तो है। लेकिन उस पर मोहल्लेवालों की गाय भैंस चरती रहती हैं। इस जमीन से उसे कोई आमदनी नहीं होती। फिर वह अपने बुजुर्गों की संपत्ति को संभालकर रखना चाहता है। परंतु मिस्टर जानसेवक जो सामंतशाही वर्ग का प्रतीक है के द्वारा वह जमीन छीनी जाती है। यह संघर्ष वैैयक्तिक न रहकर पूंजीवाद और सामंतवाद का बन जाता है। रंगभूमि में भारतीय पूंजीवाद के शैशव का चित्रण है। इसमें पूंजीवाद अभी घुटनों के बल पर चल रहा है।"[6] अन्याय-अत्याचार को उन्होंने कभी सहा नहीं उल्टा उसका कठोर विरोध किया और गरीब, मजदूर, किसान, दलित, स्त्रियाएं आदि को उनके हक और अधिकार के प्रति सचेत किया। सामाजिक, आर्थिक, जातिगत, वंशगत एवं लिंगगत विषमताओं को मिटाने का निरंतर प्रयत्न किया है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि ऐसे कई विषयों पर उन्होंने अपना लक्ष्य केंद्रित कर प्रेमचंद जी ने समाज के इस वर्ग का चिंतन करके अपनी रचनाओं में उनके प्रति चिंता अभिव्यक्त की है। जिनको स्वतंत्रता नहीं थी, उनको स्वतंत्रता दिलाने के लिए अपनी लेखनी के माध्यम से लड़ते थे। अन्याय-अत्याचार का विरोध करने के लिए लोगों को जागृत करते थे। उनकी चिंता के कारण उनकी दुरावस्था को भी अपनी रचनाओं में व्यक्त किया है।

संदर्भ सूची :--

1. प्रेमचंद साहित्य का पुनर्मूल्यांकन - शंभूनाथ - नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली पृ. 26
2. पुनर्जागरण के व्याख्याता : मैथिलीशरण गुप्त - रामधन मीना - चिन्मय प्रकाशन, जयपुर - पृ. 3
3. हंस - अमृतराय - प्रेमचंद विविध प्रसंग - भाग 3, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद - पृ. 254
4. प्रेमचंद घर में - शिवरानी देवी - आत्माराम एंड संस, दिल्ली - पृ. 113
5. सं. देवेंद्र दीपक, त्रिभुवन शुक्ल - साक्षात्कार - मुंशी प्रेमचंद - पूस की रात - साहित्य अकादमी, भोपाल - अंक जुलाई, 2015 - पृ. 29
6. प्रेमचंद : चिंतन और कला - सं. डॉ. इंद्रनाथ मदन - सरस्वती प्रेस, बनारस पृ. 53

इक्कीसवी सदी की महिला लेखिकाओं की कहानियों का समीक्षात्मक अध्ययन

प्रा.डॉ. जाधव ज्ञानेश्वर भाऊसाहेब

हिंदी विभाग,शिवनेरी महाविद्यालय, शिरूर अनंतपाळता.शिरूर अनंतपाळ, जि. लातूर

ई-मेल : dbjadhav1980@gmail.com दूरभाष नं. 9823110240

इक्कीसवी सदी में मानव जीवन के सभी पक्षों, विचारों तथा जीवन जीने के तरीकों में तीव्रता से बदलाव आया है, उसका असर हिंदी साहित्य पर भी व्यापक रूप में परिलक्षित होता है। इस युग में बाज़ारवाद और भूमंडलीकरण ने हमारे जीवनदर्शो और जीवन मूल्यों को बहुत ज्यादा प्रभावित किया है। इस सदी में व्यक्ति के बजाए तकनीकी को ज्यादा महत्व मिल रहा है। आज का व्यक्ति मोबाईल, इंटरनेट का साथ ज्यादा पसंद करता है। इस सदी में भूमंडलीकरण के प्रभाव से वैश्विक संस्कृति की कल्पना भी साकार हुयी है। इस बारे में मनोहर श्याम जोशी का कथन है कि- "इक्कीसवी सदी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों और बहुराष्ट्रीय व्यक्तियों की सदी होगी। कम से कम अपने पहले पचास सालों में हर योग्य और सफल व्यक्ति उसमें निरन्तर यात्रा और प्रवास करता नजर आएगा। बल्कि सच तो यह है कि उसके लिए प्रवास जैसी कोई चीज़ नहीं होगी क्योंकि उसका कहीं कोई स्थायी आवास नहीं होगा।"[1] आज का व्यक्ति मानवीय रिश्तों से ज्यादा धनसंपत्ति को महत्व दे रहा है। भौतिक सुख-सुविधाओं के पीछे भाग रहा है। पूँजीवादी संस्कृति ने इस सदी के आम आदमी को अत्याधिक प्रभावित किया है। साथ ही इस सदी में कुछ सकारात्मक बदलाव भी हमें देखने को मिलता है। इस सकारात्मक बदलाव में शिक्षा का विकास है। शिक्षा के विकास ने पुरूष की मानसिकता में बदलाव लाकर स्त्री के साथ बराबरी का व्यवहार करने की सोंच बदली है। आज की स्त्री हाथ में कलम लेकर स्त्री की बदली हुई आकांक्षाओं को व्यक्त करती है।

इक्कीसवी सदी के स्त्रियों ने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अपनी मेहनत और लगन से सफलता हासिल की है। आज की शिक्षित आधुनिक स्त्री स्वंय तो जागरूक है ही दूसरी स्त्रियोंको जागरूक करने को तत्पर है। इस बदलते हुए युग में महिला कहानीकारों ने स्त्रियों के आकांक्षा के बदलते तेवर को अपनी कहानियों में रेखांकित किया है। इक्कीसवी सदी में बदलते हुए समय, वातावरण और परिस्थितियों के अनुरूप स्त्रियों की बदली हुई छबी का चित्रण इनकी कहानियों में मिलता है। महिला लेखिकाओं के लेखन संघर्ष के बारे में कथन है कि, "अनेक तरह की पारिवारिक जिम्मेदारियों को अच्छी तरह निभाने के साथ उनके लिए लेखन के लिए समय निकाल पाना कहीं अधिक चुनौतिपूर्ण होता है। आज के माहौल में तो यह भी आम हो गया है कि परिवार की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पति-पत्नी दोनों को ही नौकरी करनी पड़ती है। कई बार महिला लेखिकाओं को विपरित माहौल के कारण घरवालों से भी सहयोग नहीं मिलता। फिर भी उनका साहित्य सृजन पीछे नहीं रहता और इस तरह उन्हें दोहरी चुनौती उठानी पड़ती है।"[2]

इक्कीसवी सदी का महिला लेखन स्त्री जीवन के उन सभी पक्षों पर प्रभाव डालता है जहाँ अब तक स्त्री उपेक्षित और वंचिता की हैसियत में रहती आई है। दरअसल ज्यादातर लोगों की नजर में स्त्री एक देह है और उपभोग की वस्तु है, लेकिन स्त्री न तो देह है और न ही उपभोग की वस्तू बल्कि वह भी मनुष्य है, उनमें भी मानवीय संवेदना है, उनके भी जीवन की आशा-आकांक्षाएँ है यह महिला लेखन पुरूषसत्ताक समाजव्यवस्था के समक्ष अपनी स्पष्ट बात रखता है। महिला लेखन पुरूषविरोधी विचारधारा नहीं है, पितृसत्ता विरोधी है। प्रभा

खेतान का कथन है कि, "स्त्री आंदोलन का पुनर्मुल्यांकन जरुरी हो गया है ताकि मुक्ति की सामाजिक परम्परा में एक और नया अध्याय जोड़ा जा सके... हम स्त्रियों के बारे में चर्चा तो कर रहे है जिस पितृसत्ता से हम युद्धरत है उसके खिलाफ उन लोगों ने संघर्ष किया है। मानव-मुक्ति के सिद्धांतों के संवर्धित और व्यवस्थित किया है।"[3] इक्कीसवी सदी की हिंदी कहानी स्त्री जीवन से संबंधित अनेक पहलूओं को पूरी ईमानदारी से चित्रित करती है। साथ ही ये कहानियाँ स्त्री जीवन के आदर्श रूप के साथ-साथ स्त्री सुलभ कमजोरियों का उल्लेख भी करती है। इन कहानियों में स्त्रियों के सकारात्मक और नकारात्मक दोनों रुपों का चित्रण है। स्त्री जीवन के तमाम पहलूओं को नासिरा शर्मा, ममता कालिया, राजी सेठ, मनिषा कुलश्रेष्ठ आदि कहानिकारों ने यथार्थ रूप में उद्घाटित किया है। जिनका अध्ययन हम निम्न रूप से कर सकते है।

नासिरा शर्मा का हिंदी साहित्य में आगमन कहानी के माध्यम से हुआ। उन्होंने अपनी कहानियों में अलग-अलग समस्याओं को चित्रित किया है। उनकेद्वारा लिखित-'इनसानी नस्ल', 'वही पुराना झूठ', 'पाँचवा बेटा', 'बड़े परदे का खेल' यह प्रमुख कहानियाँ है। 'इनसानी नस्ल' कहानी में साम्प्रदायिकता का चित्रण है। जिसमें हिंदु-मुस्लिम प्रेमसंबंध को दिखाया गया है। लेकिन जब बात कहानी के पात्र अयुब के बेटे नवाब की शादी की आती है तो हिंदू लडकी से शादी करना सही नहीं माना जाता लेकिन बेटे को गोद देने की बात आती है तो नवाब अपना बेटा पड़ोसी मिश्राजी को गोद दे देता है। विवाह विजातीय लड़की से पसंद नहीं लेकिन अपना बेटा विजातिय परिवार को गोद देनें में कोई हिचकिचाहट नहीं। साम्प्रदायिक भेदभाव का यथार्थ चित्रण इस कहानी में किया गया है। 'वहीं पुराना झूठ' एक अनाथ लडकी की मार्मिक कहानी है। अनाथ जहिदा जवान हो चुकी है उसकी शादी करनी है। जहिदा की शादी करवाने के लिए कहानी की पात्र रज्जोबी उसे कलकत्ता ले जाती है लेकिन वहाँ कोई नहीं मिलने पर रज्जोबी जहिदा की शादी साठ वर्ष के वृद्ध से करवाने के लिए तैयार हो जाती है। लेकिन जहिदा को यह शादी पसंद नही थी इसलिए वह भाग जाती है। 'पाँचवा बेटा' कहानी में औरत के संघर्ष का चित्रण है। कहानी के पात्र वृद्ध औरत अपने चारों बेटों का पालन-पोषण कर उन्हें खूप पढ़ाती है, लेकिन बुढ़ापे में चारों बेटे उसे छोड़कर शहर रहने के लिए चले जाते है। उन्हें अपने माँ की कोई परवाह नहीं तब उसकी पड़ोसी सहेली का बेटा सुलाखी उसका पाँचवा बेटा बनकर वृद्ध को सँभालता है। कहानी की पंक्तियाँ है कि- "तभी तो अमतुल अपनी नादानी से शर्मिन्दा हो पुराने गम में नया गम मिला रही है जिनके चार लड़के शहर की भीड़ में खो गए है उन्हें ढूँढने में उसे होश ही नहीं रहा कि पाँचवा जो पास में है, उसे समझती।"[4]स्वार्थ में लिप्त बच्चे अपने वृद्ध माता-पिता को सँभालते तक नहीं वृद्ध जीवन की समस्या का चित्रण प्रस्तुत कहानी में किया गया है। 'बड़े परदे का खेल' कहानी में प्रेम के नाम पर लड़कोंद्वारा लड़कियों को शिकार बनाया जा रहा है। इसका चित्रण किया गया है। कहानी में रमा नामक युवती से राज मल्होत्रा नामक युवक प्यार के नाम पर छल करता है। रमा की शादी के बाद उसे उषा नामक लड़की मिलती है, वह भी राज मल्होत्राद्वारा प्रताड़ित है, तब दोनों मिलकर राज को सबक सिखाती है। कहानी की निम्न पंक्तियों में स्पष्ट होता है कि - "मैं संवेदना के धरातल पर टूटी, संताप के गहरे गर्त में डूबी उतरी भी और टूटने बिखरने की जगह मैने तय किया जो मुझे मेरी भावुक ईमानदारी के कारण अपमानित कर रहा हो उसको ही न ऐसा मजा चखाया जाए कि आगे इश्क करना भूल जाए।"[5]

ममता कालिया ने अपने लेखन में रोजमर्रा के संघर्ष में युद्धरत स्त्री का व्यक्तित्व उभारा है। अपनी रचनाओं में वह न केवल महिलाओं से जुड़े सवाल उठाती है, बल्कि उनके उत्तर देने की कोशिश भी करती है। उनकेद्वारा लिखित कहानीसंग्रह- 'बोलनेवाली औरते', 'निर्मोही', 'मुखौटा' प्रसिद्ध है।

'बोलनेवाली औरते' कहानी में प्रेमविवाह के चित्रण के साथ-साथ पति के नासमझी के कारण परिवार में बिखरे हुए रिश्तों को उज़ागर किया गया है। कहानी के माध्यम से लेखिकाने समाज की उस सच्चाई को उज़ागर किया है जो आज भी पत्नी पति के अधिन होकर कार्य करती है। उसका अपना स्वतंत्र अस्तित्व नहीं होता है। 'जनम' कहानी स्त्रीविमर्श से जुड़ी हुयी है, जो हमारे समाज का यथार्थ रूप सामने रखती है। घर में बेटी के जन्म पर बेटी और बेटी के माँ दोनों के साथ ऐसा व्यवहार किया जाता है जैसे उन्होंने कोई बड़ा गुनाह किया है। बेटी के जन्म से घर में जो स्थिति निर्माण हुई उसका वर्णन निम्न पंक्तियों से स्पष्ट होती है- "मनोरमा अब तक आँगन में बच्ची को लेकर खड़ी थी। दादी ने उसे घुड़का जाके बैठ अपनी कोठरी में। अभी तो पैर पड़े है और करावेवारी है कौन जाने।"[6] घर में लड़की के जन्म से जो उदासी निर्माण होती है उसका यथार्थवर्णन प्रस्तुत कहानी नें किया गया है। 'निर्मोही' कहानी नारी जीवन की त्रासदी को व्यक्त करती है। पति को परमेश्वर मानकर उसपर अपना संपूर्ण जीवन न्योछावर करनेवाली भारतीय नारी रानी-फूलमती पर उसका पति राजा शक करके उसे घर से निकाल देता है। वहीं दूसरी तरफ मालिन का बेटा कन्हाई उसे सम्मान तथा प्रेमपूर्वक विवाह करता है। उसे लगता है वास्तविक प्रेम तो इन्हीं छोटे लोगों में रहता है। कहानियों की पंक्तियाँ है- "पिरितिया खवाऊँगी, पिरितिया पिलाउगौ। तुमने जो जाके पिरान निकारै, मैने जामे वापस जान डारी। तो जै हुई मेरी परानपियारी।"[7]'वह मिली थी बस में' कहानी दो औरतों की कहानी है जिसमें एक पढ़ी-लिखी कामकाजी स्त्री होकर भी अपने पति से भयभीत है और दूसरी कम पढ़ी-लिखी ग्रामीण औरत होकर भी आत्मविश्वास से भरपूर है। 'मुखौटा' कहानीसंग्रह में दहेज, असुरक्षा, दाम्पत्य संबंधों में तनाव आदि कहानियों का विषय बनाया गया है। इस संग्रह की 'चिरकुमारी' कहानी में अविवाहीत नौकरीपेशा स्त्री की विवाहसंबंधी मानसिक दशा का चित्रण है। 'मुखौटा' कहानी में जीवन को अधिक आकर्षित बनाने की तीव्र आकांक्षावाली कहानी है। साथ ही वर्तमान युवा पीढ़ी की मानसिकता का चित्रण किया गया है। 'सीमा' स्त्री-विमर्श से जुड़ी कहानी है। कहानी की स्त्री ने जीवन में बहुत सारे सपने देखे है लेकिन अपने सपनों को पूरा करने के बजाए वह सीमाओं में जीवन व्यतीत करनेवाली पति अधीनस्थ पत्नी बनकर रह जाती है। ममता कालियाने कहानियोंद्वारा स्त्री-जीवन के विभिन्न पक्षों को समाज के सम्मुख रखा है।

हिंदी कहानी जगत की बहुचर्चित कहानीकार राजी सेठ की कहानियाँ जीवन की सच्चाइयों से भरपूर कथाएँ है। ये कहानियाँ हर किसी को अपने आसपास घटी घटनाओं पर आधारित लगती है। उनकेद्वारा लिखित 'ग़मे-हयात ने मारा', 'रूको, इंतजार हुसैन' प्रसिद्ध कहानीसंग्रह है।

'ग़मे-हयात ने मारा' कहानीसंग्रह में संकलित 'मुलाकात' कहानी भारत-पाकिस्तान विभाजन के समय के दंगे-फसाद का चित्रण करती है। विभाजन की त्रासदी को स्वयं उन्होंने बचपन में झेला था उस त्रासदी का यथार्थ वर्णन प्रस्तुत कहानी में किया गया है। विभाजन की स्थिति से सामान्य लोगों पर आयी विपत्तियों एवं उनकी मानसिकता का चित्रण कहानी में किया गया है। 'बाहरी लोग' यह भी कहानी विभाजन की त्रासदी से पीड़ित वृद्धा की कहानी है। साथ ही नई पीढ़ी की वृद्धों के बारे में सोच भी दिखती है। कहानी में विभाजन की त्रासदी से भी बड़ी त्रासदी यह दिखाई गई है कि वृद्धा का शराबी बेटा अपनी माँ का अपमान करता है, माँ का अनादर करते हुए उसे सताता है जिससे वृद्ध माँ का मानसिक संतुलन बिगड़ जाता है। यह कहानी नई पीढ़ी का वृद्धों के प्रति नजरिया दिखाती है। 'यह कहानी नही' मृत्युबोध की कहानी है। बेटे और उसके परिवार की दुर्घटनाग्रस्त मौत से दोनों पति-पत्नी दुखी है। स्त्री अपने दुःख को अपने अंदर दबाकर नहीं रख सकती। वह अपना दुख दर्द हमेशा दूसरों के सामने छलकाती दिखाई रहती है लेकिन पुरूष अपनी झुठी मुस्कान के आवरण के पीछे अपने दुःख को छिपाए

रखकर पत्नी का हमेशा हौसला बढ़ाता रहता है। राजी सेठ ने वृद्ध जीवन की त्रासदीपर बहुत सारी कहानियाँ लिखकर बुढ़ापे के दर्द को अभिव्यक्ती दी है।

इक्कीसवी सदी के प्रथम दशक की महिला रचनाकारों में मनीषा कुलश्रेष्ठ का स्थान प्रमुख है। उन्होंने अपनी रचनाओं में स्त्री-अस्मिता को नई पहचान दी है। 'कठपुतलियाँ' नामक कहानी में लेखिका ने अनमेल विवाह की समस्या को उठाया है। साथ ही दहेजप्रथा का चित्रण भी किया है। कहानी का स्त्री पात्र सुगना का विवाह दहेज न होने के कारण 30 वर्षीय दो बच्चों के बाप के साथ किया जाता है। 'रंग-रूप-रस-गंध' कहानी में वृंदावन के मंदिरों के गुसाइयों के द्वारा विधवा स्त्रियों के यौनशोषण का चित्रण किया गया है। विधवाओं को कोई सहारा न होने पर वह मंदिरों में आकर रहती है, तो वहां गुसाइयोंद्वारा यौनशोषण किए जानेपर एक विधवा आत्महत्या करती है। विधवाओं के जीवन की त्रासदी का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत कहानी में किया गया है। 'फाँस' कहानीद्वारा लड़का व लड़की में भेदभाव किए जानेवाले समाज की सच्चाई का वर्णन है। कहानी में चार लड़कियों को जन्म देने से पति अपनी पत्नी के प्रति संवेदनहीन हो गया है। यह कहानी की निम्न पंक्तियों से स्पष्ट होता है- "कल की मरती हो तो आज मर ले। तूने दिया ही क्या है हमें? चार-चार छोरियों के सिवा तीन तो जस तस ब्याह दी। वे दाँत किटकिटाते है... अब ये चौथी इसे तो कुए में ही फेंक आऊँगा।"[7]

उपरोक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इक्कीसवी सदी के महिला कहानिकारों ने मानव जीवन की विभिन्न समस्याओं का चित्रण अपनी कहानियों में करते हुए बाज़ारवाद, भूमंडलीकरण और वैश्विकता के परिप्रेक्ष्य में जो परिवेश एवं परिस्थितियों में बदलाव हुआ है और उसका असर मानव जीवन और समाज पर हुआ है उसका यथार्थ चित्रण अपनी कहानियों में किया गया है।

संदर्भग्रंथ:

1) 21 वी सदी - मनोहरश्याम जोशी, पृ.सं. 31
2) महिला रचनाकार अपने आईने में मनोगत-उर्मिला शिरीष, सं. अरविंद, पृ.सं. 8
3) पितृसत्ता के नए रूप : स्त्री और भूमण्डलीकरण - प्रभा खेतान- पृ.सं. 16-17
4) इनसानी नस्ल - नासिरा शर्मा, पृ.सं. 40
5) इनसानी नस्ल - नासिरा शर्मा, पृ.सं. 48
6) बोलनेवाली औरत - ममता कालिया, पृ.सं. 48
7) निर्मोही - ममता कालिया, पृ.सं. 44
8) कुछ भी तो रुमानी नहीं - मनीषा कुलश्रेष्ठ, पृ.सं. 27

परंपरा और संस्कारों में अपनी ड्योढ़ी में जकड़ी माई उपन्यास की स्त्री पात्र ' माई '

डॉ. विद्या खाडे

असोसिएट प्रोफेसर (हिंदी विभाग) कला महाविद्यालय नांदुरघाट ता केज जि बीड 431126

मो 9405784135 ईमेल vidhyadalave@gmail.com

प्रस्तावना :

गीतांजलि श्री के ' माई ' उपन्यास को सर्वाधिक प्रतिष्ठा प्रदान की है। ' माई ' उपन्यास में लेखिका ने एक जमींदार के छोटे से परिवार में नारी जीवन के संघर्ष को प्रस्तुत किया है । उपन्यास की मध्यवर्ती पात्र माई घर की चारदीवारी में खुद को कैद रखकर अपनी अस्मिता और पहचान के लिए अपने परिवार के लिए खुद को विसर्जित कर देती है। घर की ड्योढ़ी में अपने आप को कैद कर लेती है । साँस- ससुर और पति की वर्जनाओं इच्छाओं तथा आदेशों के सम्मुख वह स्वयं को घर की चारदीवारी से बाहर निकलने नहीं दे पाती। राजेन्द्र यादव स्त्री की गुलामी के बारे में लिखते हैं - " आदमी के रूप में उसके सामने तस्वीर सिर्फ अपने मौलिक या शोषक की होती है। जिसकी मुट्ठी में उसका सुख, स्वतंत्रता, यह तक की प्राण बंदी है। " 1 नारी से यह अपेक्षा की जाती है कि वह हर स्थिति में अनुगामिनी, आज्ञाशिला बनी रहे। इस रूप में माई का व्यक्तित्व भी कुछ ऐसा ही बन गया है। जो घर के कार्यो में आज्ञाओं से हर स्थिति में अपने आप को घिरा हुआ पाता है।

' माई ' उपन्यास एक चरित्र प्रधान उपन्यास है। जिसमें गीतांजलि श्री ने माई के माध्यम से स्त्री अस्मिता, स्त्री की पहचान का संकट , उसे उसकी बँधी बँधाई भूमिका में स्वीकारने की त्रासदी और स्त्री का अपनी संतति के परिपूर्ण विकास के लिए संघर्ष जैसी समस्याओं को कथानक का केंद्र बिंदु बनाया है। माई उपन्यास में परंपरा और नैतिकता का द्वद भी उभारा गया है। माई उपन्यास में माई के पीहर के लोग उसे मिलने नही आ सकते थे। उनका अपमान किया जाता था। माई एक जगह कहती भी है -" कह देना ससूरजी से मुझे नहीं मालूम था, बिट्टन आएगी, मैं खुद नही चाहती कोई आए, उसका अपमान हो। " 2 माई की इस सोच पर पर दादी उसे खूब बातें सुनाती है। दादा कहते हैं - ' कहीं बहू ने खत - तो नहीं लिख दिया पता करो। आखिर उनकी हिम्मत कैसे हुई इधर भटकने की। ' ' माई ' हरदम घर के कामों में व्यस्त रहतीं थी। रसोई घर ही उसकी दुनिया थी। सबकी फरमाइशें पूरी करना ही उनका पहला काम था। माई कब उठती क्या खाती। बच्चों को तो आरंभ में पता ही नहीं चलता था। बच्चें बडे होने लगे और माई की स्थिति को समझने लगे। वे हर बार माई के बारे में सोचते थे कि माई का कुछ काम कम हो। पर माई तो एक प्रकार से निरिहता का जीवन जी रही थी। उससे घर में कोई सलाह मशवरा नहीं लिया जाता था। एम ए पास होते हुए भी किसी अनपढ की भाँति उसकी बुद्धि को आँका जाता था।

साँस- ससूर की मृत्युपरांत बेशक माई पहले से अधिक मुक्त वातावरण का अनुभव करतीं हैं। घर की जिम्मेदारियों, पति की इच्छाओं- आदेशों के निर्वाह और पालन के लिए चारदिवारी से बाहर नहीं निकल पातीं। माई एक ऐसी नारी का प्रतिनिधित्व करती जो अपने संस्कारगत मान्यताओं में दबी हुई है। वह अपने मन की इच्छाओं को अनदेखा करते हुए सबके मन - मुताबिक आचरण करतीं। माई की बेटी सुनैना अन्याय नही स्वीकारना चाहतीं। सुनैना अपनी माई को इस वातावरण, घुटन भरे जीवन से बाहर निकालना चाहती है।

सुनैना बड़ी होने पर माई की स्थिति, उसका रूदन और उस पर हो रहे अन्याय को समझ रहीं हैं। वह अपनी माई को इस स्थिति से उबारना चाहती है। माई की ही नहीं अपितु गीतांजलि श्री ने नव पीढ़ी के घर की चारदीवारी में हो रही छटपटाहट को उसके बाहर निकलने की आकांक्षाओं को भी उपन्यास में अभिव्यक्ति दी है। पितृसत्तात्मक नारी के विकास का मार्ग अवरूद्ध कर रहीं हैं। इस मानसिकता की जड़ें भारतीय परिवार में इतनी गहरी हैं कि उससे नारी- मुक्ति, नारी विकास बहुत आवश्यक है।

गीतांजलि श्री ने माई व सुनैना के माध्यम से परंपरा और नयी नैतिकता के द्वंद को उभारा है। यह द्वंद सुनैना को बेचैन कर देता है। वह अपनी सोच के सिरे को पकडती है तो उसे अनेक जगह उलझा पातीं है। माई को मुक्त करवाना चाहती है - " सुनैना माई को बेचारी समझती है कि, उसे ड्योढ़ी से बाहर निकल आने का गर्व है जब कि बाहर निकलने की ताकत वह माई से ही लेतीं है। परंपरा और नयी नैतिकता के द्वंद में उलझी सुनैना समझ नही पातीं कि वह माई बने की न बने। परंपरा ने उसमें माई का असर भरा है जो ' दूसरों ' के लिए सहकर उन्हें सफलता दिलाके अपनी सफलता जानती है। वह देना चाहतीं है पर पहले अपने लिए लेना चाहतीं है। " 3 सुनैना माई की कमजोरी और उसके सहने की प्रवृत्ति से स्वयं को दूर रखना चाहतीं है।

माई उपन्यास में संयुक्त परिवार और वह भी जमींदार परिवार में स्त्री की दयनीय अवस्था को इस प्रकार चित्रित किया गया है। जिसमें तीन पीढ़ियों की पारम्परिक असंगति के साथ स्त्री विमर्श उभर आया है। उपन्यास के केंद्र में माई है, दूसरी पीढ़ी में बाबु -माई- , बुआ -फूफा है और तीसरी पीढ़ी में भाई - बहन सुबोध- सुनैना है। मुल कथा माई के इर्द -गिर्द घूमती है। इस कथा के द्वारा जो प्रतिपादित हुआ है। संयुक्त परिवार में विशेषत: तीन पीढ़ियों के बीच बहु का व्यक्तित्व विकास से वंचित रह जाना। यह वंचना प्रगति विरोधी भी है और पुरुष प्रधानता को प्रदर्शित करने वाली भी। स्त्री का पुत्र की माता होना उसके लिए सम्मानजनक समझा जाता है। पुत्र को ही अपनी पुर्ण संतान समझती है। वह पुत्र प्राप्ति के लिए व्रत उपवास भी किया करतीं हैं।

माई उपन्यास में सुनैना के बाद सुबोध का जन्म होता है। उसके लालन - पालन में कोई भी कमी नहीं बरती जाती। उसकाे तो जन्म ही माई ने दिया था, उसे तो दादी ने ही पाला था। ' माई ' केवल उसकी 'धाय ' रही। माई को न केवल शारीरिक अपितु मानसिक पीड़ा की भयानक स्थिति से गुजरना पड रहा था। उसकी पीड़ा को कोई भी समझना क्या देखना भी नहीं चाहता था। कोण्डपूडी निर्मला जी का कहना सही है कि, " यह लिंग भेद हमें बचपन से ही अनुशासित करता आया है। हम रिवाजों के नाम पर तकलीफों को झेलते रहते हैं। रिवाजों के नाम पर स्त्री मरती रहतीं है। " 4 लडकी का जन्म ही माई के लिए कारूणिक स्थिति को जन्म दे चुका था। आधुनिकता के इस दौर में आज भी नारी अपने विचारों पर रूढिवादिता को अनुभव करतीं हैं।

नारी विमर्श की संकल्पना को कई पीढियों के रचनाकारों ने विभिन्न परिवेशों में स्त्रियों की बदलती छबी तथा उसकी विडंबनाओं- विवशताओं को अभिव्यक्त किया है गीतांजलि श्री के उपन्यासों में नारी जीवन से संबंधित विविध पहलू उजागर हुए है। जिनमें नारी की निरिहता विभिन्न संदर्भों में चित्रित हुई है।

नारी की स्थिति निम्नवत रहने के पीछे बहुत- सी ऐसी धार्मिक मान्यताएँ है, जो कालांतर में रूढियों अंधविश्वासों व कुरितियों में बदल कर नारी की स्थिति को दयनीयता को हद तक ले जाती है। गीतांजलि श्री के माई उपन्यास मे नारी की निरिहता उजागर हुई है। माई के जीवन में व्रतों की लंबी फेहरिस्त थी। " अहोई तीज, ललहीछठ, बृहस्पत, सोमवार, शिवरात्रि, गणेश चतुर्थी। कोई पति की मंगलकामना के लिए कोई पुत्र के लिए संतान के लिए। " 5 विभिन्न व्रत त्यौहारों के समय माई का भूखा रहना - निर्जल रहना तय था।

जिस प्रकार किसी दरवाजे पर टँगे पर्दे के पीछे एक पूरा सजा- सजाया कमरा होता है, उसी प्रकार प्रस्तुत उपन्यास द्वारा लेखिका ने यह बतलाने का प्रयास किया है कि पर्दे के पीछे भी एक पूरा जीवन, स्पंदन, इच्छाएं मौजूद है। जिसे दबाया जा रहा है। माई जो स्वयं पर्दे में रहा करतीं पर अपनी बेटी के लिए वह ऐसे जीवन की कल्पना नहीं करतीं।

माई उपन्यास में एक ऐसी नारी की कथा को दर्शाता है जो त्यागमयी , अन्याय के प्रति जागरूक तथा आधुनिक विचारों की समर्थक हैं।

निष्कर्ष

भारतीय पारंपरिक जीवन शैली मे महिलाओं के लिए पर्दा सामान्य - सी बात थी। पर आज की आधुनिक नारी के लिए यह बात बडी अटपटी लगती है, जो एक दृष्टी से सही भी है । स्त्री पर पुरुषो की अपेक्षा कही अधिक बंधन लगे रहते है। नारी चेतना का यह स्वर पारंपारिक न होकर आधुनिकता के संदर्भ मे चित्रित हुआ है। जिसमें एक ओर नारी पुरुषी अन्याय के विरोध में पुरुषी सत्ता को ही नकारती है तो दुसरी और नवशिक्षा व ग्रहण कर घुटन भरे जीवन से बाहर आने के लिए न केवल प्रयास कर रही है अपितु वह सफलता के साथ नारी विमर्श की संभावनाओं को साकार रूप भी दे रही है।

गीतांजलि श्री ने अपने माई उपन्यास द्वारा

अशिक्षा के फलस्वरूप नारी की दुर्दशा का चित्रण किया है । साथ ही नारी की कुंठाएँ, हीन भावना भी इस दिशा में सक्रिय हो रही है। नारी शिक्षा में बाधक बनती है। नारी शिक्षा जब शिक्षित हो जाती है तब वह बहुत सुनैना समान अपनी समाज मे स्थिति को समझ लगती है।

संदर्भ :

1. राजेन्द्र यादव, औरों के बहाने, अक्षर प्रकाशन, नयी दिल्ली १९८१
2. गीतांजलि श्री, माई, प्र . क्र.१२६
3. गीतांजलि श्री, माई, प्र. क्र. ९९
4. गीतांजलि श्री, माई, प्र.क्र. ५०

.

अस्मितामुलक विमर्श : अवधारणा और स्वरूप

डॉ ज्योति मुंगल

राजीव गांधी महाविद्यालय, मुदखेड

मो. 9370644181 Mail ID drjyoti.mungal@gmail.com

अस्मितामूलक विमर्श हाशिए पर खडे लोगों की मौजूदगी और उनकी निर्णय प्रक्रिया में भागीदारी तथा उनके जीवन संघर्ष पर विचार विवेचन करते हुए उनकी वास्तविक स्थिति का उदघाटन करना एवं उनके प्रति मानवीय संवेदना को उभारकर उनकी दशा में परिवर्तन लाना है । "सामान्यतः अस्मितामूलक विमर्श किसी सिद्धांत अथवा विचार की अपेक्षा व्यक्ति को महत्व देता है। यह उन.सभी विचारों, संस्थाओं, मान्यताओं का विरोध करता है जो मानवीय पक्षों को गौण बनाते है तथा उनकी समस्या एवं अधिकारों की उपेक्षा करते हैं। अस्मितामूलक विमर्श को व्यक्तिगत स्वतंत्रता का प्रबल समर्थक माना है और अस्तित्व के मूल में मानवतावादी दृष्टिकोण को स्थान दिया है। अस्मितामूलक विमर्श के बारे में हिंदी के प्रसिद्ध आलोकचक नामवरसिंह लिखते हैं," अस्मिता दया नहीं चाहती, अस्मिता हक चाहती है।"[1]

हिन्दी साहित्य में अस्मितामूलक विमर्श बीसवीं शताब्दी के उत्तार्द्ध में प्रारम्भ होकर शीघ्र ही विस्तृतफलक, स्वरूप व आयामों में अपने आपको व्याप्त कर लिया। आज अस्मितामूलक विमर्श को मानवीय और मानवेतर दो स्वरूपों में देखते है। मानवीय स्वरूप में स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, किन्नर विमर्श, आदिवासी विमर्श, बाल विमर्श, वृद्धविमर्श,किसानमजदूर विमर्श, युवा विमर्श, अल्पसंख्यक विमर्श इत्यादि रूपों के परिलक्षित होते हैं तथा मानवेत्तर स्वरूप मेंपर्यावरण विमर्श, पशुपक्षि यों का विमर्श, सांस्कृतिक विमर्श, भाषाई विमर्श इत्यादि देखने को मिलते हैं।

साहित्य में अस्मितामूलक विमर्श दो दृष्टिकोण से प्रचलित हुआ। इसमें प्रथम सहानुभूति परक लेखन है।इ सके अंतर्गत लेखक स्वयं उस पक्ष से संबंधित नहीं होता है जिस पक्ष का विमर्श वह साहित्य में कर रहा है। इस प्र कार के लेखन को परकाया प्रवेश मूलक लेखन भी कहा जा सकता है जिसमें लेखक दूसरोंके जीवन संघर्षों को देखता है, सोचता है,उनके जीवन संघर्षों को साहित्य में उकेरते हुए विचार व विवेचन क रता है तथा मानवीय संवेदना को जागृरत करने का प्रयास करता है। जैसे प्रेमचंद की रचना 'ठाकुर का कुआं' व 'स द्गति' में इस प्रकार का सहानुभूति परक अस्मिता मूलक विमर्श का रूप दृष्टिगोचर होता है।

दूसरा दृष्टिकोन स्वानुभूति परक लेखन है जिसमें साहित्यकार स्वयं उसे पक्ष से संबंधित है इसलिए उसमें अभिव्यक्ति की तीव्रता है। जैसे स्वयं दलित लेखक दलित साहित्य लिखें या आदिवासी लेखक आदिवासी साहित्य लिखें और स्त्री अपने अनुभूति को स्त्री विमर्श से व्यक्त करें। "आज के वैज्ञानिक, तकनीकी युग में समय जितनी द्रुतगति से बदल रहा है उतनी तेजी से समाज अपनी परंपरागत मान्यताओं से मुक्त नहीं हो पा रहा है। यह मुक्ति इतनी आसान है भी नहीं। इसके लिए अपने अतीत से समझौता करना पड़ता है और आवश्यकता पड़ने पर अतीत की कुछ कड़ियों को तोड़ना भी पड़ता है जो मुश्किल भरा है परंतु असंभव नहीं है। साहित्य इसमें हमारी मदद करता है। वह बदलते हुए समय के साथ समाज को जोड़ता है और परम्पराओं में जकड़ी सामाजिक व्यवस्था से

पीड़ित को बाहर निकालने में भी मदद करता है। चाहे वह पीडित स्त्री हो, आदिवासी हो, दलित हो, किसान हो, किन्नर हो, दिव्यांग हो या फिर कोई और साहित्यि भेदभाव नहीं करता।" [2].

अस्मितामूलक विमर्श की अवधारणा और स्वरूप :

सन 1960 के बाद भारतीय साहित्य की समीक्षा में विमर्श शब्द का प्रयोग हुआ। भारतीय व्यवस्था के दुष्ट चक्र में दबे कुचले लोग स्वतंत्रता के बाद शिक्षा पाकर जागृत हुए और अपनी अस्मिता के लिए संगठित होकर संवैधानिक अधिकारों की मांग करने लगे। सदियों से पीड़ित, सुविधाओं से वंचित यह वर्ग अब अपनी आपबीती की स्वानुभूति साहित्य में दर्ज करने के लिए बाध्य हुए। उनकी वेदना, पीड़ा, समस्या, संघर्ष और आक्रोश का स्वर ही साहित्य में विमर्श के रूप में शुरू हुआ है।

विमर्श शब्द का शाब्दिक अर्थ है- विचार मंथन, समीक्षा,आलोचना, गुण- दोष का विचार या विवेचन अथवा परामर्श। प्रस्थापित साहित्य में पहले इसका विरोध हुआ लेकिन अब विमर्श साहित्य में स्थापित होकर केंद्रीय स्थान पर चर्चा का विषय बना है।

विमर्श का प्रारंभ :

1. हिंदी साहित्य में 1970 को दलित विमर्श, स्त्री विमर्श - महाराष्ट्र प्रदेश में महात्मा फुले से मानी जाती है ।
2 .20 वी सदी में - डॉ बाबासाहेब अंबेडकर द्वारा दलित विमर्श का विस्तार हुआ।
3. मराठी में 1970 को महात्मा फुले ने स्त्री विमर्श और बाबासाहेब अंबेडकर द्वारा दलित विमर्श की शुरुआत मानी जाती है।

विमर्श का स्वरूप: -

विज्ञान ने अनेक सफल प्रयोग के बाद यह साबित किया है कि दुनिया के सभी मनुष्य जैविक स्तर पर समान है। बौद्धिक ,भावनिक और रंग- रूप, शरीर रचना की दृष्टि से उनमें अंतर हो सकता है और है भी परंतु जैविक स्तर पर तथा जरूरत के स्तर पर मनुष्य सर्वत्र समान है। विज्ञान की स्थापना विमर्श की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। क्योंकि विमर्श का बिंदु तो यही है कि मनुष्य फिर चाहे स्त्री हो या पुरुष वह सर्वत्र सामान।

यूरोप में रंग अथवा वंश के आधार पर भेद किया जाता था तो भारत में वर्ण, जाति के आधार पर। इस भेदवादी या असामान समाज रचना के विरोध में जब हाशिए का समाज संगठित होकर विद्रोह करने लगता है, तब उनकी दशा को लेकर विमर्श(बहस) की शुरुआत हो जाती है। इस प्रकार विमर्शों के मूल में श्रेणीबद्ध समाजरचना, रंग, वंश, लिंग यह कारण है।

विमर्श का मूल तत्व: -

सभी विमर्श के मूल में मनुष्य मात्र एक है, यही मूल तत्व होता है।

विमर्शों के विभिन्न आयाम:-

1. मनुष्य ने ऐसा भेदभाव क्यों किया?- मनुष्य मनोविज्ञान - यह विमर्श का मनोवैज्ञानिक आयाम है।
2. भेदभाव की शुरुआत कब से हुई? --मनुष्य इतिहास- विमर्श का ऐतिहासिक आयाम।
3. भेदभाव के मूल में धर्म है - विमर्श का यह धार्मिक आयाम-स्त्री और दलित विमर्श में
4. साहित्य में भेदभाव की अभिव्यक्ति - विमर्श का साहित्यिक आयाम-

साहित्यकारों का, उनकी रचनाओं का भी स्त्रीवादी या दलित विमर्श की दृष्टि से चिंतन किया जा सकता है।

अस्मितामूलक विमर्शों की वैचारिक पृष्ठभूमि:

1. दलित विमर्श :- में मार्क्सवादी, आंबेडकरवादी , पर्यावरणवादी तथा गौतम बुद्ध का प्रभाव

2. स्त्री विमर्श में :- पर्यावरणवादी, यूरोपीय स्त्रीवादी, मार्क्सवादी विचारधारा है।

3. आदिवासी विमर्श:-

I) वनवासी- हिंदू धर्म के अंतर्गत समा लेने की बात

II) जनतांत्रिक मूल्य- स्वतंत्रता, समता, बंधुता यह मूल्य है।

स्त्री विमर्श की अवधारणा

भारतीय साहित्य में अनेक प्रकार का साहित्य लिखा गया। लेकिन कुछ विषय ऐसे थे जिन्हें जानबूझकर नजरअंदाज किया गया। जैसे दलित, आदिवासी और स्त्री। प्रकृति ने स्त्री और पुरुष दोनों को महत्वपूर्ण माना है लेकिन मनुष्य ने इनमें भेद किया। भारत जैसे पुरुष प्रधान समाज में तो यू मानवीय अधिकारों से उसे न केवल वंचित रखा बल्की उसे उपभोग की वस्तु समझा। उसे शिक्षा से भी दूर रखा।

लिंग भेद के आधार पर विश्व के तमाम देशों में स्त्रियों को दोयम दर्जा दिया जाता रहा है ।कभी उसे देवी तो कभी उसे दासी बनाया गया, मगर सामान्य मानव के रूप में उसे कभी देखा या समझा नहीं गया। भारतीय समाज रचना में इस भेद का प्रमुख आधार मनुस्मृति यह ग्रंथ रहा है ।जिसने सामाजिक संविधान बनाकर स्त्री को दासी रूप में प्रतिष्ठित किया और लड़कियों के जन्म को ही अपशकुन माना।वैज्ञानिक युग में तो दहेज के कारण लिंग परीक्षण कर गर्भपात करवा दिया जाता है ताकि वह पैदा ही ना हो। कई तरह की हिंसा की जाती है । कम खाना देने से लेकर पढ़ाई न करने देना, छेड़खानी, बलात्कार, मार-पिटाई, अन्याय करना, तरह-तरह से सामाजिक शोषण, अंधविश्वास उनकी तकदीर में लिखी गई है।इन सब के खिलाफ औरत संघर्ष कर रही है।

स्त्रीवाद -

स्त्रीवाद अर्थात स्त्री के आदर और सम्मान की मांग करनेवाली विचारधारा। स्त्री जब घरेलू हिंसा के खिलाफ चुप्पी तोड़ती है तो उसे परिवार तोड़नेवाली कहां जाता है। स्त्री का गृहिणी होना, लक्ष्यहीन जिंदगी जीना, घरेलू कामों की बुद्धिहीन पुनरावृत्ति करना सबको प्रिय है किंतु वह इस निरस्त पूर्व जीवन पर रोष प्रकट करें तो वह घर तोड़नेवाली बनाई जाती है । एक स्त्री जो जीवन भर अपने पति की आकांक्षाओं, उम्मीद को सफल बनाने से इंकार करती है क्या उसे झगड़ा करने वाली कहां जाए? एक स्त्री अपने लिए जीना चाहती है, जिसके स्वयं अपने भी कुछ सपने, कुछ महत्वाकांक्षाएं हैं जो केवल एक तथाकथित आदर्श, दबी हुई, नम्र, त्यागमयी पत्नी बनकर नहीं रहना चाहती । क्या उसे गृहस्थी उजाड़नेवाली कहा जा सकता है? एक स्त्री समान व्यवहार की मांग करती है तो उसका परिवार और पति नहीं देता, तो घर की शांति भंग करने का दोष स्त्री पर नहीं बल्कि औरों पर जाता है। इसी का चिंतन स्त्रीवादी साहित्य में है।"स्त्री-दृष्टि में स्त्री-विमर्श वह मानवीय चिंतन धारा है जो स्त्री-चेतना को जागृत कर , उसकी स्वतंत्रता की वकालत करती है , इसे ही स्त्री की भाषा में नारीवाद कहते हैं।"[3]

20 वीं सदी में आकर स्त्रीवाद के कारण सामाजिक, वैज्ञानिक चिंतन शुरू हुआ । पितृसत्ता को चुनौती दी जाने लगी। इसी से कई नारीवादी सिद्धांत निकले जैसे उदारवादी, मार्क्सवादी, समाजवादी, दलित, पर्यावरण आदि । हर एक ने स्त्री के गुलामी का कारण अपने-अपने तरीके से खोजा। इसी संदर्भ में क्षमा शर्मा कहती है कि "स्त्री विमर्श न मजाक है ना अपवाद वह एक ही समय हमारे देश काल और पूरी दुनिया से जुड़ा है वह हमारे समय की जरुरत है वह समग्र आर्थिक राजनीतिक सामाजिक भाषिक और सांस्कृतिक विमर्श हैं"[4]

नारी विमर्श की वैचारिकता

1. पितृसत्ताक परंपरा - विश्व के तमाम देशों की संरचना है पुरुषसत्ताक व्यवस्था द्वारा बनाई गई है। सभी संसाधनों और निर्णय पर पुरुषों का अधिकार है। स्त्रियों के मानव अधिकार को समाप्त किया गया।

2. धर्म के क्षेत्र में पितृसत्तात्मकता - बनी रहे इसके लिए धर्म, शास्त्र, परंपरा, कर्मकांड, रुढियां आदि के माध्यम से उसके सोच को बदला जाने लगा ।

3.नारी की तीन रूपों में स्थापना -

आदर्श बेटी, आदर्श पत्नी और आदर्श माता केवल इन तीन रूपों में उसे देखा जाने लगा। वही उसके मन पर भी बिंबित किया गया। इसीमे वह भी अपने जीवन की सार्थकता मानने लगी।

4. नारी सौंदर्य को महत्व - नारी को उपभोग की वस्तु मानकर उसके सौंदर्य को महत्व दिया जाने लगा। नारी सौंदर्य के लिए पुरुषों में स्पर्धा के लिए युद्ध हुए। विश्व के अधिकतर साहित्य में ऐसी ही कहानी है। विश्व के सभी प्राचीन और मध्यकालीन साहित्य के केंद्र में स्त्री शरीर है स्त्री नहीं।

5. नारी जीवन में परिवर्तन

औद्योगिक क्रांति, विज्ञान और शिक्षा विकास से ऐसा स्पष्ट होने लगा की स्त्री पुरुष में विलक्षण क्षामताएं है। इसलिए जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उसे अधिकार दिया जाने लगा मताधिकार, सत्ता में भागीदारी और मानवाधिकार को माना गया। वह भी अपने मानवाधिकार की मांग करने लगी।

स्त्री विमर्श के सबसे बड़ी प्रवक्ता ' 'सीमोन द बुआ' ने अपने ग्रंथ 'द सेकंड सेक्स' में घोषित किया कि "स्त्री जन्म नहीं लेती उसे बनाया जाता है।" [5]

यूरोप में अपने अधिकारों के लिए स्त्रियों को बड़ा संघर्ष करना पड़ा। भारत में नवजागरण स्त्रियों के प्रश्नों से शुरू हुआ था। राजा राममोहन राय का योगदान इसमें महत्वपूर्ण है।

6.राजनीतिक व्यवस्था में महिलाओं की संख्या बहुत कम है।

7. शिक्षा व्यवस्था में पुरुषों का ही बोलबाला हैं।

8.प्रसार माध्यमों में भी वही है

9. सांस्कृतिक व्यवस्था

10.सामाजिक व्यवस्था

11.आर्थिक क्षेत्र में भी पूरी तरह से सामानता नहीं है

निष्कर्ष: अस्मितामूलक विमर्श के निर्माण में विभिन्न विचारधाराओं का योगदान है। इन विचारधाराओं ने विभिन्न प्रकार की अस्मिताओं को उभारने, उन्हें स्वर और पहचान देने का कार्य किया है। अस्मिता विमर्श की दशा और दिशा दोनों अभी भी भविष्य के गर्भ में छिपे है । हम कहां थे, कहां है और कहां जाएंगे इन तीन प्रश्नों के उत्तर के इर्द-गिर्द ही सभी साहित्यिक विमर्श है। हम कहां थे इसका विश्लेषण साहित्य ने विद्रोह, वेदना , आक्रोश के रूप में किया है। कहां है- इसकी खोज अभी जारी है। यह आत्मपरीक्षण की स्थिति।

स्त्री विमर्श पर यह प्रश्न उठाया जाता है कि कहीं पुरुष सत्ता का विरोध करते-करते स्त्रीसत्ता का विकास न हो जाए और दलित विमर्श के बारे में यह संदेह व्यक्त किया जाता है कि कहीं ब्राह्मण दलित के स्थान पर और दलित ब्राह्मण के स्तर पर न चला जाए लेकिन ऐसा हो जाए तो यह विमर्श की सार्थकता नहीं होगी। क्योंकि ना मातृसत्ता हो, न पितृसत्ता और न वर्णव्यवस्था, न कोई आदिवासी होने से कनिष्ठ, ना दिव्यांग होने से कमजोर, न वृद्ध होने से महत्वहीन । विमर्श का सही उद्देश्य विशुद्ध मानवता है और समतावादी व्यवस्था निर्माण करना है।

संदर्भ:

1. ठाकुर - समीक्षा (संपादक) 2006, बात-बात में बात, संपादक :, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या - 292

2. किरण तिवारी - हिंदी साहित्य और अस्मिता मूलकविमर्श- आनंद प्रकाशन ,जनवरी 2022, पृष्ठ संख्या- भूमिका से

3. डॉ. नगेन्द्र - हिंदी साहित्य का इतिहास, मयूर बुक्स,१९७३, पृ.४३२-४३३

4. क्षमा शर्मा - स्त्रीवादी विमर्श समाज और साहित्य,राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2008, पृष्ठ.5 ,।

5.https://vishwahindijan.blogspot.com/2021/01/blog-post_3.html?m=1

रत्नकुमार सांभरिया के 'साँप' उपन्यास में घुमंतुओं का स्थाई जीवन के लिए संघर्ष

डॉ.सुनील गुलाबसिंग जाधव,
हिंदी विभाग, यशवंत महाविद्यालय, नांदेड़ मो.९४०५३८४६७२

अंग्रेजों के विरोध में जो आजादी का आंदोलन चल पड़ा था| उसमें मात्र केवल कुछ जातियों और गिने चुने वीरों का नाम बड़े सम्मान के साथ लिया जाता है किंतु यह देश कई जातियों से भरा पड़ा हुआ है, उसी में से हैं; घुमंतू जाति| जिन्होंने आजादी के आंदोलन में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। अंग्रेज उन्हें पकड़ पाने में असमर्थ सिद्ध हो रहे थे| उनसे विवश होकर घुमन्तूजातियों को अंग्रेजों ने १८७१ में जरामपेशाएक्ट लागू कर जन्मजात अपराधी दर्जा दे दिया था | ९४ साल तक इस काले धब्बे के तहत जीने वाली इन घुमंतू जातियों को भारत आजाद होने के बाद १९५३ में उस कानून से मुक्त कर तो दिया गया| लेकिनहमारा समाज और राजनीति और पुलिस व्यवस्था की नजरों में हमेशा अपराधी बने रहे। यह हमारे देश की विडम्बना रही कि जो पुरस्कार और सम्मान के हकदार थे | इस लम्बे अवधि में उनके अस्तित्वहीन, अभिशप्त, गरीबी, दरिद्रता से युक्त जीवन की ओर किसी को देखने की, ध्यान देने की आवश्यकता तक महसूस नहीं हुई। जिन्होंने अपने वीरता का परिचय देकर अंग्रेजों से लोहा लिया, उन जातियों को एक अभिशप्त जीवन जीने के लिए छोड़ दिया गया | उन्हीं अभिशप्त जीवन जी रहे कालबेलिया, सपेरा, बंजारा, नट,कलंदर, मदारी,बहुरूपिया आदि घुमंतू-खानाबदोशों के संघर्ष पूर्ण जीवन कोरत्नकुमार सांभरिया के २०२२ में प्रकाशित५०० पृष्ठों में लिखें 'सांप' उपन्यास में सजीव एवं संवेदनशील रूप में चित्रित किया गया हैं | निम्न बिन्दुओं के आधार पर उनके संघर्ष पूर्ण जीवन को देखा जा सकता हैं |(1)पेट के लिए, मृत्यु के साथ जीवन संघर्ष(2)पुलिस,नेता और गुंडों से जीवन संघर्ष(3)अपराधी जाति के धब्बे से अस्तित्व ले संघर्ष(4)स्थाई जीवन के लिए संघर्ष|

(१)पेट के लिए और मृत्यु के साथ जीवन संघर्ष-

घुमंतुओं की विभिन्न जातियों का उल्लेख उनके काम के अनुसार लेखक ने उपन्यास में पूरी संवेदना के साथ उकेरा हैं | एक स्थान से दूसरे स्थान पर अपना परिवार-डेरा लेकर अपना पेट पालते खानाबदोश गरीबी, भूख और तंगहाली से भरा जीवन जीते हुए नजर आते हैं | इतना ही नहीं बल्कि वे मौत के साथ जीते हैं और मौत से जूझते हैं | यही उनके पेट भरने का साधन हैं | उनकी इस दयनीय वास्तविकता का चित्रण करते हुए उपन्यासकार कहते हैं,**"ये लोग धरती पर सोते हैं। निरा जंगल है। साँप-बिच्छू, गोहरे, कीड़े, मकौड़े, कीट-पतंगें, मक्खी, मच्छर, डाँस हैं। मौत के साया जूझते बद नसीबों की बेकसी। पल, पहर, दिन, हफ़्ते, महीने, साल, सदियाँ दरिद्रता की दरिया में रहते बीत गये। भूख, गुरबत और तंगहाली! यातना-शिविर जैसे डेरे। समाज के अपराधी । क़ुदरत के क़ैदी । हे, योजनाकारों इन डेरों में एक रात गुजार तुम्हारी जय जयकार होगी|"** १ उपन्यास में प्रमुख पात्र के रूप में कालबलिया जाति के सपेरे लखीनाथ के कथावस्तु को प्रतिनिधि रूप में चित्रित करते हुए यह उपन्यासकार लखीनाथ के माध्यम से इस सत्य को उजागर करते हुए आगे कहते हैं, **"म्हारी रोजी-रोटी को जरियों हुवै जहर |चुपचाप बेच देवा उने| टेम देख |"** २ **"नाग पंचमी को आमदनी हो जाया करती हैं |"३ "हम ना पाला बेकार के इस जीव ने | हम तो मौत से अचम्भा पाला | दिखावा | नाज-पैसा पांवा| म्हारी रोजी-रोटी सेंत-मेत न बणे| मौत लडियानो| मौत खिलानो|"**४

(२)पुलिस,नेता और गुंडों से जीवन संघर्ष-

घुमंतुओं अस्थाई जीवन संघर्षों से भरा हुआ हैं | कभी पुलिस तो कभी राजनेताओं का तो कभी पुलिस और राजनेताओं द्वारा भेजे गये गुंडों के अन्याय और अत्याचार का शिकार होना पड़ता हैं | कभी महिलाओं का यौन शोषण होता हैं, तो कभी खानाबदोशों के डेरो पर कातिलाना हमाला होता है | उनके डेरे दिन दहाड़े जलाये जाते

हैं | इस समस्या को स्पष्ट करते संवाद यहाँ उद्धृत हैं,**"दलितों और आदिवासियों पर आए दिन होते अत्याचारों, महिलाओं पर बढ़ती यौन हिंसा, महँगाई की मार, मन्त्रियों की घूसखोरी और कदाचार की घिनौनी खबरों के बरअक्स सरकार को न केवल प्रश्नकाल, बल्कि शून्यकाल में भी नीचा देखना पड़ रहा है। खानाबदोशों के डेरों पर हुआ कातिलाना हमला और आगजनी की खबर विपक्ष के लिए ज्वलन्त मुद्दा होगा। 'प्रदेश में दिनोंदिन बिगड़ती कानून व्यवस्था इतनी बदतर हुई, घुमन्तुओं के डेरे फूंके जा रहे हैं|"**५ वहीं पर पुलिस द्वारा कभी उनकी बकरियाँ, मुर्गे जबरदस्ती से छिनकर मारकर खा जाते हैं तो कभी असली चोर-लुटेरों के बदले खानाबदोशों को जेल में डाल दिया जाता हैं, उपन्यास की एक घुमंतू पात्र सरकीबाईमुख्यमंत्री के सामने पुलिस के अत्याचार को व्यक्त करते हुए कहती हैं,**"हुकमम्हारोजीणो-मरणोबरोबर है। दारीकापुलसयाम्हारा मुरगा, बकरा खा जावै । रातबासो कर जावै । बोलां मुँह खोलां। घणो कूटे-पीटे। ले जाकेथाणा में पटक दें। चोर-लुटेरा का बदला में म्हाराआदमियाँ की जेल करा दे।"६**

मुख्यमंत्री मंत्री खानाबदोशो की समस्याओं से रूबरू होने के बाद समाज के बौद्धिक दिवालियापन पर प्रश्न चिन्ह उपस्थित कर देते हैं,उन्हें स्थाई जीवन, मकान, उनका अस्तित्व उन्हें प्रदान करते हैं, **"पुलिस इन लोगों को एक जगह टिकने नहीं देती, यह सरकारी दहशतगर्दी हुई। समाज इनको दुत्कार- फटकार देता है, यह सामाजिक अन्याय हुआ। हम इनकी घुमक्कड़ी को स्वाभाविक मानते हैं, यह हमारा बौद्धिक दिवालियापन है। इनकी बदहाली के लिए समाज और सियासत दोनों बराबर जिम्मेदार हैं।"---- "शरणार्थी स्थापित हो गये। देश के मूल निवासी आज भी खानाबदोश, घुमन्तू, घुमक्कड़, विमुक्त जातियाँ हैं। जन्म जन्मान्तर से विषमताओं, अभावों, हताशाओं, कुदरती कहर और समाज के जहर से जूझ रहे हैं। जज्बाती वीरों की धीरता और संघर्ष को मैं सलाम करता हूँ। संत्रास जीते हैं, विलापते नहीं।"७**

(३)अपराधी जाति के धब्बे से अस्तित्व ले संघर्ष-

अंग्रेजों के विरोध में जो आजादी का आंदोलन चल पड़ा था| उसमें मात्र केवल कुछ जातियों और गिने चुने वीरों का नाम बड़े सम्मान के साथ लिया जाता है किंतु यह देश कई जातियों से भरा पड़ा हुआ है, उसी में से हैं; घुमंतू जाति| जिन्होंने आजादी के आंदोलन में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। अंग्रेज उन्हें पकड़ पाने में असमर्थ सिद्ध हो रहे थे| उनसे विवश होकर घुमन्तू जातियों को अंग्रेजों ने १८७१ में जरामपेशाएक्ट लागू कर जन्मजात अपराधी दर्जा दे दिया था | **"सर, एक समय ये जातियाँ वीर थीं।"...."हाँ सर, अँग्रेजी राज के लिए खतरा बन गयी थीं। खूब काबू करने के बावजूद सरकार विरोधी इनकी गतिविधियाँ बदस्तूर जारी रहीं। पानी सिर तक आया, तो अँग्रेज सरकार ने सन् 1871 में जरायमपेशाएक्ट लागू कर इन जातियों को जन्मजात अपराधी होने का दर्जा दे दिया। दुनिया का सबसे काला कानून था वह। अनर्थ । घिनौना।"८**

९४ साल तक इस काले धब्बे के तहत जीने वाली इन घुमंतू जातियों को भारत आजाद होने के बाद १९५३ में उस कानून से मुक्त कर तो दिया गया| लेकिन हमारा समाज और राजनीति और पुलिस व्यवस्था की नजरों में हमेशा अपराधी बने रहे। **"जी सर, इकतीस अगस्त, 1953 को वह एक्ट समाप्त कर इन्हें विमुक्त जातियाँ घोषित कर दिया गया। सरकारी कागजातों में इनके जीवन तिमिर को मिटाकर उजियारा भले दिखा दिया हो, अँधेरा वही का वही है। स्याह।"९**

(४)स्थाई जीवन के लिए संघर्ष-

उपन्यास की प्रमुख महिला पात्र जिसे हम उपन्यास की नायिका के रूप में देख सकते हैं | वह खानाबदोशों के वास्तविक जीवन को उनके डेरे पर जाकर देखती हैं और उनके स्थाई माकन, जमीन के लिए संघर्ष करती हैं | वह देखती हैं कि घुमंतुओं की महिलाओं को खुले में नहाना पड़ता हैं, **"महिला को चौड़े में नहाते देख मिलन को तरस आया और रोष हुआ। नेत्र वक्र हुए, 'हम शहरी महिलाएँ बाथरूम की सिटकनी चढ़ा कर इस सजगता से कपड़े**

उतारती हैं, स्नान करते अंगुली नहीं देख पाये। यहाँ खुले आँगन उघाड़े बदन महिलाएँ नहाती हैं। सरकार महिलाओं की निजता की सुरक्षा की डींगें हाँकती नहीं थकती|" १०

भारत आजाद होकर आज एक लम्बा आरसा हो गया हैं किन्तु घुन्तुओं को के पास न स्थाई जमीन हैं, ना ही मकान हैं और नाहीं उनके पास राशन कार्ड, वोटर आयडी, हैं | इतना ही नहीं बल्कि उनका कोई व्यक्ति मर जाता हैं तो उनके पास श्मशान भूमि भी नहीं हैं | अपने जनों का दाह संस्कार उन्हें छिपकर करना पड़ता हैं | सरकार की बहुत सारी जमीन खाली पड़ी हैं | जिसे देकर घुमंतुओं को स्थाई जीवन दिया जा सकता हैं | किन्तु कभी गुंडों का भय होता हैं, तो कभी पुलिस वालों का भय उन्हें अपना डेरा सर पर उठाकर भागने के लिए विवश कर देता हैं | मानो वे अपने ही देश में बेगाने सा जीवन यापन कर रहे हैं | उनके पास यदि खेत होते तो वे मौत के साथ जीवन नहीं जी रहे होते | इसी समस्या को लखीनाथ मुख्यमंत्री की सामने व्यक्त करते हुए कहता हैं,**"हम घुमक्कड़, लोगां की जिनगानी है कोई? देस आजाद हुयो, कितना बरस बीत गया, म्हारा सिर पे छाया तक ना। खाली पड्यौ सरकारी चक चाका। बुहार सुधार डेरांबसावां। सरकार की नजर पड़ जावै। पुलिस को डण्डोखुड़कजावै। डेरा सिर पे उठा के भागणोपड्यै रात-बीरात। सबसे पुराना हम। अपणा ही देस में बेगाना-बीराना हम।' उसने साँस खींची और खेतों की ओर देखते छोड दी, 'म्हारे भी एक-एक खेत होतौ, मौत ने घर में क्यूँराखता? मौत के साथ क्यूँ जीता? मौत को बोपार' क्यूँ करता " ११**

निष्कर्ष :-

कहा जा सकता हैं कि 'साँप' उपन्यास (1)पेट के लिए, मृत्यु के साथ जीवन संघर्ष(2)पुलिस,नेता और गुंडों से जीवन संघर्ष(3)अपराधी जाति के धब्बे से अस्तित्व ले संघर्ष(4)स्थाई जीवन के लिए संघर्ष| के साथ घुमंतुओं के खानाबदोशी से भरे हुए संघर्ष पूर्ण जीवन को पूरी संवेदना के साथ वास्तविकता को शब्दों के चल चित्र के रूप में हमारे सम्मुख प्रस्तुत करता हैं | मानों हम सारी घटनाएँ अपने समाने घटित होते हुए देख रहे हैं | और हम घुमंतुओं के जीवन का एक हिस्सा बन जाते हैं | कभी उनकी भूख, गरीबी, दरिद्रता हमें दिखाई देती हैं तो कभी पेट के लिए मौत के साथ जीवन जीने के लिए विवश खानाबदोश | कभी पुलिस,गुंडों, नेताओं के अन्याय और अत्याचार का शिकार होते डेरे | असुरक्षित महिलाओं का जीवन, रात-बेरात डेरे के लोगों की पिटाई, असली चोरों के बदले डेरे के आदमियों को पकड़ा जाना, तो कभी बगावत के बदले डेरों को जलाकर राख कर देना | मानों एक आम बात सी दिखाई देती हैं | अपने पेट भूख और अस्तित्व के लिए हर रोज का संघर्ष, वोटर कार्ड, राशन कार्ड, श्मशान भूमि का आभाव, कोई भी आओ कभी भी डेरे के जीवन को नष्ट करके जाओं, महिलाओं पर बलात्कार जैसी कई समस्याओं से घुमंतुओं को जीवन संघर्ष करना पड़ता हैं |

सन्दर्भ-

(1)रत्नकुमार सांभरिया- साँप-सेतु प्रकाशन, नोएडा-प्रथम संस्करण-२०२२ पृष्ठ.२९

(2)रत्नकुमार सांभरिया- साँप-सेतु प्रकाशन, नोएडा-प्रथम संस्करण-२०२२ पृष्ठ.३४

(3)रत्नकुमार सांभरिया- साँप-सेतु प्रकाशन, नोएडा-प्रथम संस्करण-२०२२ पृष्ठ.३८

(4)रत्नकुमार सांभरिया- साँप-सेतु प्रकाशन, नोएडा-प्रथम संस्करण-२०२२ पृष्ठ.३९

(5)रत्नकुमार सांभरिया- साँप-सेतु प्रकाशन, नोएडा-प्रथम संस्करण-२०२२ पृष्ठ.१९७

(6)रत्नकुमार सांभरिया- साँप-सेतु प्रकाशन, नोएडा-प्रथम संस्करण-२०२२ पृष्ठ. 257

(7)रत्नकुमार सांभरिया- साँप-सेतु प्रकाशन, नोएडा-प्रथम संस्करण-२०२२ पृष्ठ. 262

(8)रत्नकुमार सांभरिया- साँप-सेतु प्रकाशन, नोएडा-प्रथम संस्करण-२०२२ पृष्ठ. 259

(9)रत्नकुमार सांभरिया- साँप-सेतु प्रकाशन, नोएडा-प्रथम संस्करण-२०२२ पृष्ठ. 260

(10)रत्नकुमार सांभरिया- साँप-सेतु प्रकाशन, नोएडा-प्रथम संस्करण-२०२२ पृष्ठ.२१५

(11)रत्नकुमार सांभरिया- साँप-सेतु प्रकाशन, नोएडा-प्रथम संस्करण-२०२२ पृष्ठ.५७

B.Aadhar' International Peer-Reviewed Indexed Research Journal

Impact Factor -(SJIF) –8.632, Issue NO, (CDXLVI) 451-A

ISSN : 2278-9308 December, 2023

दलित उपन्यासों में दर्दनाक सामाजिक स्थिति का चित्रण

डॉ शंकर गंगाधर शिवशेट्टे

सहयोगी प्राध्यापक हिन्दी विभागाध्यक्ष श्री बंकटस्वामी महाविद्यालय,बीड

sgshivshette@gmail.com Mob No 9960562049

वर्तमान समय में दलित साहित्य पर साहित्य जगत दो केमो से स्पष्ट बात नजर आ रहा है यही नहीं समझो राजनीतिक हलकों में भी इसने अपनी दस्तक दी है। जहां एक और दलित साहित्य कुछ विद्वानों की दृष्टि में उत्कृष्ट साहित्य है वहीं दूसरी और कुछ विद्वानों की दृष्टि में दलित साहित्य का वजूद ही नहीं है। दोनों के अपने-अपने तर्क एवं अवधारणाएं भी है परंतु आज दलित साहित्य ने अपनी पहचान स्थापित कर ली है दलित साहित्य के माध्यम से वर्तमान में दलित अपनी अस्मिता को पहचानने का प्रयास कर रहा है। कि आखिर दलित कौन है, उनकी स्थिति क्या है, क्या थी? और उसकी इस स्थिति के लिए वास्तव में कौन उत्तरदाई है उसकी संस्कृति एवं पूर्वजों की पहचान क्या है? इस चिंतन एवं अभिव्यक्ति को क्या दलित साहित्य कहते हैं।

दलित जीवन ज्यो-ज्यों जटिल होता गया त्यों-त्यों नये प्रतिमानों के साथ साहित्य रूपों के औचित्य की बात भी गम्भीर होती गई। फलतः दलित जीवन के मार्मिक पक्षों के उद्घाटन में साहित्य का परम्परागत रूढ़िगत ढाँचा निरर्थक सिद्ध होने लगा। साहित्यिक, संवेदना के अभिव्यक्ति की इस समस्या से जूझने के लिये नई सम्भावनाओं के तलाश का सिलसिला शुरु हुआ क्योंकि सृजन-शिल्प प्रतिमानों की कसौटी पर भी वह अपर्याप्त लगने लगा था। यहाँ एक ऐसे साहित्य की कल्पना की जाने लगी, जिसमें दलितों के भी नये- जीवन विधान का संगीत हो और साथ ही वह परम्परागत सौन्दर्य-विधान की रूढ़ियों से भी मुक्त हो। जिसमें नये सत्य के साक्षात्कार की क्षमता हो, जो दलितों को आधुनिक जीवन और परिवेशगत विविधताओं को वाणी देने में पूरी तरह समर्थ हो। वैसे भी प्रत्येक युग की अपनी एक विशेष दृष्टि होती है, जिसमें दलित-साहित्य आधुनिक युग की विशिष्ट देन है। यह देश और काल की परिस्थितियों एवं क्षणों को आयामित करने वाली हिन्दी साहित्य की एक स्वाभाविक नई विधा है, जहाँ उपन्यास, नाटक, कहानी, काव्य, आत्मकथा, एवं संस्मरणों के माध्यम से दलितों की पीड़ा को वाणी दी गई है।

दलित साहित्य लेखन में दलित उपन्यासों का महत्व है जिसमें जीवन समग्र रूप में प्रस्तुत होता है। उपन्यासकार के समक्ष जीवन के सभी पहलुओं पर विचार करने की सुविधा होती है जिसमें दलितों के सामाजिक आर्थिक शैक्षणिक धार्मिक नीति और राजनीतिक संदर्भों से जुड़े जीवन का वर्णन किया जाता है। दलित उपन्यास एक व्यक्ति विशेष पर केंद्रित न होकर पूरे समाज का खाका प्रस्तुत करता है। देश और समाज की समस्याओं परंपराओं एवं नीतियों के अन्य के विरुद्ध एक अलग अवधारणा की स्थापना के उद्देश्य से दलित उपन्यास लिखे गए हैं तथा समाज में व्याप्त सामाजिक बुराइयों तथा विषमता वादी परिस्थितियों को केंद्रित करके उनकी विद्रूपताओं का चित्रण उपन्यास में किया जा रहा है समाजवादी व्यवस्था की संघर्षरत मानोभावना और मनोकामना को चित्रित करने का काम दलित उपन्यास कॉलोनी किया है जिसमें शिक्षा से वंचित दलित सामान्य का संवैधानिक अधिकार प्रकार अब शिक्षा पानी लगी है। गांव से शहर जाकर अच्छे पदों पर नौकरियां करने लगी है तथा साथ ही वे समता स्वतंत्रता और साम्मान के साथ अपने अधिकारों को समझने लगे हैं। आज तक साहित्य की सीमा से बाहर रहे दलित पिछड़े उपेक्षित संभलैंगिक स्त्रियां आदि को दलित उपन्यासकारों ने अपने उपन्यास में स्थान दिया है।

आज का उपन्यास यथार्थवादी बनता जा रहा है जो मानव जीवन में हमेशा परिवर्तन को ढूंढता है और इसी परिवर्तन के द्वारा यथार्थ विद्रोह या नई चेतना का जन्म दलित उपन्यास के माध्यम से हुआ है जिसमें नारी चेतना ग्रामीण चेतन तथा दलित चेतना जैसी विषयों को आज के समय में चिंतन की आवश्यकता दिखाई देती है।

दलित उपन्यासकार जयप्रकाश कर्दम द्वारा लिखित छप्पर उपन्यास पश्चिमी उत्तर प्रदेश के छोटे से गांव मातापुर के यथार्थ जीवन पर आधारित है इसमें ग्रामीण एवं नागरिक जीवन का चित्रण है अधिकतर कामकाजी लोग सचित पीड़ित और अन्य की शिकार है यहां पर जयप्रकाश कर्दम ने अपने उपन्यास छप्पर के पात्र सुख और रमिया के माध्यम से समूची दलित संवेदना को एक शिद्दत के साथ उजागर करने का प्रयास किया है। इस उपन्यास में दो मुख्य पात्र है एक सुख और दूसरा उनका बेटा चंदन। यह पत्र समाज परिवर्तन और दलित उत्थान के लिए चिंतित है सुख अपने बेटे चंदन को पढ़ने के लिए शहर भेजता है। ठाकुर हरनाम सिंह और कांडे पंडित को चंदन का शहर में पढ़ना सवर्णों के प्रति अपराध करने जैसा लगता है।

सुकखा पर सवर्ण वर्चस्ववादी लगातार दबाव डालते हैं कि वह अपने बेटे चंदन को शहर से वापस बुला ले लेकिन सुकखा मौन रहता है और मन-ही-मन निश्चय करता है कि वह चंदन को जातीय है गुलामी की जिंदगी नहीं जीने देगा। वह उसे पढ़ाएगा। स्वयं अनपढ़ सुकखा शिक्षा के महत्व को समझता है। सुकखा चंदन को पढ़ा लिखाकर बड़ा आदमी बनना चाहता है। रमिया भी उनका पूरी तरह हौसला बढ़ाती है। परिस्थितियों के कारण रमिया घबडाती है तो उसे समझाते हुए सुकखा कहता है-"चुप रह पगली, कोई पेट से बड़ा बनकर आता है। पढ़ लिखकर बड़े बनते हैं सब। क्या पता हमारा चंदन भी कल को कलेक्टर या दरोगा बन जाए। अपनी चिंता छोड़ हमें थोड़े दुःख उठाने पड़ रहे हैं तो क्या, दुख के बाद सुख आता है। हमारे दिन भी बहुरंगी, कभी- ना- कभी।"१

चंदन शहर में पढ़ने के लिए जाता है तथा वह जहां पर रहता है वह एरिया संतनगर की झोपड़पट्टी का है। वहां के लोगों में हरिया के व्यक्तित्व का चित्रण लेखक ने बखूबी से किया है। शहर और गांव में दलितों-गरीबों की जिंदगी की करुणा को प्रस्तुत किया है। गांवों और शहरों की स्थिति का अंतर बताते हुई लिखा है-"शहर की कल्पना कैसी थी चंदन की, और वह क्या पता है। वह सोचता था शहर को लेकर कि-न वहां गांवों की तरह आर्थिक तंगी होगी, न रोटी और कपड़े की समस्या। न पुलिस और कानून का आतंक होगा, न ठाकुर जमींदारों की हिस्सा और आतंक का मनमाना राज।न सेठ साहूकारों की सुद की निर्मम मार होगी, न ऊंच -नीच और छुआछूत की जगह चोरी, डकैती या अन्य तरह की असुरक्षा ही।"२ लेकिन गांव और शहर के लोगों की स्थिति में अंतर नहीं था।

यहां भी बड़े लोग इनका शोषण करते थे। संतनगर में हरिया के यहां चंदन रहता था। हरिया के द्वारा झोपड़पट्टी में रहने वाले दलित गरीबों की अच्छाइयों बुराइयों का हमें पता चलता है। हरिया हमेशा शराब के नशे में चूर रहता है। हरिया के द्वारा चंदन की आवश्यकताओं का ध्यान एक पिता से अधिक रखता है फीस न दे पाने के कारण वह जब चंदन की पढ़ाई छुटती देखता है तो चंदन की शिक्षा का खर्च अपने ऊपर ले लेता है। हरिया को भी एक उम्मीद थी कि चंदन पढ लिखकर बड़ा आदमी बने। वह एक स्थान पर कहता भी है-"पढ़ो बेटा, पढ़ो, पूरी मेहनत से पढ़ो। मन लगाकर पढ़ो, ऊंची तालीम पाओ और बड़े हौदे तक पहुंचो।"३

चंदन इस मोहल्ले में दलितों के नंगे, मलिन वस्त्रो में आवारा घूमते बच्चों के लिए स्कूल खोलकर उनमें शिक्षा रूपी मंत्र फूंकाता है और उन्हें सामाजिक गुलामी का एहसास कराता है। उनके मन में मानवीय चेतना के प्राण संचारित करता है। वहां स्कूल में चंदन की मुलाकात एक कमला नमक युवती से होती है। कमला सामूहिक बलात्कार की शिकार हुई हरिया की ही बेटी है। वह बलात्कार से पैदा हुए अपने बेटे खिलाड़ी को पढ़ना चाहती है। धीरे-धीरे चंदन और कमला वैचारिक और भावनात्मक रूप से एक- दूसरे के नजदीक आते हैं। दूसरी और रजनी भी चंदन के

प्रति भावात्मक स्तर पर जुड़ी हुई है। इस उपन्यास में भी फिल्मी दृश्य की भांति हीरो बना चंदन मंच पर जनसभा को संबोधित करता है। वह जैसे ही नीचे उतरता है दूषित मानसिकता वाले लोग चंदन के सिर पर लाठियों से प्रहार करती है। लेकिन कमल ने जैसे ही देखा वह द्रुतगति से आगे बढ़ी और चंदन को धक्का देकर स्वयं उस वार को सहगई जिसके कारण घटनास्थल पर ही उसकी मृत्यु हो जाती है। ।

चंदन अपने समुदाय में परिवर्तन लाना चाहता है। उपेक्षित व अपमानित लोगों को उनका जन्म सिद्ध अधिकार दिलाना चाहता है। वह जानता है कि स्वतंत्र अस्तित्व के लिए उनको खुद लड़ना है। एक संदर्भ में वह रजनी से कहता है- "हिंसा का जवाब हिंसा नहीं है रजनी! हिंसा का जवाब अहिंसा से दिया जाना चाहिए। हमारा संघर्ष न्याय और समानता के लिए है। अतीत में हमारे साथ कैसा सलूक किया गया है। हम उस पर जाना नहीं चाहते, क्योंकि उससे कोई अच्छा परिणाम निकलने की आशा नहीं है। हम विरोध नहीं सामंजस्य चाहते हैं।"४

चंदन का आंदोलन शहर से होता हुआ गांव तक पहुंचता है। मातापुर में रजनी, जो ठाकुर हरनाम सिंह की बेटी है, बचपन से आज तक असमानता को देखते आई है, उसे दलितों के प्रति हमदर्दी है। रजनी को परिपक्व समझदार संवेदनशील युवती के रूप में दिखाया गया है। वह एक स्थान पर कहती है कि, "कौन कहता है व्यवस्था को बदला नहीं जा सकता। आखिर आदमी की ही तो बनाई हुई सारी व्यवस्थाएं और सारी व्यवस्थाएं आदमी के लिए ही है।"५

दलित चिंतन के ऊपर सत्यप्रकाश जी ने 'जस-तस भई सवेर' शीर्षक से ज्ञात होता है कि जैसे-जैसे सवेरा हुआ यानी दलितों में चेतना जगी है, अज्ञान की काली रात खत्म हो रही है और ज्ञान से जागृति का सवेरा हो रहा है। इस उपन्यास में लेखक दलित वर्ग के बीच व्याप्त अज्ञान, अशिक्षा, अंधविश्वास और आपसी फूट को बताते हुए सवर्णों द्वारा किये जा रहे दलितों के शोषण को उजागर किया है। इसमें दलित पुरुषो के साथ दलित महिलाओं का शोषण भी होता है।

उपन्यास की भूमिका में बताया है- "इन भेडियों में पड़ें, पुजारी, भगत और सूदखोर महाजन भी है। वे दलित पिछड़े वर्ग का शोषण अपने तरीके से लगातार कर रहे हैं। शिक्षा और ज्ञान से दूर दलित वर्ग उनके बहकावे में आकर स्वयं का नुकसान करता है।"६

यह उपन्यास एक तरफ समाज में व्याप्त है अशिक्षा अंधविश्वास और अंध श्रद्धा का चित्रण करता है तो दूसरी तरफ लेखक ने चौधरी देवीपाल सिंह, भगत हरसन्न जैसे चित्रों का निर्माण करके यह दिखाने का प्रयास किया है कि यह दोनों खलनायक हंसा और सुनहरी को धर्म की आड़ में मूर्ख बनाते हैं। उन्हें कर्ज में फसाते हैं। हंसा के जागरूक भाई को भी झूठे आरोप में जेल भेजते हैं। दोनों भाइयों के बीच दूरी बनाने का षड्यंत्र करते हैं। चौधरी व भगत की दुर्तता यहीं समाप्त नहीं होती है। वे दलित समाज की स्त्री पात्रों धुसिया, सन्नो, रामरति सुमरिन आदि महिलाओं का शारीरिक शोषण करते हैं। उपन्यास में दलित औरतें चौधरी के आगे पराजित है। वे शीघ्र ही हथियार डाल देते हैं। जब सन्नो चौधरी के कुकृत्य का विरोध करते हैं और बचने का प्रयास करते हैं तो रामरति सनों को उसकी ताकत का एहसास इस प्रकार करती है- "सन्नो! तुम किस-किस की इज्जत बचाऊंगी? तुम अपनी इज्जत की चिंता करो। चौधरी ने धूसिया को तेरे या मेरे कहने से छोड़ भी दिया तो उसकी वासना का शिकार तुझे या मुझे बनना पड़ता। चौधरी को औरत चाहिए। हम गरीबों की तो कहीं भी सुनवाई नहीं है। वह चौधरी है, चौधरी। किसकी मजाल है कि गांव भर में उसके सामने मुंह खोल सके हमें तो चौधरी की दया पर जिंदा रहना है।"७

यह समाज का कड़वा सत्य है। कितनी ही दलित स्त्रियां इस तरह दुष्टों की हवस का शिकार होकर अपनी जान से हाथ धो बैठती है। कानून उनके लिए बहरा और अंधा है। धुसिया की हत्या के बाद चौधरी देवीलाल

रामरती के साथ अनैतिक संबंध बनाता है। रामरति का सात वर्षीय बेटा मुन्ना उन्हें आपत्तिजनक स्थिति में देख लेता है। भय से चौधरी मुन्ना की हत्या करके उसे कुएं में डाल देता है। पुलिस देवीपाल से रिश्वत लेकर मामले को दबा देते हैं। चौधरी अपने काले कारनामों के सबूत मिटाने के लिए उनकी हत्याएं कर डालता है। एक स्थान पर वह कहता है, "सुनो रंडियों तुममें से जिसने भी मुंह खोला उसका भी यही हश्र होगा और उसके परिवार की भी खैर नहीं है।"७ दैहिक शोषण की शिकार महिलाएं व उनके परिजन पुलिस कार्यवाही की मांग करते हैं तो थानेदार दहाड़ता हुआ कहता है, "साले मादरचोद, हराम की औलाद तुम लोग इज्जतदार और शरीफ लोगों के खिलाफ झूठे मामले बनाते रहते हो, हरिजन एक्ट का दुरुपयोग करते हो। अरे नालायक के बीच तेरे इज्जत की इज्जत क्या है, जो बिगड़ जाएगी।"८

उपन्यास में आगे कथा का नेतृत्व मंगल पहलवान करता है। वह नायक की तरह चौधरी और भगत से बदला लेता है। वह चौधरी से नाक रगड़वाता है और थूँकी चटवाता है। सुनहरी के पैरों में गिराकर उसे बहन कहकर माफी मंगवाता है। भगत के भी हाथ - पैर तोड़ देता है। वह कहता है "आ-जा भगत आज तेरी भी भगताई बताइए निकाल निकाल दु।"९ देवी पाल और भगत दलित बस्ती में आग लगाने जाते हैं और दलितों को मारते-पीटते हैं। मंगल अपने चेलों के साथ उनका सामना कर भागता है। पुलिस मंगल से कहती हैं –"पहलवान तुम्हें जिस पर शक हो, रिपोर्ट करवाओ। कानून अपना काम करेगा।"१० देवीपाल और भगत की गिरफ्तारी होती है। इसी दौरान धुसिया का पति मनसुख भगत पर गोली चलाकर मार देता है। मनसुख को भी पुलिस ले जाती है। मंगल शिवदास और मनसुख के लिए केस लड़ता है। इस प्रकार मंगल (दलित) सवर्णो से संघर्ष करके दलितों को विजयी बनाता है। दलितों के लिए यह प्रेरणा का संदेश है।

'मुक्तिपर्व' मोहनदास नैमिशराय जी का यह उपन्यास देश को आजादी मिलने के साथ दलित वर्ग में यह विश्वास जगाता है कि वह भी अब विषमतावादी सामाजिक और आर्थिक शोषण से मुक्त हो जाएंगे। कोई उनसे बेगार नहीं करायेगा, कोई उन्हें बंधुवा मजदूर बनाकर नहीं रख सकेगा, कोई उन पर अत्याचार नहीं करेगा। लेकिन क्या दलितों का यह सपना पूरा हो सका? देश की आजादी अंग्रेजों के शासन से देश की मुक्ति थी, दलित वर्ग की मुक्ति नहीं।

देश की आजादी की लड़ाई के अंतिम चरण के कालखंड में राजनीतिक और सामाजिक घटनाओं के विवरण के साथ लेखक ने उत्तर भारत के कस्बाई शहर के शोषण एवं पीड़ित दलितों के जीवन की कथा बताई है। "देश का बंटवारा कुछ बरस पहले ही हुआ था। बटवारे की पीड़ा धीरे-धीरे कम हो रही थी, पर हर एक के मन में जैसे टीस अभी शेष थी। आजादी की लड़ाई का यह अंतिम चरण था। पूरे देश में मार-काट खुन-खराबे का सबब था। हर शहर जैसे छावनी बन गया था।"११

दलित बस्ती का विवरण देते हुए बताया है कि "बस्ती में अधिकांश घरों में जूते चप्पलों का व्यवसाय होता है। शेष मजदूरी करते थे, नवाबों की हवेलियों पर या जमींदारों के खेतों में।"१२ यहीं पर चमार बस्ती का बंसी नवाब अलीवर्दी खां की हवेली में काम कर रहा था। बंसी की मां छमिया और पत्नी सुंदरी है। कुछ दिन से ही सुंदरी को प्रसव पीड़ा हो रही थी। आजादी की सुबह निकलते ही सुंदरी को बेटा पैदा होता है। बंसी ने नवाब अली की हवेली पर सुना था कि आजादी मिलने वाली है। आजादी मिलने से पहले आजादी का संघर्ष जारी था, मगर नवाब और जमींदार, गरीबों और दलितों का शोषण कर रहे थे। नौकर चाकरों पर तरह-तरह के जुल्म ढहाये जा रहे थे। एक समय थूकदान न मिलने पर नवाब बंसी पर गरजते हुए कहता है – "ला हथेली कर ईधर (बंसी... मरता क्या नहीं करता) नवाब साहब ने उस पर अंदर का बलगम थूक दिया। ढेर सारी खकार बंसी के हथेली पर उगल दी

थी।"१३ नवाब साहब का यह कृत्य घोर अमानवीय और घृणीय है, जो मानवीय संवेदना को झकझोर देता है। इससे जाहिर होता है कि हिंदू वर्णवाद की जड़े इतनी गहरी है जिसका प्रभाव दूर तक होता है। यहां पर नवाब साहब का यह कृत्य और इधर आजादी का बिगुल उसकी संवेदना को झकझोर देता है। उसमें विद्रोह जन्म लेता है। वह कहता है- "जनाबे अली, हम न गुलाम थे और न गुलाम है और न गुलाम रहेंगे।"१४ यह कहकर बंसी अलीवर्दी खां की हवेली से नौकरी छोड़ देता है। उसके बाद उसे आर्थिक संकटों का सामना करना पड़ता है। जब जीवन ही मरण जैसा हो तो विद्रोह करना ही बेहतर है। बंसी ने ऐसा ही विद्रोह किया। उसमें मुक्ति की चेतना जागती है।

आजादी के दिन बेटी का जन्म होने पर इसे भी मुक्तिपर्व कहा गया है क्योंकि वह बच्चा गुलाम देश में पैदा नहीं हुआ था आजादी का दिन उसके लिए मुक्तिपर्व था। देश की आजादी के साथ दलितों में भी हिम्मत आयी थी। वे भी अब बोलने लगे थे, अपनी स्थिति और सवर्णों के अन्याय के बारे में सोचने लगे थे। स्थिति कुछ इस तरह बदलने लगी थी- "धर्म की बिसात उलट गई थी इसलिए कि आज एक पंडित बाजी हार गया था और दलित जीत गया था।"१५ इसी वजह से बंसी अपने बेटी का नाम किसी पंडित से पूछ कर नहीं रखते बल्कि स्वयं ही उसका नाम सुनीत रखते हैं। बंसी के बेटी के जन्म की बात मालूम होने पर नवाब अलीवर्दी स्वयं बंसी के घर मिलने आता है। साथ ही कहता है-…. "और तुम तो हमारे ही आदमी हो। अब हमारे घर चाकरी नहीं करते तो क्या हुआ, इसे तो हमारी हवेली पर काम करने भेजना।"१६

हिंदी दलित उपन्यासों में दलित शुभचिंतक आर्य सामाजिको का जिक्र मिलता है। बंसी को रामलाल पर पूरा विश्वास है। वह उसे अपना शुभचिंतक मानकर अपने की छटपटाहट उसे बताता है। रामलाल बंसी को समझता है- "बंसी भैया आजादी का सूरज उग चुका है। अब अधिक दिनों तक नहीं चलेगा यह सब। …….मैं तो कहता हूं अब तुम्हें ही खुद आगे आना होगा और अपनी बात स्वंय अपने मुंह से कहनी होगी। आखिर भला तक हम कहते रहेंगे और तुम सुनते रहोगे।"१७

निष्कर्ष: हम यह कहते हैं कि इन उपन्यासों में दलितों के ऊपर होने वाले अन्याय एवं अत्याचारों का चिंतन ऐसे ही उपन्यासों के माध्यम से हमें करना होगा। उपन्यासकार जो लिखना है वह एक परिवेश का चित्रण ही नहीं हमारे इर्द-गिर्द जो समाज है उसका भी चित्रण करता है।छप्पर इस उपन्यास मे दलितों के ऊपर होने वाले अन्याय एवं अत्याचारों का चित्रण किया है । मुक्तिपर्व इस उपन्यास में आजादी के पूर्व और आजादी के बाद दलितों की स्थितियों में आए परिवर्तनों का चित्रण दिखाई देता है। देश आजाद हुआ किंतु आजादी मिलने के बाद भी दलितों को न्याय नहीं मिल पाता है ऐसी स्थिति में दलित सोचने को मजबूर होता है। आखिर उसे कब मुक्ति मिलेगी, उसका मुक्ति पर्व कब आएगा इसी के आसपास मुक्ति पर्व उपन्यास का कथानक घूमता है।

संदर्भ ग्रंथ

1. जयप्रकाश कर्दम - छप्पर राहुल प्रकाशन दिल्ली पृष्ठ क्र.०९
2. जयप्रकाश कर्दम - छप्पर राहुल प्रकाशन दिल्ली पृष्ठ क्र.१०
3. जयप्रकाश कर्दम - छप्पर राहुल प्रकाशन दिल्ली पृष्ठ क्र.२५
4. जयप्रकाश कर्दम - छप्पर राहुल प्रकाशन दिल्ली पृष्ठ क्र.१०७
5. जयप्रकाश कर्दम - छप्पर राहुल प्रकाशन दिल्ली पृष्ठ क्र.८२
6. सत्य प्रकाश - जस-तस भई सवेर पृष्ठ क्र. १
7. सत्य प्रकाश - जस-तस भई सवेर पृष्ठ क्र. १४
8. सत्य प्रकाश - जस-तस भई सवेर पृष्ठ क्र. १६

9. सत्य प्रकाश - जस-तस भई सवेर पृष्ठ क्र.१२२
10. मोहनदास नैमिशराय – मुक्तिपर्व अनुराग प्रकाशन नई दिल्ली पृष्ठ क्र.१७
11. मोहनदास नैमिशराय – मुक्तिपर्व अनुराग प्रकाशन नई दिल्ली पृष्ठ क्र.०८
12. मोहनदास नैमिशराय – मुक्तिपर्व अनुराग प्रकाशन नई दिल्ली पृष्ठ क्र.२४
13. मोहनदास नैमिशराय – मुक्तिपर्व अनुराग प्रकाशन नई दिल्ली पृष्ठ क्र.२८
14. मोहनदास नैमिशराय – मुक्तिपर्व अनुराग प्रकाशन नई दिल्ली पृष्ठ क्र.३१
15. मोहनदास नैमिशराय – मुक्तिपर्व अनुराग प्रकाशन नई दिल्ली पृष्ठ क्र.३८
16. मोहनदास नैमिशराय – मुक्तिपर्व अनुराग प्रकाशन नई दिल्ली पृष्ठ क्र. ६८

सामाजिक पत्रकारिता और एकीकरण : संभावनाएं एवं परीक्षण

डॉ.पूजा शर्मा

प्रवक्ता विद्युत कन्या इंटर कॉलेज कासिमपुर अलीगढ़ जवाहरनगर सुरक्षाविहार जीटी रोड अलीगढ़

E-mail: pari75sharma@gmail.com Contact: 9690349665

सोशल मीडिया द्वारा ध्रुवीकरण की बात की जाए तो हम पाते हैं कि अतीत में इस संबंध में कई प्रयोग किये गए थे। 1950 के दशक में सामाजिक मनोवैज्ञानिक सोलोमन असच द्वारा मनोवैज्ञानिक प्रयोगों की एक पूरी श्रृंखला की शुरूआत गई थी। ये प्रयोग यह निर्धारित करने के लिये किये गए थे कि बहुमत की राय के आगे किसी व्यक्ति की राय किस प्रकार प्रभावित होती है। इसका यह निष्कर्ष सामने आया कि कोई व्यक्ति सिर्फ बहुमत की राय के साथ शामिल होने के कारण गलत जवाब देने के लिये तैयार था। कुछ लोगों ने अपना उपहास न उड़ने देने के कारण गलत जवाब दिये। यद्यपि 1950 के दशक से संचार का यह स्वरूप विकसित होकर नए रूप में प्रकट हुआ है, लेकिन इसके बावजूद मानव का स्वभाव इसके साथ सामंजस्य बैठाने में सफल नहीं हो पाया। कुछ हद तक यह धारणा ऑनलाइन फेक न्यूज के प्रभाव को भी इंगित करती है, जिसने समाज में ध्रुवीकरण के विस्तार में योगदान दिया है। सोशल मीडिया की साइट्स उत्प्रेरक की भूमिका भी निभाती है। उदाहरणस्वरूप ट्विटर नियमित रूप से उन लोगों के अनुसरण हेतु प्रेरित करता है जो हमारे समान दृष्टिकोण रखते हैं।इस प्रकार हम पाते हैं कि सोशल मीडिया के प्रभाव के कारण लोगों के सोचने का दायरा संकुचित होता जा रहा है जो न केवल मतदान के समय व्यवहार में परिवर्तन लाता है बल्कि हर रोज व्यक्तिगत वार्त्ताओं में भी इसका भारी प्रभाव पड़ रहा है।

आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक प्रगति में सूचना क्रांति ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है किंतु सूचना क्रांति की ही उपज, सोशल मीडिया को लेकर उठने वाले सवाल भी महत्त्वपूर्ण हैं। ये सवाल हैं- क्या सोशल मीडिया हमारे समाज में ध्रुवीकरण की स्थिति उत्पन्न कर रहा है तथा समाज की प्रगति में सोशल मीडिया की क्या भूमिका होनी चाहिये? हम एक ऐसी दुनिया में रहते हैं जहाँ हम सूचना के न केवल उपभोक्ता है, बल्कि उत्पादक भी हैं। यही अंतर्द्वंद्व हमें इसके नियंत्रण से दूर कर देता है। प्रतिदिन कई बिलियन लोग फसेबुक पर लॉग-इन करते हैं। हर सेकेंड ट्वीटर पर ट्वीट किये जाते हैं और इंस्टाग्राम पर कई तस्वीरें पोस्ट की जाती हैं।

] अगर सोशल मीडिया के मूल अर्थ की बात की जाए तो कंप्यूटर, टैबलेट या मोबाइल के माध्यम से किसी भी मानव संचार या इंटरनेट पर जानकारी साझा करना सोशल मीडिया कहलाता है। इस प्रक्रिया में कई वेबसाइट एवं एप का योगदान होता है। सोशल मीडिया वर्तमान समय में संचार के सबसे बड़े साधन के रूप में उभर कर आया है और दिनोदिन इसकी लोकप्रियता में वृद्धि हो रही है। सोशल मीडिया द्वारा विचारों, सामग्री, सूचना और समाचार को तीव्र गति से लोगों के बीच साझा किया जा सकता है। सोशल मीडिया को एक तरफ जहाँ लोग वरदान मानते हैं तो दूसरी तरफ लोग इसे एक अभिशाप के रूप में भी देखते हैं।

संस्कृतिएवंविचारोपरसामाजिकपत्रकारिता का प्रभाव

सोशल मीडिया की वैश्विक पहुंच: सोशल मीडिया के सबसे उल्लेखनीय पहलुओं में से एक इसकी भौतिक सीमाओं को पार करने की क्षमता है। विश्व के विभिन्न कोनों से लोग तुरंत जुड़ सकते हैं, अनुभव, विचार और संस्कृतियाँ साझा कर सकते हैं। इस त्वरित कनेक्टिविटी ने वैश्वीकरण की गति को तेज कर दिया है, एक ऐसे वैश्विक समुदाय को बढ़ावा दिया है जो पारंपरिक सीमाओं से परे है।

परंपराओंकाआवागमन

सोशल मीडिया एक आभासी पिघलने वाले बर्तन के रूप में कार्य करता है जहां संस्कृतियां, भाषाएं और परंपराएं मिलती हैं। उपयोगकर्ताओं को दुनिया भर के रीति-रिवाजों और प्रथाओं के बारे में जानने, सांस्कृतिक

आदान-प्रदान और समझ को बढ़ावा देने का मौका मिलता है। यह आदान-प्रदान न केवल व्यक्तिगत दृष्टिकोण को समृद्ध करता है बल्कि वैश्विक स्तर पर सहानुभूति और सहिष्णुता को भी बढ़ावा देता है।

विद्युतगतिसेसूचनाकाप्रसारण

सोशल मीडिया पर सूचना फैलने की गति ने हमारे समाचार प्राप्त करने और सूचित रहने के तरीके को बदल दिया है। समाचार कहानियां, रुझान और घटनाएं कुछ ही मिनटों में वायरल हो सकती हैं और दर्शकों तक उनकी भौगोलिक उत्पत्ति से कहीं अधिक पहुंच सकती हैं। सूचना के इस तत्काल प्रसार ने पारंपरिक मीडिया को चुनौती दी है और हाशिए की आवाज़ों को वैश्विक मंच पर सुनने की अनुमति दी है।

भाषा और संचारभाषा संबंधी बाधाएँ

प्रभावी वैश्विक संचार में बाधा बनती हैं। हालाँकि, सोशल मीडिया प्लेटफ़ॉर्म अनुवाद उपकरण और एल्गोरिदम प्रदान करते हैं जो उपयोगकर्ताओं के लिए विभिन्न भाषाओं में संचार करना आसान बनाते हैं। यह अंतर-सांस्कृतिक संवाद को बढ़ावा देता है और वैश्विक स्तर पर सहयोग को सक्षम बनाता है।

चुनौतियाँ और सावधानी

हालाँकि वैश्वीकरण पर सोशल मीडिया का प्रभाव अत्यधिक सकारात्मक है, फिर भी कुछ चुनौतियाँ हैं जिन पर विचार किया जाना चाहिए। गलत सूचना और फर्जी खबरों का तेजी से प्रसार, सांस्कृतिक विनियोग, और निगरानी और गोपनीयता के उल्लंघन की संभावना वास्तविक चिंताएं हैं जिन्हें वैश्विक स्तर पर सोशल मीडिया के जिम्मेदार उपयोग को सुनिश्चित करने के लिए संबोधित किया जाना चाहिए।सोशल मीडिया के सकारात्मक प्रभावों की बात जाए तो यह समाज के सामाजिक विकास में मदद करता है। इसके द्वारा प्रदत्त सोशल मीडिया मार्केटिंग जैसे उपकरण द्वारा लाखों सभावित ग्राहकों तक पहुँच स्थापित की जा सकती है और समाचार का प्रेषण किया जा सकता है। सामाजिक मुद्दों पर जागरूकता उत्पन्न करने के संदर्भ में सोशल मीडिया को एक बेहतरीन उपकरण माना जाता है। इसके द्वारा समान विचारधारा वाले लोगों के साथ संपर्क भी स्थापित किया जा सकता है। विश्व के सुंदरतम कोने तक अपनी बातों को कम समय में तीव्र गति से अधिकतम लोगों तक पहुँचाने के लिये यह एक सर्वश्रेष्ठ साधन बन चुका है।

सोशल मीडिया को शिक्षा प्रदान करने के संदर्भ में एक बेहतरीन साधन माना जा रहा है। इसके द्वारा ऑनलाइन जानाकरी का तेजी से हस्तांतरण होता है। इसके द्वारा ऑनलाइन रोजगार के बेहतरीन अवसर प्राप्त होते हैं। साथ ही व्यवसाय, चिकित्सा, नीति निर्माण को प्रभावित करने में भी इसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। वर्तमान समय में शिक्षक एवं छात्रों द्वारा फेसबुक, ट्विटर, लिंक्डाइन आदि जैसेप्लेटफॉर्म का प्रयोग किया जा रहा है। इसके द्वारा शिक्षक एवं छात्रों के मध्य दूरी सिमट कर कम हो गई है। प्रोफेसर स्काइप, ट्विटर और अन्य जगहों पर इसके मदद से लाइव चैट करते हैं। सोशल मीडिया के कारण शिक्षा आसान हो गई है।

विश्व आर्थिक मंच की एक रिपोर्ट के अनुसार सोशल मीडिया के जरिये झूठी सूचना का प्रसार उभरते जोखिमों में से एक है। यकीनन यह देश की प्रगति की राह में रुकावट है और ऐसे में जरूरी हो जाता है कि हमारी सरकार इसमें दखल कर इस पर लगाम लगाने का प्रयास करे। केंद्र सरकार ने सूचना तकनीक कानून की धारा 79 में संशोधन के मसौदे द्वारा फेसबुक और गूगल जैसी कंपनियों की जवाबदेहिता तय करने का प्रयास किया था। इसके तहत आईटी कपंनियाँ फेक न्यूज की शिकायतों पर न केवल अदालत और सरकारी संस्थाओं बल्कि आम जनता के प्रति भी जवाबदेह होंगी। देश जैसे-जैसे आधुनिकीकरण के रास्ते पर बढ़ रहा है चुनौतियाँ भी बढ़ती जा रही है। ऐसे में भारत को जर्मनी जैसे उस कठोर कानून की जरूरत है जो सोशल मीडिया पर आपत्तिजनक सामग्री का इस्तेमाल करने वालों पर शिंकजा कसने के लिये बनाया गया था। इसके अलावा 'सोशल मीडिया इंटेलीजेंस' के जरिये सोशल मीडिया गतिविधियों का विश्लेषण करते रहना भी आवश्यक है। इससे आपत्तिजनक सामग्रियों को बिना देर किये हटाया जा सकेगा।

वर्तमानयुगमेंएकीकरणकाप्रभाव

इस डिजिटल युग में, सोशल मीडिया और वैश्वीकरण के बीच परस्पर संबंध लगातार विकसित हो रहा है। जैसे-जैसे प्रौद्योगिकी आगे बढ़ती है, हम लोगों से जुड़ने, सहयोग करने और वैश्विक समुदाय में योगदान करने के

लिए और भी अधिक नवीन तरीकों की उम्मीद कर सकते हैं। शिक्षा, कूटनीति, व्यापार और सांस्कृतिक आदान-प्रदान के भविष्य को आकार देने में सोशल मीडिया की भूमिका तेजी से बढ़ने वाली है।

निष्कर्ष

सोशल मीडिया ने वैश्वीकरण के परिदृश्य को बदल दिया है, जिससे हम दुनिया के साथ संवाद करने, सीखने और जुड़ने में सक्षम हो गए हैं जैसा पहले कभी नहीं हुआ था। इसने बाधाओं को खत्म किया है, समझ को बढ़ावा दिया है और वैश्विक स्तर पर सकारात्मक बदलाव लाने के लिए व्यक्तियों और समुदायों को सशक्त बनाया है। हालाँकि, यह महत्वपूर्ण है कि हम इस डिजिटल परिदृश्य को जिम्मेदारी से नेविगेट करें, यह सुनिश्चित करते हुए कि इसकी चुनौतियों का समाधान करते समय सोशल मीडिया के लाभों का उपयोग किया जाए। वैश्वीकरण का भविष्य निर्विवाद रूप से सोशल मीडिया के विकास के साथ जुड़ा हुआ है, और अधिक जुड़े हुए विश्व की संभावनाएं रोमांचक और असीमित दोनों हैं।सोशल मीडिया ने अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार को नया आयाम दिया है। आज प्रत्येक व्यक्ति बिना किसी डर के सोशल मीडिया के माध्यम से अपने विचार रख सकता है और उसे हजारों लोगों तक पहुँचा सकता है, परंतु सोशल मीडिया के दुरुपयोग ने इसे एक खतरनाक उपकरण के रूप में भी स्थापित कर दिया है जिसके कारण इसके विनियमन की आवश्यकता लगातार महसूस की जा रही है। अतः आवश्यक है कि निजता के अधिकार का उल्लंघन किये बिना सोशल मीडिया के दुरुपयोग को रोकने के लिये सभी पक्षों के साथ विचार-विमर्श कर नए विकल्पों की खोज की जाए, ताकि भविष्य में इसके संभावित दुष्प्रभावों से बचा जा सके।

संदर्भ

- https://www.drishtiias.com/hindi/model-essays/social-media-in-today-scenerio
- https://www.simplilearn.com/real-impact-social-media-article
- https://www.sciencedirect.com/science/article/pii/S0268401217308526
- https://en.wikipedia.org/wiki/Social_media
- https://www.techtarget.com/whatis/definition/social-media
- https://www.intechopen.com/chapters/63049

B.Aadhar' International Peer-Reviewed Indexed Research Journal

Impact Factor -(SJIF) –8.632, Issue NO, (CDXLVI) 451-A

ISSN : 2278-9308 December, 2023

हिन्दी साहित्यिक पत्रकारिता: चिंतन और चुनौतियां

डॉ सीताराम आठिया

एम ए:- राजनीति शास्त्र, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, प्राचीन भारतीय इतिहास, मानद पीएचडी (डीएसडब्ल्यू), मानद डी लिट (स्वास्थ्य)

राज्यपाल अवार्ड सहित अनेक राष्ट्रीय, अंतरराष्ट्रीय पुरुस्कार प्राप्त समाजसेवी, पर्यावरण संरक्षक, लेखक

स्वास्थ्य पर्यवेक्षक: सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र देवरी जिला सागर, म प्र पिनकोड 470226 - मो, 9425691597

ईमेल आईडी- srathiya.deori@gmail.com

संबद्ध:- डॉ हरीसिंह गौर केंद्रीय विश्वविद्यालय सागर मप्र

सारांश साधारणत: साहित्य और पत्रकारिता दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू होते हैं। दोनों के रूपों में हमें अंतर दिखायी देता है, परंतु दोनों के उद्देष्यों में एकरुपता के दर्शन होते है। साहित्य का कार्य सत्यान्वेषण करना है, और पत्रकारिता का भी , अर्थात इन दोनों का मूल उद्देश्य निरंतर सत्य की खोज करना ही रहा है। इसके साथ दोनों ही एक-दूसरे को विकसित करने में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते है। साहित्य और पत्रकारिता की भूमिका एक समान होती है। एक साहित्यकार अपने साहित्य द्वारा जो कुछ चाहता है, वहीं एक पत्रकार अपनी पत्रकारिता द्वारा चाहता है। इस संदर्भ में बालकृष्णराव जी का कहना है कि- समसामयिक परिवेश से किसी न किसी रूप में प्रत्येक लेखक प्रेरणा ग्रहण करता है, चाहे वह साहित्यकार हो या पत्रकार, दोनों ही लेखक हैं। दोनों ही सर्जनकार है। प्रत्येक पत्रकार अंशतः साहित्यकार भी है, तो प्रत्येक साहित्यकार अनिवार्यत पत्रकार भी। इस कथन से ज्ञात होता है कि साहित्यकार और पत्रकार की पथक्रमण की स्थिति एक जैसी ही होती है। दूसरे पब्दों में साहित्य और पत्रकारिता एक- दूसरे के पूरक है और उनका अंतिम लक्ष्य जनकल्याण है। इसी लक्ष्य की पूर्ति करते हुए ये दोनों धाराएँ निरंतर प्रवाहित होती परिलक्षित हो रही है। भारतीय स्वातंत्र्यता प्राप्ति में हिंदी पत्रकारिता की महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

मुख्य शब्द: हिंदी, साहित्य, पत्रकारिता, स्वतंत्रता, संपादन।

प्रस्तावना: हिंदी साहित्य भारत के विराट व्यक्तित्व का अनमोल दर्पण है, समन्वय सूत्र है। जनवाणी हिन्दी में भारत का स्वतंत्रता आंन्दोलन और उसके उत्कर्ष की गाथा है, हिन्दी साहित्य की पत्रकारिता उसकी सशक्त संवाहिका बनी जिसमें समन्वय, समाहार और शांति के चिर स्पंदित भाव अनुस्यूत हैं। युगीन भाव बोध, लोक रुचि का परिष्कार एवं साहित्य-संवर्द्धन में हिन्दी साहित्यिक पत्रकारिता का अविस्मरनीय योगदान है। हिन्दी साहित्य के विकास में पत्रकारिता का बहुत बडा योगदान रहा है। पत्रकारिता तात्कालिकता के माध्यम से शाश्वत की साधना है। शाश्वत की साधना साहित्य और पत्रकरिता दोनों का अभीष्ट है। नाम दो है पर सूक्ष्म निरीक्षण किया जाय तो पत्रकरिता और साहित्य में कोई ज्यादा अन्तर नहीं है।

साहित्यिक पत्रकारिता का अर्थ एवम परिभाषाएं:-

हिन्दी साहित्य के इतिहास में समयानुसार विविध प्रकार की विधाएं स्थापित होती रही है। इन विधाओं में ही हिन्दी की प्रगति दृष्टिगत होती है। साहित्यिक पत्रकारिता भी इसी प्रकार की एक विधा है, जिस प्रकार व्यंग्य को एक विधा के रूप में हरिशंकर परसाई जी ने स्थापित किया था उसी प्रकार पत्रकारिता को स्थापित करने का श्रेय भारतेंदु हरिश्चंद्र को जाता है।

हिंदी की पत्रकारिता और उसके साहित्य का संबंध इतना अन्योन्याश्रित रहा है कि पिछले दिनों एक प्रतिष्ठित संपादक ने सार्वजनिक रूप से यह स्वीकार किया कि इस पत्रकारिता के पास तोप से लड़ने का हौसला साहित्य के मार्फत ही आया है। ब्रिटिश सत्ता के दौर में मशहूर उर्दू साहित्यकार अकबर इलाहाबादी ने लिखा था-

'खींचो न कमानों को न तलवार निकालो।

गर तोप मुकाबिल हो तो अखबार निकालो।।

नेपोलियन बोनापार्ट ने भी कहा था कि चार विरोधी अखबारों की मारक क्षमता के आगे हजारों बंदूकों की ताकत भी बेकार हो जाती है. मैथ्यू आर्नल्ड की मानें, तो पत्रकारिता जल्दी में लिखा गया साहित्य ही है, क्योंकि जैसे भावों का भरोसा साहित्य हुआ करता है, तथ्यों का भरोसा पत्रकारिता हुआ करती है. विद्वानों के अनुसार, पश्चिम में पत्रकारिता जरूर आधुनिक विधा के रूप में सामने आयी, लेकिन हिंदी में शुरू से ही मासजीविता उसका अभिन्न अंग रही. एक वक्त हिंदी पत्र-पत्रिकाओं के प्रायः सारे संपादक या तो साहित्यकार हुआ करते थे या हिंदी भाषा के बड़े ज्ञाता.

साहित्यिक पत्रकारिता की शुरुआत :- हिंदी की साहित्यिक पत्रकारिता की शुरुआत भारतेन्दु हरिश्चंद्र की पत्रिका "कवि वचनसुधा" के 15 अगस्त, 1861 ई0 में बनारस से प्रकाशन के साथ होती है। भारतेन्दु न केवल आरंभकर्ता थे, बल्कि उन्होंने अपनी नेतृत्वकारी प्रतिभा से साहित्य और पत्रकारिता के बिखरे हुए सारे सूत्रों को समेट कर एक नए युग का सूत्रपात किया। "भारतेन्दु-समग्र" के संपादक हेमंत शर्मा ने ठीक ही लिखा है कि, "आज की पत्रकारिता का ऐसा कोई रूप नहीं जिसका बीज भारतेन्दु में न हो"। उन्होंने साहित्य को देशहित से जोड़कर, अपनी पत्रकारिता के माध्यम से, भाषा-शैली और लोकप्रियता के ऊँचे तथा कलात्मक मानदंड स्थापित किए।

30 मई 1826 ई० को पहला हिन्दी समाचार पत्र साप्ताहिक 'उदंत मार्तंड' हिन्दी साहित्य और पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रकाशित हुआ। इसके संपादक पंडित युगल किशोर शुक्ल कुशल साहित्यकार के रूप में देदीप्यमान हो रहे थे। आचार्य रामचंद्र शुक्ल 'हिन्दी साहित्य के इतिहास' में 'उदंत मार्तंड' को हिन्दी का प्रथम पत्र बताते हैं। तत्पश्चात काशी के 'सुधाकर', आगरा के 'बुद्धि प्रकाश', आज के अदालती भाषा उर्दू के रूप में स्थापित करने के पूर्व ही, हिन्दी का स्थायित्व प्रकट हो चुका था और यह चहुंमुखी प्राकट्य इसलिए क्योंकि गद्य इत्यादि का प्रकाशन पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन (1840-45 ई०) के बीच में लगभग प्रारंभ हो गया था। यह भी कहा जा सकता है कि तत्कालीन समयावधि के मध्य हिन्दी खड़ी बोली की परंपरा व्यवस्थित रूप से चल पड़ी थी। पत्र-पत्रिकाएं, पुस्तकें छपने लगे थे तथा अखबार व्यवस्थित रूप से निकलने लगे थे। अखबारों में पूर्णतः पत्रकारिता स्थापित नहीं हो पाई थी, किंतु कहीं न कहीं पत्रकारिता का प्रादुर्भाव अखबारों में दिखने लगा था। इसलिए कहा जा सकता है कि पत्रकारिता और हिन्दी खड़ी बोली का स्थापत्य तत्कालीन समयावधि के बीच प्रारंभ हो गया था।

स्वतंत्रता संग्राम के दौरान साहित्यिक पत्रकारिता की भूमिका

हमारे 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम की क्रांतिकारी चेतना के साथ विकसित इस साहित्यिक पत्रकारिता की एक धार यदि देश को गुलाम बनाने वाले ब्रिटिश साम्राज्यवाद की ओर तनी थी, तो दूसरी धार उनके पिठुओं, देषी रजवाड़ों, ज़मींदारों, महाजनों और धर्म के ठेकेदार पाखंडियों, रूढ़ियों तथा सामाजिक कुरीतियों की ओर तनी थी। देश की स्वतंत्रता प्राप्ति में हिंदी पत्रकारिता का विशेष महत्व रहा है। इसी पत्रकारिता ने सोई हुई भारतीय जनता को जगाया और स्वतंत्रता आंदोलन के पथ पर अग्रसर किया। जो जनता अपने अस्तित्व को भूलकर अंधकार में भटक रही थी, उन्हें सही पथ पर लाने का महत्तम कार्य हिंदी पत्रकारिता ने किया है।

आजादी की लड़ाई के दौरान महात्मा गांधी समेत कई नेताओं ने भी पत्रकारिता व संपादन कार्य को अपना हथियार बनाया, लेकिन वह साहित्य व पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रतिभाओं की निर्बाध व स्वाभाविक आवाजाही से अलग मामला था. इस आवाजाही की मिसालों पर जायें, तो जिन भारतेंदु हरिश्चंद्र को आधुनिक हिंदी साहित्य का पितामह व भारतीय नवजागरण का अग्रदूत माना जाता है। उन्होंने अपने बहुआयामी कृतित्व से साहित्य के साथ पत्रकारिता को भी समृद्ध किया 'हरिश्चंद्र चंद्रिका', 'कविवचनसुधा' और ' बाल

बोधिनी' जैसी पत्रिकाओं का संपादन कर उन्होंने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया।

पत्रकारिता और साहित्य के मध्य संबंध पत्रकारिता का साहित्य के साथ अपने जन्मकाल से बहुत गहरा संबंध बताते हुए राकेश वत्स लिखते हैं कि मानव-यात्रा के "इसी पड़ाव पर (यानी मध्य- वर्गीय लोकतांत्रिक आंदोलनों,

राजनीतिक और विचारधारात्मक विकास के पड़ाव पर) आकार साहित्य के संबल की ज़रुरत महसूस हुई । चूँकि पत्र-पत्रिकाएँ ही उसे पाठकों के उस वर्ग तक पहुँचा सकती थीं, पत्रकारिता ने उसकी इस ज़रूरत को पूरा किया। वे आगे बताते हैं कि साहित्यिक पत्र-पत्रिकाएँ तो मूलतः साहित्य के प्रति समर्पित होती ही हैं, बल्कि शायद ही कोई ऐसा पत्र या पत्रिका होगी जिसमें किसी न किसी रूप में साहित्य के लिए स्थान सुरक्षित नहीं किया जाता हो। यानी, कविता, कहानी, गज़ल, गीत, निबंध, नाटक, एकांकी, संस्मरण, यात्रा-वृतांत, शब्दचित्र, रिपोर्ताज़, पुस्तक समीक्षा, आलोचना, उपन्यास- सभी कुछ प्रायः सभी पत्र- पत्रिकाओं में छपता रहा है। उनका रूप और आकार भले भिन्न-भिन्न रहा हो। जिन गैर साहित्यिक पत्र- पत्रिकाओं का गंभीर साहित्य की ओर रूझान नहीं था, वे भी, खासकर दैनिक और साप्ताहिक या पाक्षिक अखबार और पत्रिकाएँ भी "फिलर" के रूप में लघु-कथाएँ, क्षणिकाएँ और व्यंग्य के नाम पर चुटकुलेबाजी, यानी "साहित्य" के नाम पर रची जाने वाली सारी सामग्री धड़ल्ले से छापते रहे हैं।

हिंदी की साहित्यिक पत्रकारिता का इतिहास साहित्यिक पत्रकारिता का इतिहास हमारे साहित्य के इतिहास का अभिन्न अंग है; और साहित्य का इतिहास हमारे समग्र साँस्कृतिक और सामाजिक इतिहास का अंग है। इसमें उठने वाली परिवर्तनों की लहरें एक-दूसरे से प्रभावित होती हैं और परस्पर एक-दूसरे को प्रभावित करती हैं। लेकिन साहित्य के इतिहास की कुछ धीमी गति की तुलना में साहित्यिक पत्रकारिता के इतिहास की गति कुछ तीव्रतर होती है। हिन्दी की साहित्यिक पत्रकारिता के इतिहास को हम मुख्यतः दो बड़े कालखंडों में विभाजित कर सकते हैं:

1, स्वतंत्रता पूर्व की साहित्यिक पत्रकारिता

अ, भारतेन्दु-बालमुकुन्द गुप्त युग;

ब, 'द्विवेदी-प्रेमचंद युद;

स, 'प्रगतिवादी युग;

2, स्वातंत्र्योत्तर साहित्यिक पत्रकारिता

अ , प्रगति-प्रयोग का द्वंद्व तथा प्रगति-विरोधी विचारधराओं का दौर

ब, 'लघु पत्रिका आंदोलन का दौर;

स, आपात्काल और उसके बाद का दोर;

द, भूमंडलीकरण और उसके प्रतिरोध का समकालीन दौर

1, भारतेन्दु-बालमुकुन्द गुप्त युग (1867-1902)

"कविवचनसुधा" से हिन्दी साहित्यिक पत्रकारिता का सूत्रपात करते हुए, भारतेन्दु ने 15 अक्टूबर, 1873 से पाक्षिक "हरिश्चंद्र मैगज़ीन" का प्रकाशन शुरु किया।15 अगस्त 1967 में सुधा मासिक पत्रिका निकाली।उन्होंने स्त्रियों के लिए एक पत्रिका बाला-बोधिनी प्रकाशित की । डॉ रामबिलास शर्मा ने लिखा है कि भारतेन्दु की पत्रिकाओं का "मूल स्वर देशोन्नति और अंग्रेज़ी शासन की नुक्ताचीनी का था और उन्होंने "विभिन्न साँस्कृतिक विषयों को एक ही जगह समेटकर पत्रिका की ऐसी पद्धति चलाई जिसका अनुसरण आगे चलकर हिन्दी की अधिकांश पत्रिकाएँ करती रहीं। आनंदकादंबिनी- प्रेमघन, भारतेन्दु- राधाचरण

गोस्वामी, ब्राह्मण - प्रताप नारायण मिश्र, "हिंदी प्रदीप" - बालकृष्ण भट्ट, सारसुधानिधि - दुर्गाप्रसाद मिश्र और सदानंद मिश्र तथा भारतमित्र- बालमुकुन्द गुप्त इस युग के प्रतिनिनिधि पत्र-पत्रिकाएँ एवम उनके यशस्वी संचालक और संपादक रहे हैं। बाबू बालमुकुंद गुप्त, पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी के समकालीन थे। डॉ0 शर्मा के अनुसार वे भारतेन्दु युग के ऐसे सिपाही थे जिन्होंने हरिश्चंद्र की मृत्यु के बाद सेनापति की कमान संभाली। वे बताते हैं कि "भारतमित्र" के साथ गुप्त जी का नाम वैसे ही जुड़ा है जेसे "सरस्वती" के साथ द्विवेदी जी का।

2, द्विवेदी-प्रेमचंद युग (1900-1935)

द्विवेदी जी के संपादन काल की "सरस्वती" को "आधुनिक हिन्दी साहित्य का ज्ञान-कांड" बताते हुए डॉ0 शर्मा ने इस युग की साहित्यिक पत्रकारिता का उच्च मूल्यांकन किया है। महावीर प्रसाद द्विवेदी की "सरस्वती" ने हिन्दी नवजागरण की बिखरी हुई असंगठित शक्ति को एक जगह एकताबद्ध और संगठित किया। पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी, पं० श्रीधर पाठक, पं0 कामताप्रसाद गुरु, पं० गंगाप्रसाद अग्निहोत्री, पं0 जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल, पं0 रामदास गौड़ तथा पं0 नागीश्वर मिश्र प्रभुति आदि अन्य लेखको की रचनाओं को इस काल में "छत्तीसगढ़ मित्र" ने बड़े ही उत्साह से प्रकाशित किया। आलोचक रामचन्द्र शुक्ल का "इतिहास" और उपन्यासकार एवम पत्रकार प्रेमचंद तथा सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला" इसी युग की देन हैं। प्रेमचंद के संपादन काल की "माधुरी" भी इस हिन्दी नवजागरण के "ज्ञान कांड" में "सरस्वती" और "छत्तीसगढ़ मित्र" की सहोदर पत्र-पत्रिकाएँ थीं।

3, प्रगतिवादी युग (1936-1950-53)

प्रगतिवादी युग का कार्यकाल अप्रैल, 1936 से 1953 तक माना जाता हैं। साहित्यिक पत्रकारिता का सबसे क्रांतिकारी, तेजस्वी साथ ही कलात्मक रूप हमें प्रगतिशील दृष्टिकोण वाली पत्र-पत्रिकाओं और उनके लेखकों-संपादकों के कृतित्व में ही नज़र आता है। इनकी मुख्य विषयवस्तु ब्रिटिश उपनिवेश - वादियों की गुलामी से देश की आज़ादी और स्वतंत्र भारत को एक जनवादी, धर्मनिरपेक्ष और समाजवादी गणतंत्र बनाने के उद्देश्य से मज़दूरों, किसानों से प्रतिबद्धता तथा उनकी समस्याओं को उठाना रही। "हंस" - प्रेमचंद, उनकी मृत्यु के बाद अमृतराय, "विप्लव"- यशपाल, "रूपाम"- पंत, "नयासाहित्य, "लोकयुद्ध", "जनयुग"- तीनों कम्युनिस्ट पार्टी, "चकल्लस", "उच्छृंखल" - दोनों अमृतलाल नागर, "जनता", "संघर्ष", "नया सवेरा" ,"उदयन" "वसुधा" सभी परसाई, "समालोचक" - राम विलास शर्मा आदि प्रमुख प्रगतिवादी पत्र- पत्रिकाएँ थीं।

4, प्रगति का द्वंद्व तथा प्रगति- विरोधी विचारधाराओं का दौर - 1947-1964

1943 में अज्ञेय के संपादन में प्रकाशित "तारसप्तक", 1947 में प्रकाशित "प्रतीक" इस काल के प्रमुख पत्र पत्रिकाएं है। एक ही प्रगतिशील धारा के अंतर्गत रामविलास शर्मा, नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन आदि प्रमुख साहित्यकार थे; तो दूसरी ओर "प्रगतिवाद" की रूढ़ समझ के विरोध में मुक्तिबोध, शमशेर बहादुर सिंह, हरिशंकर परसाई और नामवर सिंह का नाम प्रमुख था ।

5, लघु-पत्रिका आंदोलन का दौर- 1964-74: 1962 में भारत पर चीन के हमले और 1964 में नेहरू जी कि मृत्य से खत्म हुए उनके एक छत्र राज्य का प्रभाव इस दौर की पत्र पत्रिकाओं पर पड़ा। "धर्मयुग", "सारिका", "साप्ताहिक हिम्दुस्ताम", "ज्ञानोदय" जैसी पत्रिकाओं ने प्रगतिशील सोच के लेखकों, विशेष रूप से नए लेखकों के लिए प्रकाशन के अपने सभी दरवाज़े बंद कर दिए। इसी के विरोध में हिन्दी सहित सभी भारतीय भाषाओं में 1964-65 से जबर्दस्त लघु- पत्रिका आंदोलन चला।

6, आपात्काल और परवर्ती दौर 1975-95- देश में जून, 1975 में आपातकाल और फलस्वरूप कठोर "सेंसरशिप" लागू होने के बाद हिन्दी की साहित्यिक पत्रकारिता ने एक बार फिर भारतेन्दु युगीन पत्रकारिता की कलात्मक संकेतधर्मिता, प्रतीकवाद और कूटनीति का सहारा लिया। कम्युनिस्ट पार्टी से जुड़े लेखक, पत्रकार और संपादक आपात्काल, सेंसरशिप और तत्कालीन सत्ता के विरोध के साथ ही दक्षिणपंथी, साम्प्रदायिक और सत्ता-लोलुप फासिस्ट शक्तियों को भी बेनकाब कर रहे थे। अवसरवादी लेखक- पत्रकार और साहित्यिक पत्रिकाए सत्ता की चापलूसी और जी-हजूरी में लगी हुई थीं। पहल, जनयुग, सारिका - संपादक कमलेश्वर एवम महान व्यंग्यलेखक और पत्रकार हरिशंकर परसाई इस दौर के प्रमुख पत्र पत्रिकाएं एवम लेखक रहे है।

7, भूमंडलीकरण और उसके प्रतिरोध का समकालीन दौर 1995 से अब तक.... इस दौर में संस्कृति की जगह पतित अप- संस्कृति, ज्ञान की जगह सूचना ने ले ली। सूचना भी वह जो दुनिया में "सूचना-नियंत्रण" करने वाली

बहुराष्ट्रीय सूचना-सत्ताएँ तय करती हैं। दूसरे शब्दों में, सूचना की जगह गलत सूचना और दुशप्रचार तथा प्रायोजित आम-राय और विश्व- अभिमत से इस तरह अब आपके मस्तिष्क को, आपके विचारों को भी नियंत्रित किया जा रहा है।

चुनौतियां: वर्तमान में साहित्य व पत्रकारिता के बीच की दूरी बढ़ती जा रही है, उन्हें एक दूसरे का विलोम माना जाने लगा है. कई मीडिया संस्थानों में साहित्यकारों की अत्यधिक कमी है। आश्चर्य कि बात है कि प्रिंट मीडिया, इलेक्ट्रॉनिक व डिजिटल हिंदी पत्रकारिता सभी में साहित्य के स्थान कम होते जा रहे हैं। पत्रकार साहित्यकारों को नजर अंदाज कर रहे हैं। इससे हिंदी साहित्य और पत्रकारिता दोनों का नुकसान हो रहा है। साहित्यकार अशोक वाजपेयी के अनुसार 'साहित्य अकेला और निहत्था हो गया है: उसे बुद्धि-ज्ञान-विज्ञान के अन्य क्षेत्रों से समर्थन और सहचारिता नहीं मिल पा रहा है', निस्संदेह, साहित्य के बगैर पत्रकारिता निहत्थी भले न हुई हो, अकेली तो वह भी हो गयी है ।राष्ट्र की अस्मिता और गौरव को धूल धूसरित होने से बचाने के लिए मीडिया को देवर्षि नारद के मूल्यों पर आधारित पत्रकारिता को सुदृढ़ करने की आवश्यकता है। नारद मुनि ने कहा था कि नास्ति तेषु जाति विद्या रूप कुल धन क्रियादि भेदः" अर्थात जाति, विद्या, रूप, कुल, धन, कार्य आदि के कारण भेद नहीं होना चाहिए। उनकी यह बात आज के मीडिया पर भी लागू होती है।

निष्कर्ष अंत में हम कह सकते हैं कि युग-विशेष की साहित्यिक पत्रकारिता से ही हम उस युग के साहित्यिक आंदोलनों, बहस- मुबाहिसों, साहित्यिक समस्याओं, प्रश्नों और चुनौतियों तथा इन सबके फलस्वरूप उस युग की नई-नई साहित्यिक प्रवृत्तियों के उभरने, उनके क्रमश: विकास तथा विभिन्न साहित्यिक प्रवृत्तियों के आपसी अंतर्विरोधों और अंतर्द्वद्धों का अंतरंग परिचय पा सकते हैं। यह युग विशेष की साहित्यिक पत्रकारिता ही है, जो हमारे समक्ष उस युग विशेष का भरा-पूरा और कलात्मक प्रतिबिंब प्रस्तुत करती है। इससे हमें अपनी समकालीन समस्याओं और चुनौतियों को समझने में मदद मिलती है तथा भविष्य के सर्जनात्मक संघर्षों का परिप्रेक्ष्य भी।

संदर्भ सूची

1, हिंदी की साहित्यिक पत्रकारिता , लेख श्याम कश्यप

2, हिंदी भाषा विकास में पत्रकारिता का योगदान, डॉ पांडुरंग महालिंगे , मुंबई

3, हिंदी पत्रकारिता और साहित्य का संबंध, लेख कृष्ण प्रताप सिंह

4, पत्रकारिता की दशा और दिशा, पाथेय कण पत्रिका

5, भूमंडलीकरण के दौर में हिंदी की साहित्यिक पत्रकारिता, डॉक ललित श्रीमाली, डबोक राजस्थान

B.Aadhar' International Peer-Reviewed Indexed Research Journal

Impact Factor -(SJIF) –8.632, Issue NO, (CDXLVI) 451-A

ISSN : 2278-9308 December, 2023

दशम् दशक के हिंदी उपन्यासों में 'क्रोध' भाव

डॉ. सन्मुख नागनाथ मुच्छटे,

सहयोगी प्राध्यापक, हिंदी विभाग,

श्री छत्रपति शिवाजी महाविद्यालय, उमरगा, जिला-धाराशिव (महाराष्ट्र)

भ्रमणध्वनी संख्या-९६८९०६३७१५ ईमेल- sunmukhm@gmail.com

प्रास्ताविक: मानव के अंदर क्रोध भाव तब उत्पन्न होता है, जब उसके आत्मप्रभुत्व में बाधा, उद्दिष्टपूर्ति में अवरोध, कामना में विघ्न, अपमान, उपहास, बदनामी आदि की स्थिति निर्माण होती है। डॉ.जे.डी. शर्मा के अनुसार-"पारंपारिक मनोविज्ञान ने यह माना है कि क्रोध युयुत्सा की वृत्ति का एक रूप है। इसका अभिप्राय यह है कि लड़ने, आक्रमण करने तथा विनाश करने की आवेग जन्मजात तथा अनुवांशिक होते हैं। फ्रायडियन मनोविश्लेषकों ने इस विचार का संशोधन मृत्यु -वृत्ति अथवा विनाशक- वृत्ति के रूप में किया है।"1 इसका अर्थ यह है कि क्रोध प्रेरक के रूप में कार्य करता है।इसमें अतिरिक्त शक्ति संचालन करती है। लक्ष्य प्राप्त करने के लिए जो क्रिया होती है उसमें तीव्रता तथा निरंतरता होती है। क्रोध हमारे विचार तथा कार्य को तीव्र कर देता है।आयु तथा संस्कार से क्रोध करने के ढंग में बदलाव आता है। निरंतर क्रोध करने से स्वास्थ्य तथा संबंधों पर दूरगामी परिणाम होते हैं।क्रोध निर्माण करने वाली स्थितियां कायम रहीं तो क्रोध 'बैर'में रूपांतरित होता है। दशम् दशक के हिंदी उपन्यासों में 'क्रोध' भाव का व्यापक मात्रा में चित्रण हुआ है। इस चित्रण को निम्न उपन्यासों द्वारा अभिव्यक्त करने का हम प्रयास करेंगे।

विरेंद्र जैन लिखित 'डूब' उपन्यास में सामूहिक क्रोध का दर्शन होता है। देश स्वतंत्र होने के बाद लड़ैई गांव के लोगों को लगता है कि गांव में मुसलमानों के रहते स्वतंत्रता का कोई अर्थ नहीं है।स्वतंत्रता को यदि सही रूप में लेना है तो सबसे पहले गांव से मुसलमानों को निष्कासित करना होगा। इस मान्यता का परिवर्तन क्रोध में हो जाता है और पूरे गांववाले मुसलमानों पर धावा बोल देते हैं।इस हमले में गांव वाले पूरे मुसलमानों को मार देते हैं और गांव से उनका पूरा नामोनिशान मिटा देते हैं। गांववालों के इस क्रोध के मूल में गलतफहमी और धर्माभिमान है। यह क्रोध अति उच्च कोटि का है। इसमें अमानवीयता का दर्शन अत्याधिक मात्रा में होता है और यह समाज हित के लिए अत्यंत घातक है। प्रस्तुत उपन्यास की गोराबाई अपने कार्य के कारण कैलाश महाराज के उद्दिष्ट पूर्ति में बाधा बनी हुई है। इसलिए कैलाश महाराज गोराबाई को अपने रास्ते से हटाने के लिए कुछ गुंडे भेज देते हैं। गोराबाई को जब यह ज्ञात हो जाता है कि यह कृत्य कैलाश महाराज का है, तब उसके मन में कैलाश महाराज के प्रति तीव्र क्रोध उत्पन्न हो जाता है। वह अपने क्रोध को व्यक्त करते हुए कहती है कि- "आज मैं बच ही गई ब्रह्महत्या करने से!तुम्हारी आयु अभी शेष है महाराज! पर यह खयाल रहे, कभी फिर ऐसी चाल चली तो दो नहीं, दर्जन-भर शोहदे मार गिरा सकती हूं मैं। और उस दफे एक सिर बामण का भी होगा उनमें।"2 गोराबाई का यह क्रोध प्रतिशोध और धमकी के धरातल पर आधारित है और इस क्रोध पर संयम का प्रभाव है। कैलाश महाराज, राम दुलारे को अपनी संतान न मानकर उसे गोराबाई और अट्टू साव की अनैतिक संतान मानते हैं। इस मान्यता के आधार पर वे छल कपट से रामदुलारे को अपनी जायदाद से बेदखल करना चाहते हैं।कैलाश महाराज की इस कूटनीति से गोराबाई का हृदय आहत हो जाता है और वह उनके प्रति अपना क्रोध व्यक्त करते हुए कहती है कि -

"अकेले, हम नहीं देंगे उन्हें अपना रामदुलारे। उस सत्यानाशी का,पापी का बेटा कहलाने से तो हमरा बेटा बिना बाप का ही भला। आग लगे उनके पूरे वंश को! चूल्हे में जाएं उनकी जमीन -जायदाद!हमरे बिटवा को नहीं चाहिए वह पाप से, छल-बल से हासिल धन दौलत।"3 गोराबाई का यह क्रोध पूर्णतया राम दुलारे के बदनामी से चिंतित प्रतिक्रिया है। कैलाश महाराज, रामदुलारे को लेकर गांव वालों के सम्मुख विविध आरोप-प्रत्यारोप लगाते हैं। उनकी बातें सुनकर गांववालों के मन में क्रोध का भाव उत्पन्न हो जाता है और वे सामूहिक स्वर में अपने क्रोध को व्यक्त करते हुए कहते हैं कि-"खबरदार! खबरदार महाराज!बामन देवता अशीषते ही सोहते हैं। अब के बाद जुबान से तो क्या, मन से भी अगर किसी सती- सावितरी या किसी ग्रामपुत्र की बत्तल कुविचार घोका तो फिर भगवान का नाम उच्चारण की भी मोहलत न पाओगे हमसे!"4 गांववालों का यह क्रोध अति तीव्र है। इस क्रोध का धरातल गांव से कुविचार को निकालना है।गांववालों के इस क्रोध की भूमिका पर कैलाश महाराज को सदा के लिए गांव छोड़कर जाना पड़ता है। सरकार की भ्रष्ट नीति से माते क्रोधित होकर कहते हैं कि- "लाबरी है जा सरकार! महा लाबरी! झूठी, महाझूठी!"5 माते के इस क्रोध के मूल में सरकारी भ्रष्ट व्यवस्था है। साथ ही सर्व सामान्य जनता के प्रति सहानुभूति भी।

प्रभा खेतान कृत 'छिन्नमस्ता' उपन्यास में प्रिया के मासिक धर्म से उसकी मां क्रोधित हो जाती हैं। वे अपने क्रोध को व्यक्त करते हुए कहती हैं कि-" मरणजोगी! आज ही होना था..... कल तेरे बाबूजी की बरषोदी है। ताई-चाचा सब आएंगी और ताई की गिद्ध दृष्टि से कुछ छुप नहीं सकता -सल्लो यह तो साढे दस की उम्र में ही चौदह की लगने लगी।"6 प्रिया की मां के इस क्रोध के मूल में प्रतिष्ठा के बदनामी का भय है। यह क्रोध अमाननीय और बच्चों की मानसिकता पर दूरगामी प्रभाव डालने वाला है। प्रस्तुत क्रोध वर्तमान पारिवारिक परिवेश में स्थित वात्सल्यहीन भाव को उजागर करता है। सुरेंद्र वर्मा लिखित 'मुझे चांद चाहिए'उपन्यास में वर्षा महाविद्यालयीन नाटकों में हिस्सा लेती है।दर्शकों के सम्मुख वह नाटक में अभिनय करती है।उसकी इस कृति से पिता क्रोधित होकर कहते हैं कि-" यह मैं क्या सुन रहा हूं? तू नौटंकी में काम कर रही है?.... कान खोल कर सुन ले, हर बात की हद होती है। आखिर हमारे घर की भी कोई इज्जत है!"7 वर्षा के पिता का क्रोध बदनामी के भय से प्रभावित है। इसके मूल में उनकी पारंपारिक विचारधारा है। प्रस्तुत उपन्यास में हर्ष के साथ रंजना धोखा करती है। उसके कारण हर्ष के मन में रंजना के प्रति तीव्र क्रोध भाव का निर्माण होता है और वह उसको व्यक्त करते हुए कहता है कि-" मक्कार! हरामजादी! मादरचोद!..... उसकी लागत एक लाख के करीब होनी चाहिए। चलो, दरें ऊंची लगाते हुए डेढ मान लो।माधव से वह तीन लाख लाई हैं। इसमें से डेढ़ तो उसने पहले ही अंदर कर लिए हैं।अब सीधे पांच के लिए मुंह फाड़ रही है? उसके होश ठिकाने हैं या नहीं? 'मुक्ति' के अधिकारों के साथ वह अपने आप को भी बेच दे,तो उस कुत्तिया का कौन-सा आशिक उसे पांच लाख दे देगा?"8 हर्ष का यह क्रोध अर्थ के धोखे के कारण उत्पन्न हुआ है और अर्थ का धोखा वर्तमान मनुष्य को कितने निम्न स्तर को गिरा सकता है इसका प्रमाण उपरोक्त कथन है।

मैत्रेयी पुष्पा द्वारा सृजित 'इदन्नमम' उपन्यास में बऊ की बहू अपनी बेटी मंदा को उनसे छीनना चाहती हैं।बऊ की बहू ने पति की मृत्यु बाद पर-पुरुष का हाथ थाम कर घर से चली गई है। जाते समय उसने अपनी छोटी बेटी मंदा की कोई परवाह नहीं की। लेकिन बाद में जायदाद की प्राप्ति के लिए वह मंदा को कानून के सहारे बऊ से छीनना चाहती है। अपनी बहू की इस कृति के प्रति बऊ के मन में अपार क्रोध है। अपने क्रोध भाव को व्यक्त करते हुए वे कहती हैं कि- " एक ही घर की दो जनी! एक ही ड्योढ़ी की सास-बहू! ऐसी दुसमनाई!ऐसी गहरी खंदक! और ऐसी बेरहम दूरी!लो, अब कहां जावें? कितै करें निर्वाह? कौन गुफा में दुका देवें मंदा को? कौन सुरंग से निकर जायं कहूं दूर देस....."9 बऊ का यह क्रोध बहू की कपट नीति के प्रति है और उससे उनका रक्तचाप बढ़ जाता है। इस क्रोध

भाव में अपनत्व का -हास हुआ है। प्रस्तुत उपन्यास में जगेसर मंदा के प्रति अपशब्द निकालता है। तब बऊ का क्रोध चरम सीमा पर पहुंच जाता है और वे कहती हैं- "लला, हम कै रये यहाँ न करें अटं-चमंट बातें। जगेसर क्या रोटी नहीं खाते ,भुस खाते हैं ? मानुस नहीं ,ढोर की जात हैं , जो सोच-समझकर नहीं बोल रहे !"10 बऊ के इस क्रोध के मूल में जगेसर के मंदा पर लगाए गए झूठे लांछन हैं। यहां बऊ का क्रोध तीव्र और कठोर रूप में व्यक्त हुआ है। क्रोध की तीव्रता का संबंध कहीं - न -कहीं प्रतिष्ठा की बदनामी से जुड़ा हुआ परिलक्षित होता है। प्रस्तुत उपन्यास में यशपाल को अपनी पत्नी कुसुमा के चरित्र पर संदेह है।इसलिए वह बार-बार उसका अपमान करते रहता है। उसको संदेह है कि कुसुमा का उसके बड़े भाई के साथ शारीरिक संबंध हैं। इससे उसके मन में कुसुमा के प्रति तीव्र क्रोध उत्पन्न होता है। इसको व्यक्त करते हुए वह कहता है कि-" साली! हरामजादी! बदफैल!"11 अपने क्रोध को अधिक प्रभावशाली ढंग से व्यक्त करने के लिए वह अपनी पत्नी को मारपीट भी करता है। उसका क्रोध पूर्णतया काल्पनिक धरातल पर आधारित है। फलस्वरूप उसके दांपत्य जीवन में टूटन की स्थिति निर्माण हुई है। यह क्रोध अति उच्च कोटि का है। इसमें भविष्य की चिंता नहीं के बराबर है।

देश को स्वतंत्रता मिलने के पूर्व समाज में कुछ ऐसे लोग थे, जो अंग्रेजी सत्ता के प्रशंसक थे। वे अंग्रेजों के भाट थे।उनको अंग्रेजों ने बड़ी-बड़ी उपाधियों से विभूषित किया था। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी उन्होंने समाज की आंखों में धूल डालकर समाज में स्वयं को समाजसेवक के रूप में प्रतिष्ठित किया और अपने आप को समाज के संवेदनशील, हितचिंतक के रूप में प्रस्तुत किया। वीरेंद्र जैन कृत 'पंचनामा' उपन्यास में रायबहादुर स्वतंत्रता पूर्व काल में अंग्रेजी सत्ता के हितचिंतक और प्रशंसक थे। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद उन्होंने समाज में अपनी छवि समाज सेवक के रूप में निर्माण की। अकलंक को उनका असली रूप स्वतंत्रता संग्राम का साहित्य पढ़ने से ज्ञात हुआ है। इसलिए उनके बनावटी रूप के प्रति उसके मन में तीव्र क्रोध उत्पन्न हुआ है और वह इसके माध्यम से उनके मूल रूप से सभी को परिचित करवाते हुए कहता है कि- "साथियों, मैं तुम्हें आज एक कटु सत्य बताने जा रहा हूं। यह तो तुम सब जानते ही हो कि सन् 47 से पहले तक अपना देश, अपनी भारत माता अंग्रेजों के अधीन थी। तो जिन दिनों वे गोरी चमड़ी वाले विलायती हमारी भारत माता के सपूतों पर अत्याचार कर रहे थे, हमारी भारत माता के साथ बलात्कार कर रहे थे, तब भारत माता के जो कपूत उनके हंटर और दीया लेकर उनकी सेवा में खड़े रहते थे, उन्हें अंग्रेज स्वामीभक्त, वफादार चौकीदार उर्फ रायबहादुर.... सर सेठ.... जैसे तमगे पहनाया करते थे....."12 अकलंक का क्रोध पूर्णतया राष्ट्रवाद से प्रेरित है और उसमें प्रतिशोध का भाव स्पष्ट रूप में दृष्टिगोचर होता है।

मनुष्य की स्वाभाविक वृत्ति है कि कोई उसका गलत प्रयोग करे तो उसके प्रति क्रोध उत्पन्न होता है। मृदुला गर्ग लिखित 'कठगुलाब' उपन्यास में मारियान ने अनुसंधान के लिए जमा की गई सामग्री का इर्विंग गलत प्रयोग कर, उस पर उसकी अनुमति लिए बगैर उपन्यास का सृजन करता है। तब मारियान उस पर अपना क्रोध व्यक्त करते हुए कहती है कि- "वह सब झूठ था, मेरा इस्तेमाल कर रहे थे तुम!"13 मारियान का क्रोध मिथ्या सृजनशीलता और सृजन कार्य के प्रति है। उसका क्रोध वर्तमान परिवेश में स्थित मिथ्या सृजनकार की वृत्ति का पर्दाफाश करती है। लंबे समय से बीमार व्यक्ति के प्रति पारिवारिक सदस्यों में गहरा क्रोध होता है। इस क्रोध के मूल में उनके इलाज में लगने वाला पैसा और सेवारत परिवार का व्यर्थ समय है। प्रस्तुत उपन्यास में नमिता का पति लंबे समय से बीमार है। पूरा परिवार उसके इलाज और सेवा से त्रस्त है। इसलिए नमिता अपने पति पर समय- असमय क्रोध व्यक्त करते रहती है। जैसे-"मर जाओ तो पाप कटे। पर मरोगे नहीं तुम, मेरी छाती पे मूंग दलोगे। दुबारा फालिज पड़ेगा। खुद बिस्तर पर पड़े सडोगे, साथ हमें भी सडाओगे।चीखो मत। ब्लडप्रेशर बढ़ाओगे तो मुसीबत हमारी आएगी। और यह भरम निकाल दो मन से कि तुम बड़े तीसमारखां हो।....."14 उपन्यास में बावला अपने वेतन के कुछ पैसे

खर्च करने के बाद उसका जीजा गनपत क्रोधित होकर उसे मारपीट करता है। गणपत का क्रोध अति उच्च कोटि का है और उसका रूपांतरण मारपीट में हो जाता है इस संदर्भ में उपन्यास में लिखा गया है कि गुस्से से दांत पिस्ता खाली हाथ मलता गणपत घर में घुसा और आते ही बावले पर पिल पड़ा। वह पिटाई इतनी निर्मम थी कि नर्मदा मुंह बाये जड रह गयी और गंगा, न चाहते हुए भी, भाई का बचाव करने बीच में आ गयी। गनपत ने उसे धक्का देकर जमीन पर गिरा दिया और उसकी पीठ पर सवार हो गया। फिर जूते की नोक से उसकी यूं ठुकाई की, जैसे घोड़ी के पैर में नाल जड रहा हो। कमर से खून का परनाला बह निकला।"15 गनपत का क्रोध निर्मम प्रकार का है और इसके मूल में अर्थ का अभाव है। उपन्यास में असीमा की मां ने अपने बदचलन पति को त्याग कर उससे बच्चों का भी संबंध काट दिया है।असीमा का पिता आर्थिक दृष्टि से संपन्न व्यक्ति है।उससे असीमा और असीम का संबंध कटने से दोनों को आर्थिक अभाव का सामना करना पड़ता है। फलस्वरूप उन्हें विविध अभावों में अपना जीवन जीना पड़ता है। असीम इस परिस्थिति के लिए अपनी मां को जिम्मेदार ठहराता है। उसके मन में अपनी मां के प्रति अपार क्रोध है। इस क्रोध को व्यक्त करते हुए वह कहता है कि-" तुम्हारे लिए होगी। हमारे लिए तो शर्म की बात है। पूरा बचपन कंगालों की तरह काटना पड़ा। दोस्तों के सामने जलील होना पड़ा। सब तुम्हारी अकड़ की वजह से। पति से एक पैसा नहीं लूंगी, वाह-भाई-वाह! वे सिर्फ तुम्हारे पति नहीं, हमारे डैडी भी हैं। जिस-तिस पर लाखों लुटाते फिरते हैं, और उनके बच्चों को तुम भिखमंगों की तरह पाल रही थीं। तुम मां हो या दुश्मन!"16 असीम के इस क्रोध का धरातल अर्थ का अभाव और आवश्यक चीजों की पूर्ति का ना होना है।

प्रत्येक मनुष्य को अपने घर के स्त्री की इज्जत प्यारी होती है। स्त्री की इज्जत माने पूरे परिवार और घर की इज्जत। कोई इस इज्जत से खिलवाड़ करे, इसे मनुष्य सह नहीं सकता। मैत्रेयी पुष्पा कृत 'चाक' उपन्यास में डोरिया ने सारंग की इज्जत के साथ छेड़खानी की है। इसलिए सारंग के ससुर डोरिया और उसके परिवार वालों पर क्रोधित होते हैं। वे इसका प्रतिशोध लेने के लिए बंदूक लेकर डोरिया के घर जाते हैं और उसे ललकारते हुए कहते हैं कि-"ओ साधजी! करनसीघा! अरे निकाल उस हराम के मूत को। मैं आ गया,देखूं तो सही कि वह किस कमीन की बूंद से जाइंदा..... "17 सारंग के ससुर का यह क्रोध प्रतिष्ठा की रक्षा और प्रतिशोध से परिपूर्ण है। यह क्रोध तीव्र प्रकार का है। कोई भी पिता अपने बेटे की बुरी करतूत को स्वीकार नहीं करता। प्रस्तुत उपन्यास में गजाधरसिंह अपने बेटों के बुरे करतूतों पर अपना तीव्र क्रोध व्यक्त करते हैं। उनका क्रोध बेटों के अच्छे भविष्य की चिंता से प्रभावित है। वे अपने बेटों की अप्रतिष्ठा समाज में नहीं चाहते हैं।

ममता कालिया के 'एक पत्नी के नोट्स' उपन्यास में कविता और संदीप के दांपत्य-जीवन में क्रोध का परिवेश समय-असमय कभी भी निर्माण होता है। कभी क्रोध कविता को आता है, तो कभी संदीप को। दोनों का क्रोध एक-दूसरे के प्रति है। इस क्रोध का मूल कारण वैचारिक भिन्नता है।इस क्रोध से दोनों के संबंधों में टूटन की स्थिति निर्माण हुई है। इस क्रोध के मूल में रोजमर्रा जीवन की साधारण घटनाएं हैं। आरंभ में क्रोध सामान्य दिखाई देता है और बाद में वह तीव्र रूप धारण करता है।

पुष्पा के 'अल्मा कबूतरी' उपन्यास में धीरज पर सूरजभान के लोग लैंगिक अत्याचार करते हैं। धीरज की सगाई फतेहपुर के माधोसिंह की लड़की के साथ हुई है। लैंगिक अत्याचार की खबर माधोसिंह को लगने के बाद वे अपनी लड़की धीरज को देने से नकारते हैं और सगाई तोड़ देते हैं। इससे धीरज के पिता की प्रतिष्ठा मिट्टी में मिल जाती है। उनको सभी ओर घोर अपमान का सामना करना पड़ता है। इसलिए उनको अपने बेटे पर तीव्र क्रोध आता है। वे अपने क्रोध को व्यक्त करते हुए कहते हैं कि- "कबूतरी थी न वह? रंडी। रंडी की इज्जत बचाने के लिए बाप की पगड़ी से खेल गया? हरामी, तू मेरे अंश से पैदा नहीं। साले, नरक के कीड़े, उस मंसाराम के लक्षण लेकर जन्मा है,

सो खसिया कर डाला। भोग अब,और भाग जा यहां से करिया मुंह करके। निकल, निकल बेटीचो.... उस मंसा की...."18 धीरज के पिता का यह क्रोध अति तीव्र है और इससे बाप-बेटे के संबंधों में सुरंग लग गया है।

चित्रा मुदगल लिखित 'आवां' उपन्यास में अंजना वासवानी के मन में निम्न जाति के प्रति घृणा है। जब नमिता मजदूर संगठन के पवार को मिलने के लिए अंजना वासवानी के कार्यालय में बुलाती है तब वे नमिता पर तीव्र क्रोध व्यक्त करते हुए कहती है कि-"मजदूर संगठन से जुड़े व्यक्ति को उसने दफ्तर बुलाया क्यों? उनका दफ्तर किसी सार्वजनिक स्थल पर नहीं,खुद उनके घर के भीतर है। घर की कोई निजता होती है। बाहर के लोग बिना उनकी अनुमति लिए उनके घर आए, उन्हें बिल्कुल पसंद नहीं। ऐसी अनधिकार चेष्टा उसने की क्यों ?पवार से उसे मिलना था या उसे उससे मिलना था तो समय निश्चित कर कहीं और मिल सकती थी!"19 वास्तव में अंजना वासवानी निसंतान रईसों की दलाल हैं। नमिता जैसे गरीब लड़कियों को धन का लोभ दिखाकर उनकी कोख बेचने का काम करती हैं। इसलिए वे अपने इस राज को किसी के सामने खुलने देना नहीं चाहती। परिणामस्वरूप किसी अजनबी और निम्न जाति के व्यक्ति को अपनी अनुमति बिना घर में प्रवेश नहीं देती हैं। उनका उपरोक्त क्रोध इसी विचारधारा से निर्मित है। नमिता के कोख का संजय कनोई अपने स्वार्थ पूर्ति के लिए प्रयोग करता है।इसलिए वह उसके साथ छूठे प्रेम का ढोंग करता है।वह नमिता को न चाह कर उसकी कोख में पलने वाले गर्भ से प्रेम करता है। नमिता को जब संजय की पूरी योजना ज्ञात होती है,तो वह गर्भपात करा लेती है तब संजय अपने उद्दिष्ट में बाधा उत्पन्न होने के कारण नमिता पर क्रोधित हो जाता है। वह अपने क्रोध को अभिव्यक्त करते हुए कहता है कि-"झूठी....प्राण ले लूंगा मैं तुम्हारे..... मुझे मेरा बच्चा चाहिए..... बच्चा! जानती हो? बाप बनने के लिए मैंने तुम्हारे ऊपर कितना खर्च किया? उस मामूली औरत अंजना वासवानी की औकात है कि तुम्हारे ऊपर पैसा पानी की तरह बहा सके? उसका जिम्मा सिर्फ इतना-भर था कि वह मेरे पिता बनने में मेरी मदद करें और सौदे के मुताबिक अपना कमीशन खाए। वह ऐसी पचासों लड़कियों को परोस सकती थी,जो मुझसे यौन-संबंध कायम कर केवल पचहत्तर हजार में मुझे बाप बना सकती थी....."20 संजय के इस क्रोध के मूल में अपने उद्दिष्ट की असफलता है।यह क्रोध तीव्र प्रकार का है।

संक्षेप में दशम् दशक के हिंदी उपन्यासों में उपन्यासकारों ने क्रोध के प्रति व्यापक संवेदना प्रकट की है। यह क्रोध तीव्र, अति तीव्र तथा उच्च प्रकार का है। कहीं-कहीं इस क्रोध का दुष्परिणाम स्वास्थ्य तथा संबंधों में तनाव, टूटन की स्थिति निर्माण करनेवाला प्रतीत होता है। इस क्रोध के मूल में विविध कारण हैं और उसके आधार पर क्रोध की तीव्रता आधारित है। क्रोध, मानव मन का घातक भाव है और उसका घोर प्रभाव संबंधों पर पड़ता है। इसलिए यह मनुष्य में सौम्य मात्रा में ठीक है परंतु तीव्र मात्रा में नहीं। इसी संदेश के साथ दशम् दशक के हिंदी उपन्यासकारों ने 'क्रोध'भाव के प्रति अपनी संवेदना प्रस्तुत की है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1)डॉ.जे.डी.शर्मा-सामान्य मनोविज्ञान,पृ.663

2) वीरेंद्र जैन - डूब , पृ.129

3) वही , पृ.152

4) वही , पृ.275

5) वही , पृ.288

6) प्रभा खेतान - छिन्नमस्ता, पृ.49

7) सुरेंद्र वर्मा - मुझे चाँद चाहिए , पृ.28 8) वही, पृ.482

9) मैत्रेयी पुष्पा - इदन्नमम, पृ.43

10) वही , पृ.180

11) वही , पृ.122

12) वीरेंद्र जैन-पंचनामा , पृ.220

13) मृदुला गर्ग - कठगुलाब , पृ.95

14) वही , पृ.127

15) वही , पृ.142

16) वही , पृ.169

17) मैत्रेयी पुष्पा - चाक , पृ.46.

18) मैत्रेयी पुष्पा- अल्मा कबूतरी , पृ.324

19) चित्रा मुदगल - आवाँ , पृ.450

20) वही , पृ.539

B.Aadhar' International Peer-Reviewed Indexed Research Journal

Impact Factor -(SJIF) –8.632, Issue NO, (CDXLVI) 451-A

ISSN : 2278-9308 December, 2023

दलित साहित्य में अस्मिता मूलक विमर्श

डॉ.शेख शहेनाज अहेमद

शोध लेखक हिंदी विभागाध्यक्ष हुतात्मा जयवंतराव पाटील महाविद्यालय, हिमायतनगर, जि.नांदेड

छलित विमर्श जाति आधारित अस्मिता मूलक विमर्श है । इसके केंद्र में दलित जाति के अंतर्गत शामिल मनुष्यों के अनुभवों, कष्टों और संघर्षों को स्वर देने की संगठित कोशिश की गई है। यह एक भारतीय समाज की बुनियादी संरचनाओं में से एक है। अस्मिता विमर्श का आशय स्पष्ट है - अपने अस्तित्व का बोध, जो आत्मनिर्णय और आत्माभिव्यक्ति का प्रश्न है।

अस्मितामूलक स्मर्श को जानने से पूर्व हमे अस्मिताशब्द का अर्थ और स्वरूप को समझना होगा। 'आदर्श हिंदी शब्दकोश' में ''अस्मिता, शब्द के लिए आत्मश्लाघा, अहंकार मोह आदि अर्थ दिए गए है।''[१] 'अस्मि' शब्द अस + मिन से बना है। अस्मि अर्थात मैं हूँ। ''अस्मि की भाववाचक संज्ञा 'अस्मिता' है। इस शब्द से स्वत्व का बोध होता है।''[२] वामन शिवराम आप्टे के अनुसार, ''अस्मिता शब्द की निर्मिती अस्मि + तल + टाप से हुई है। जिसका अर्थ है-अहंकार।''[३]

बीसवीं सदी विमर्शो की सदी है। इस सदी में समाज के सभी वंचित समुहों ने अपने अधिकार और अपनी अस्मितागत पहचान के लिए निर्णायक लड़ाई छेड़ रखी है। ये लड़ाई किसी के विरूध्द नही बल्कि अपने पक्ष में लड़ी जा रही है। इनल लड़ाईयों के पीछे एक सुविचारित दर्शन कार्य कर रहा है। हिंदी साहित्य के तीनों विमर्शों में समाज के इन वंचित वर्गों ने कहानी, कविता, उपन्यास, आत्मकथा और अन्य विधाओं के माध्यम से साहित्य जगत में मुख्य धारा का ध्यान अपनी ओर खींचा है। इन तीनों विमर्शों में शोषित समाज के हक के लिए लेखन कार्य किया जा रहा है। यह तीनों विमर्श वर्तमान समय में देश के लगभग सभी विश्वविधालयों के हिंदी या अन्य भाषाओं के पाठयक्रम का हिस्सा है। विविध विश्वविद्यालयों में इन विमर्शों पर अनुसंधान और शोध कार्य किया जा रहा है।

अस्मिता विमर्श की शुरूवात ही दलित एवं वंचित होने के अहसास के साथ होती है। 'दलित' शब्द को समाज में आर्थिक दुरावस्था गरीबी के पीडित जनों के लिए प्रयुक्त किया जाता है। ये वे लोग है जिन्हें सदियों से वर्ण जाति, धर्म, संप्रदाय के नाम पर सामाजिक प्रताडना का शिकार होना पड़ा है।

सर्वप्रथम अँग्रेजी सरकार ने १९३३ में जबष्क्मचतमेमक बसेंमेष समाज के लोगों में कुछ सुविधाएँ दी थी तब पहली बार 'दलित' शब्द का प्रयोग किया। सामाजिक और आर्थिक रूप से शोषित, पीडित, वंचित, दलित व कुचला हुआ वर्ग दलित वर्ग माना गया। भारतीय समाज में सदियों से सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक रूप से उत्पीड़ित वर्ग ने अत्याचार व शोषण के खिलाफ़ अपने अधिकारों की माँग करना शुरू किया वहीं से दलित अस्मिता की शुरूवात होती है। एक समय था जब उत्पीड़ित वर्ग अपने उपर हो रहे अन्याय, पीड़ा तथा शोषण को नियति मानकर चूप रहा जाता था। उसके बाद इस वर्ग ने अपनी पीड़ा को लेखनी के माध्यम से अभिव्यक्ति देना प्रारंभ कर दिया। इसी उत्पीड़ित वर्ग से आये लेखकों ने अपने विचारों से एक ऐसा आंदोलन खड़ा कर दिया जिसने इस वर्ग को शोषकारी शक्तियों के खिलाफ़ अपने मानवीय अधिकारों व अस्तित्व के प्रति लड़ने व जुझने की उर्जा प्रदान की।

जब तक साहित्य यथास्थिति से टकराने का साहस और प्रेरणा नही देता और किसी नई मूल्य दृष्टि और चेतना का प्रसार नही करता, तब तक स्त्री लेखन या पुरूष लेखन, दलित और गैर-दलित, आदिवासी-गैर आदिवासी लेखन का विभाजन सही दिशा निर्माण और वास्तविक समस्याओं को व्यापक परिदृश्य में और सार्थक तरीके से प्रस्तुत नहीं कर सकता। जैसे स्त्री पुरूष समानता और लैंगिक भेदभाव की समस्या आज एक बड़ा सवाल है और हमारे जैसे परंपरावादी समाज की संरचना में यह बहुतसी जटिलताएँ लिए हुए है। इसलिए साहित्य में धर्म जाति, लिंग, भाषा आदि की सीमाएँ नही होनी चाहिए और स्त्री पर स्त्री लेखन कर सकती है और दलित पर केवल दलित लिख सकते है तभी वह प्रामाणिक होगा, यह धारणा भी एकांगी है। किसी रचना की सार्थकता इसमें है कि वह अपने समय, समाज और परिवेश की मनुष्य विरोधी ताकतों से कितनी मुठभेड़ करती है। व्यवस्था में न्याय और समानता के लिए कैसे संघर्ष और हस्तक्षेप करती है।

दलित वर्ग ने साहित्य लेखन को अस्मिता व पहचान का हथियार बनाया। दलितों के अपने अधिकारों के लिये संघर्ष से ही दलित साहित्य का जन्म हुआ। दलित साहित्य के बारे में चर्चा करते हुए मोहनदास नैमिशराय ने लिखा है कि, ''दलित साहित्य पीड़ा, वेदना, मुक्ति का ही साहित्य नहीं, बल्कि अपने अधिकारों अस्मिता और पहचान के लिए संघर्ष करनेवालों का भी साहित्य है।''[४] इस प्रकार मोहनदास नैमिशराय दलित साहित्य के माध्यम से दलित अस्मिता को व्याख्याचित करते है। उनके मतानुसार दलित अस्मिता में अपने स्वाभिमान को हासिल करने के लिए भीख व अनुनय का

सहारा लेना नहीं, बल्कि अपने लिए न्यायपूर्ण अधिकारों व हक की लड़ाई लड़ना है जिसके लिए यह शोषित व उत्पीड़ित वर्ग कलम व कागज़ को माध्यम बनाता है।

साहित्य में वास्तविक मुद्दा हमेशा मानवीय मुक्ति और विशाल जन-जीवन के जनतांत्रीकरण मुद्दा है। जब तक रचनाकार का आंतरिक संघर्ष स्पष्ट मुखर और व्यवस्थित नही होगा, तब तक वह बाहय समस्याओं से लड़ नही सकता। मुक्तिबोध ने इसे 'सर्वहारा चेतना' का नाम दिया था, जो लेखक के क्षोभ और आत्मसंघर्ष को समस्त पीड़ित मानवता से एकाकार कराती है। प्रतिरोध की यही चेतना और संघर्ष की आकांक्षा उन्हे साधारण मानव में असाधारणता का बोध कराती है। प्रेमचंद, निराला, राहुल सांकृत्यायन,यशपाल और नागार्जून जैसे अनेक प्रसिध्द लेखकों ने अपने लेखन और साहित्य में वर्चस्ववादी, अभिजात मूल्यों को हमेशा प्रश्नांकित किया और सदियों से चले आ रहे शोषण, उत्पीड़न का सशक्त विरोध करते हुए जाति, सांप्रदायिकता और वर्ण से मुक्त लोकतांत्रिक मूल्यों से साहित्य को जोड़ा।

दलित साहित्य को मानवीय सरोकारों व संवेदनाओं की यथार्थ अभिव्यक्ति बताते हुए वरिष्ठ दलित साहित्यकार ओमप्रकाश वाल्मिकि ने लिखा है कि ''दलित साहित्य जन साहित्य है, यानी मास लिटरेचर सिर्फ इतना ही नही लिटलेचर ऑफ एक्शन भी है जो मानवीय मूल्यों की भूमिका पर सामंती मानसिकता के विरूध्द आक्रोश जनित संघर्ष है। इसी संघर्ष और विद्रोह से उपजा है दलित साहित्य।''[५] इस प्रकार ओमप्रकाश वाल्मिकि भी दलित साहित्य को दलितों पर सदियों की गुलामी व यातना के विरूध्द संघर्ष व विद्रोह का परिणाम ही मानते है।

अस्मिता विमर्शमूलक साहित्य रूपों में दलित साहित्य का विशेष महत्व है, जो हिंदी साहित्य में मानवतावाद को स्थापित करने के लिए प्रयासरत है। दलित साहित्य के व्यापक मानवतावादी दृष्टिकोण की ओर संकेत करते हुए ओमप्रकाश वाल्मिकी लिखते है-''दलित लेखन केवल दलितों के अधिकार एवं मूल्यों तक सीमित नही है बल्कि सामाजिक संदर्भों के साथ रचनाकर्म से जुड़कर साहित्य की सृजनात्मकता में मानवीय सरोकारों, संवेदनाओं और स्वतंत्रता, भाई-चारे की भावनाओं को स्थापित करता है। उसकी दृष्टि में प्रत्येक व्यक्ति और उसकी पीड़ा उसके सुख-दुख महत्वपूर्ण है। उसमें दलित हो या स्त्री, उसके प्रति रागात्मक वादात्म्य स्थापित करना दलित साहित्य का प्रमुख प्रयोजन है। दलित चिंतन ने नया आयाम देकर साहित्य की भावना का विस्तार किया है। पारम्पारिक और स्थापित साहित्य को आत्मविश्लेषण और पुनर्विश्लेषण के लिए बाहय किया है।झूठी और अतार्किक मान्यताओं का निर्ममता से विरोध किया है।''[६]

रूढ़ियों के प्रति दलित साहित्य की विद्रोही प्रवृत्ति को देखकर कुछ लोग इस पर आरोप लगाते है कि यह वर्चस्व के लिए संघर्षरत लोगों का साहित्य है। सवर्णों का वर्चस्व समाप्त कर दलितों को वर्चस्व स्थापित हो जाएगा, तो भी स्थिति ज्यों-कि-त्यों रहेगी। लेकिन यह लोगों का भ्रम है। सवर्णों का वर्चस्व राजतंत्र काल में स्थापित हुआ था, लोकतंत्र में इसकी संभावना बिलकुल नही है। एक और महत्वपूर्ण बात है-जाति आधारित भेद-भाव, शोषण, अन्याय अत्याचार के विरूध्द विद्रोह और समाज में समता, स्वतंत्रता, बंधुता की स्थापना के लिए रचे जा रहे दलित साहित्य के मूल प्रेरणास्त्रोत मानवमात्र के हितचिंत वही डॉ.बाबासाहब अम्बेडकर है जिनके विषय में आचार्य रामस्वरूप चतुर्वेदी ने महत्वपूर्ण बात कही है-'' इस देश का एक संविधान स्वतंत्र आर्यावृत्त में महाराज ने रचा था, और दूसरा देश के फिर से स्वाधीन होने पर डॉ.अम्बेडकर ने रचा। मनु के विधान में अम्बेडकर के लिए स्थान नही था, या नही जैसा था, अम्बेडकर के विधान में मनु के लिए पूरा स्थान है।''[७] वास्तव में दलित साहित्य डॉ. अम्बेडकर के मानववाद का प्रचार-प्रसार का काम कर रहा है। यही अस्मिता मूलक साहित्य की पहचान है।

टाज दलितों की सामाजिक, स्थिति में परिवर्तन आने लगा है। उन्हें अपनी अस्मिता व आत्मसमान के के साथ जीने का हक है। उनकी भी जिंदगी में बदलाव आ सकता है और वे भी अपने मुक्ति के रास्ते खोज सकते है यह अहसास उन्हें अब होने लगा है। लेकिन राजनीतिक तौर पर उनके उत्थान के नाम पर जो हो रहा है वह व्यक्ति पूजा के कारण निराशजनक है। ''दलित वैश्विकरण और सामाजिक पृथकता की राजनीति के बीच सैंडविच बन गए है। धर्म और धर्मांतरण की तरह वैश्वीकरण भी एक छद्म आशा है इसके मायालोक में दलितों की आवाज गुंज रही है और खोती भी जा रही है।''[८]

टाज देश की स्थिति ऐसी है कि प्रतिनीधिक जनतंत्र सांस्कृतिक प्रतिनिधित्व की ही राजनीति है। दलित पिछड़ो की राजनीतिक लड़ाई चरम सिमा पर है। वर्तमान में हिंदी समाज भी भेदभाव, पृथकता और घृणा-प्रतिघृणा का केंद्र बना हुआ है। वर्तमान समय में दलित विखंडन के अतिवादों ने अस्मिता के सवाल को एक प्रायोजित मामला बना दिया है। दलित विमर्श में परम्पराओं एवं रूढ़ियों के विखंडन की उत्सुकता जितनी पुरानी है, साम्राज्यवाद से मुठभेड़ की नही है। हिंदी क्षेत्र में दलित अस्मिता आंदोलन के रूप में जगह नही ले पा रही है। इस आंदोलन में सच्ची पीड़ाओं के रहते उत्तेजनात्मक बातें अधिक है। आज दलित अस्मिता और दलित राजनीति के बीच अंतर है। दलित राजनीति में आज न समाज में व्याप्त में व्याप्त अंधविश्वासों को निकाल फेंकने की बात है और न ही स्त्री मुक्ति का कोई प्रश्न। आज दलित राजनीति में वे सारी बाते या विकृतियाँ आ गई है जो लोकतांत्रिक कहे जाने वाले राष्ट्रीय दलों को खा चूकी है। सदियों से मुख्यधारा में

शामिल शोषित, पीड़ित व अपनी अस्मिता से अनभिज्ञ इस समाज को प्रथम महात्मा बुध्द ने अपने अधिकारों की पहचान दिलायी। उन्होंने ही वर्णव्यवस्था का विरोध का व्यक्ति केंद्रित दर्शन प्रस्तुत किया। दलित अस्मिता भी वर्णव्यवस्था का विरोध करते हुए बुध्द की समतावादी दृष्टि, करूणा व शील की भावना को स्वीकार करती है। महात्मा बुध्द के बाद मध्ययुग में निर्गुणवादी संतो ने भी वर्णव्यवस्था पर टीका कर अपनी आवाज बुलंद की। उन्होंने संपूर्ण देश में कड़े शब्दों में मनुष्य को केंद्र में रखकर चिंतन प्रस्तुत किया।

छलित साहित्य इन्हीं संतों की इस ऐतिहासिक भूमिका को पूर्ण सम्मान के साथ स्वीकार करता है। संतों को छोड़कर शेष समाज की दलितों को देखने की दृष्टि में कोई विशेष बदलाव नही आया। फिर भी यह दलित समाज संतो के इस विद्रोह और आक्रमकता के सामने नतमस्तक होता है। दलित साहित्य फूले के क्रांतिकारी परिवर्तनशील विचारों को भी स्वीकार करता है। जिनके माध्यम से फुले ने सर्वधर्म समभाव व धर्म-निरपेक्षता का व्यापक आदर्श संपूर्ण भारतीयों के सामने रखा। वे दलितों की ऐसी स्थिति का कारण शिक्षा व ज्ञान को मानते थे। महात्मा फुले ने दलित ही नही बल्कि हर समाज की उन स्त्रियों के लिए भी शिक्षा व ज्ञान का द्वार खोला जो दलित से भी दलित जीवन जिया करती थी। महात्मा फुले के बाद दलित साहित्य के सृजन में डॉ.अम्बेडकर की विचारधारा मूल रूप से काम कर रही है। उनकी विचारधारा दलित साहित्य का प्रस्थान बिंदू है। डॉ.अम्बेडकर दलित साहित्य की प्रेरणा है। डॉ.अम्बेडकर ने दलितों को न केवल उनके आत्म-सम्मान, अस्मिता व स्वाभिमान का अहसास कराया बल्कि भारतीय समाज में अपना स्थान भी दिलाया। उन्होंने ही दलितों को उनके मानवीय अधिकारों से परिचित कराते हुए अन्याय व अत्याचार के खिलाफ़ लड़ना सिखाया। अम्बेडकर के संपूर्ण विवेचन के केंद्र में मनुष्य है। मनुष्य को उसके मानवीय अधिकारों से अवगत कर उसे उपलब्ध करा देना वे अपना कर्तव्य समझते थे। दलित साहित्य अम्बेडकर के संपूर्ण विश्लेषण और सुझावों को पूर्ण रूप से स्वीकार करता है। अस्मिता, स्वाभिमान व मानवीय अधिकारों की रक्षा के लिए डा.अम्बेडकर ने 'पढ़ो' 'संगठित हो जाओ' और ' संघर्ष करो' ये तीन सूत्र दिए। दलित-साहित्य इनके ये तीन सूत्रों को अस्मिता, स्वाभिमान व स्वतंत्रता के रूप में स्वीकार करता है। दलित साहित्य में जो विद्रोह एवं नकार की चिंगारियाँ है वे अम्बेडकर के व्यक्तित्व व विचारों से ही प्राप्त है।

आज संपूर्ण देश में दलित अस्मिता का प्रश्न सत्ता में दावेदारी का पैतरा लेते हुए आगे बढ़ रहा है। स्वतंत्र भारत में संविधान ने दलितों को भले ही सारे मानवीय अधिकार दे दिये हो लेकिन आज भी मुख्यधारा का समाज उनको पूर्णतः अपना नही रहा है। दलितों ने अपनी अस्मिता व उत्पीड़न की पहचान को लड़ने का कारगार हथियार बना लिया है। जहाँ परम्परागत समाज-व्यवस्था में दलितों की अस्मिता व मानवीय अधिकार के सभी दरवाजे बंद थे, वही आज धन, धर्म, अधिकार, अस्मिता व सम्मान का भूखा यह समाज शिक्षित होकर अस्मिता व अधिकारों के प्रति जागरूक होता दिखाई दे रहा है।

संदर्भ :-

१)आदर्श हिंदी कोश-सं.प.रामचंद्र पाठक - पृ.६४
२)अस्मिता विमर्श के स्त्री स्वर - अर्चना वर्मा - पृ.३१
३)संस्कृत हिंदी कोश - वामन शिवराम आप्टे - पृ.१३२
४)हिंदी दलित साहित्य - मोहनदास नैमिशराय - पृ.१३
५)दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र - ओमप्रकाश वाल्मिकी - पृ.१५
६) दलित साहित्य का सौंदर्य शास्त्र - वही -पृ. २५-२६
७) हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास - रामस्वरूप चतुर्वेदी - पृ.१७
८) भारतीय अस्मिता और हिंदी - शंभुनाथ -पृ.२४१
९) दलित साहित्य स्वरूप एवं संवेदना - डॉ. सुर्यनारायण रणसुभे

B.Aadhar' International Peer-Reviewed Indexed Research Journal

Impact Factor -(SJIF) –8.632, Issue NO, (CDXLVI) 451-A

ISSN : 2278-9308 December, 2023

'आपका बंटी' उपन्यास में चित्रित बाल समस्या का चिंतन

प्रा. डॉ. गंगा एकनाथ शेळके, (गायके)

हिंदी विभाग, खोलेश्वर महाविद्यालय अंबाजोगाई

वर्तमान युग में जब मनुष्य ने अपने बौध्दिकता का विकास किया है। तो वह अपने ही सुख में खो गया। एक दूसरों का न कुछ सोचते है नहीं खयाल रखते सिर्फ और सिर्फ अपने ही कर्म में व्यस्त रहते है। किसी भी समाज के अस्तित्व की कल्पना मानवता' पर आधारित होती है। समाज का निर्माण और विकास उस समाज के जनमानस की स्थिति और उनकी विचारधारा के आधार पर व्याप्त मानवीय मूल्यों पर निर्धारित होता है । आधुनिकता की दौड में नैतिकता का ऱ्हास समाज से संबंधित सभी क्षेत्रों में दिखायी देता है। मानवीय संवेदनाओं को जीवित रखने का सशक्त माध्यम कला एवं साहित्य है । कला मनुष्य होने की तहजीब सिखाती है। मनुष्य के भीतर मनुष्यता बनी रहे। इसके लिए साहित्य और कला से जुडे रहना बहुत जरूरी है। आपका बंटी (1971) मन्नू भंडारी का स्वंतत्र उपन्यास है। यह समाज प्रधान उपन्यास है ।

आजादी के 75 वर्ष बाद भी मनुष्य आजादी का मतलब समझ नहीं पाया। हर जीव सुख का चिंतन तो करता है परन्तु स्वार्थ से सिर्फ अपना ही। कभी दूसरों के बारे में भी अच्छा चिंतन करके देखो ! तो हम और समाज सुधर जायेगा। प्रस्तुत उपन्यास में नारी जीवन से संबंधित दापत्य, तलाक, मातृत्व, अकेलापन से उत्पन्न उलझनों को सफल सफलतापूर्वक व्यक्त हुआ है ।

'आपका बंटी, उपन्यास का चिंतन : मन्नू भंडारी लिखीत इस पारिवारीक उपन्यास में आज के समाज का प्रतिबींब है। सोलह विभागों में विभक्त एक लघु उपन्यास है। कॉलेज की प्रिंसीपल शकुन से कथानक की शुरुवात होती है। उसे आशा है कि बंटी के कारण उसका पती अजय वापस आ जायेगा। वह अपने बेटे का हतियार सरीखा वापर कर रही है । वकील चाचा अजय के तलाक पेपर ले आते है तो शकुन नाराज हो जाती है। बंटी माँ के पास रहता है, लेकिन पापा भी उसे अच्छे लगते है। पापा सालभर में दो एक बार बंटी को मिलते थे "ममी ड्रेसिंग टेबुल के सामने बैठी तैयार हो रही है। बंटी पीछे चुपचाप देख रहा है।[१] कॉलेज जाने के लिए ममी तैयार होती है तो बेटे को लगता है - " ममी के पास जरूर एक और चेहरा है।" [२] उसे लगता है। इतना, मेकप करके ममा बदल जाती है। ममा को बहुत काम रहते है। मेरी ममा नहीं रहती जब वह कॉलेज जाती है। जब वकील चाचा अजय के तलाक पेपर ले आते है। तो शकुन नाराज हो जाती है। वकील चाचा कहते है - "जब बेटे की शादी होगी तब उसके जीवन में तुम्हारा क्या महत्व रहेगा ? "[3] आगे शकुन को डॉ जोशी का रिश्ता आया तो गंभीरता से सोचती है। उम्र के 36 वर्ष, पार करने पर भी उसमे विवाह को लेकर उल्लास भी है । इसी के साथ शकुन का दूसरा विवाह हो जाता है। बंटी को वहाँ अच्छा नहीं लगता । ममी का बन्ना से मिसेस जोशी बनना बंटी को बूरा लगा। डॉ. साहब का ममी को छूना, बच्चों का तीसरा बंटी चिढ़ाना अच्छा नहीं लगता। ममी से दूर सोना, खिलौनों को नहीं छूना उसके क्रोध का कारण बन जाता है । हालात से मजबूर बंटी कलकत्ता अपने पापा के पास जाना चाहता है। उसके मन का क्रोध पापा के पास ले जाता है। वहाँ नयी माँ को एक बेटी है। वह भी बंटी से प्यार नहीं करती। पापा भी पहले सरीखे पापा नहीं रहते। इधर बंटी की ममा बंटी को याद करके रोती है। उसे याद आता है " मैंने तो पापासे कह दिया कि ममी के बिना में कहीं जा नहीं सकता ममी मैं तुम्हें कभी –कभी नहीं छोडूँगा- मत रोओ ममी- मत रोओ ।[4] इस यातना से

डॉक्टर भी उसे कैसे उबारेंगे? उसके पास ऐसा कोई सुख नहीं पर ऐसी यातना जरूर है जिस वह किसी के साथ शेयर नहीं कर सकती। बंटी को नयी माँ का व्यवहार सदा अपने से दूर ही रखता है । इसे भेज भी कैसे दिया । मैं तो नहीं भेजती। यह सुनकर बंटी को झटकासा लगता है । और वह वापिस अपने ममा के पास जाना चाहता है। बाहर के शोर ने उसके मन में सोचना भी बंद किया पापा तो बंटी को हॉस्टेल भेजना चाहते है और वह वहाँ जाना नहीं चाहता । बंटी भयानक सपना देखकर आतंकित हो जाता है पापा उसे सुलाते हैं। उसके डरे हुये रुप को देखकर पापा मीरा के विरोध के बावजूद बंटी को हास्टेल भेजने का निश्चय करते हैं।

मीरा को इससे आपत्ती है कि इससे उसके घर में आर्थिक संकट आ सकता है लेकिन, पापा बंटी की स्थिती देखकर यही एक उपाय सोच पाते है । को याद आता है - " ममी लेट गई और बंटी वहीं खड़ा रह गया - अपमानित -सा, उपेक्षित सा । ममी उसे बताती क्यों नहीं ? कि क्या हुआ है ?[5] कुछ बाते माँ बेटे को नहीं बताती तो बेटे के मन में संदेह बढ़ जाता है। एक बार बंटी ममासे अलग हुआ था। तब उसकी सारी वस्तुएँ अलग रखी गयी। आज वह पापा से भी अलग हो रहा है। उसे बार बार लगता है कि पापा, प्यार करके कुछ तो कहेंगे ? पापा कुछ नहीं कहते और इतने में स्टेशन आ जाता है । इसके परिणाम स्वरूप बंटी मन और आँखे रो देता हैं अब तो विवश होकर बंटी को हॉस्टेल रहने के पीढ़ा को भोगनाही है। इस कथानक के साथ-साथ अन्य कथानक भी इसके साथ जूढ़ जाते है।

पति पत्नी के झगड़े में बच्चों की क्या हालत होती है, उनकी मानसिक पीडा को चित्रित किया है। कथानक में शहरी जीवन के दिखावटी प्रेम किया गया है। ऐसा लगता है कि शिक्षीत की अपेक्षा अशिक्षीत अधिक संवेदनशील और सरल होते है । प्रमुख पात्र : बंटी, शकुन, अजय, "फूफी" शकुन की सेविका है। डॉ. जोशी, मीरा, अभी जोत आदि। डॉ.जोशी की पहली पत्नी की मृत्यू हो चूकी है । उनके दो बच्चे है । बंटी का गंभीर रुप से बीमार पड़ने पर डॉ. जोशी साहब का प्रोफेशनल और भावनात्मक रुप शंकुन के मन को बहुत प्रभावित करता है । शकुन की पारिवारिक स्थितिको वे भली भाँती जानते है । अनुभवी और व्यवहार कुशल डॉ. जोशी, संकेतो से, भावोंसे शकुन तक पहुचाँने में सफल होते है । उसी के साथ अजय से दूर होती शकुन अब डॉ.जोशी को जीवन साथी के रूप में स्वीकारने के लिए तयार थे। "सुविधाभोगी संस्कृति, आधुनिक प्रेम संबंधो की जटिलता, पारिवारीक असंगतियाँ गरीब एवं अनपढ जनता का शोषण आदि ।"[6] मानो जीवन एक रंगमंच है । हर एक ने अपना पात्र अच्छी तरह से निभाना है ।

'आपका बंटी उपन्यास में चुनौतियाँ :

मन्नू भंडारीजी ने इस उपन्यास में पारिवारीक विसंगतियों में पती पत्नी के एक मात्र पुत्र बंटी को केंद्र में रहकर उसके मानस का मनोवैज्ञानिकता का चित्रण किया है ।

आजादी के 75 वर्ष बाद भी मनुष्य सुख की परिभाषा समझ, नहीं पाया। सुख को ढूंढने की बाहर जरूरत नहीं, वह तो हर एक के मन में है। बंटी बेटा, अपने ममा और पापा के साथ रहना चाहता है। वह फूफा को प्यार से कहता है- "धत ममी को कभी नहीं छोडूँगा ।[7] हर बच्चा अपने ममा और पापा दोनों को चाहता है।

1971 में प्रकाशित सामाजिक प्रधान उपन्यास आपका बंटी है | बंद दरवाजों के साथ कहानी में जीवन की चुनौतियों दिखाई देती है | तलाक से छोटे बच्चों के मानसिकता पर बुरा असर पड़ता है। जीवन का नया मोड़ बंटी को उसके पापा और नयी माँ के पास ले आता है। वहाँ बंटी के मन में दहशद निर्माण होती है।

बंटी अपने माता-पिता का वक्त चाहता था। प्यार चाहता था। उसे हॉस्टेल जाना पड़ा। 'भारत देश में से आदर्श, विवाह पध्दती को मानते है। आज के वातावरण में उसमें बदलाव आने लगा है। पती पत्नी अब संयम से

काम नहीं लेते। दोनों जो उच्च शिक्षीत अब बन रहे है| एक दूसरे पर आर्थिक तौर से निर्भर नहीं है- तो एक दूसरे की बाते ताने क्यों सूने ? इसी में विवाह जादा दिन तक नहीं टीक पाते।

यह उपन्यास हमें सिखा रहा है- पारिवारिक जीवन में स्वयं खूश रहो और दूसरोंको भी खूश रहने दो माना की परिवर्तन सृष्टिका नियम है । जिसकी बीवी गुजर गयी है, उसने दूसरी शादी के बारे में सोचना एवं जिसका पती गुजर गया हो उसने, ऐसा सोचना सराहनीय है। लेकिन आज छोटी-छोटी बातों पर बड़ा निर्णय 'तलाक' सरीखा लीया जाने लगा है। इसमें दोनों को भी बहुतसी कठीनाईयाँ झेलनी पड़ती है। बच्चे भी तलाक का अर्थ जान चूके है। टीटू बंटी से कहता है- " तेरे ममी - पापा में, तलाक जो हो गया है।"[7] अब इससे भी आगे आज छोटे-छोटे बच्चों को भी बहुत सी बाते जो आवश्यक नहीं वह भी पता रहती हैं।

संक्षीप्त में :

आज भी कई घरों में मध्यमवर्गीय पारिवारीक घरों में कितने ऐसे बच्चे, महिलाएं, पुरुष, वृद्ध व्यक्ती है जो मानसिक दृष्टि से बेहाल है। उन्हें सहारे की, प्रेम, मान सम्मान की जरुरत है। वे प्रसन्न रहना तो चाहते है लेकिन रह नहीं पाते। परिवार में उन्हें वैसा सुकून, अपनापन, विश्वास नहीं मिलता । सब अपने अपने भागदौड में व्यस्त है और जीवन में एक दिन एकांत में मानसिक तौर पर बीमार हो रहे है । अगर हमें इस बिमारी से बाहर निकलना है तो वह हम स्वयं ही निकाल सकते है। परिवार के सभी सदस्योंने मिल जूलकर रहना आवश्यक है।

संदर्भ :-

1) आपका बंटी – मन्नू भंडारी, राधाकृष्ण् नयी दिल्ली पटना इलाहाबाद पृ. क्र.9 ।
2) वही ।
3) वही पृ. क्र 10 ।
4) वही पृ. क्र 83 ।
5) वही पृ. क्र 49 ।
6) डॉ.शंकर शेष् की नाटकला – डॉ. प्रकाश नारायण जाधव, भूमिका ।
7) आपका बंटी – मन्नू भंडारी, राधाकृष्ण् नयी दिल्ली पटना इलाहाबाद पृ. क्र.140।

मुद्रित पत्रकारिता : फीचर लेखन

प्रा.डॉ.बायजा कोटुळे ; साळुंके

हिंन्दी विभाग प्रमुख, वसुंधरा महाविद्यालय, घाटनांदूर, त.अंबाजोगाई, जि.बीड.

ई.मेल–drbmkotule@gmail.com दूरभाष – 9420652970/ 7020484470

पत्रकारिता को समाज के गतिविधियों का दर्पन माना जाता है। समाज में कब, क्यों, क्या, कहाँ, कैसे और क्यों हो रहा है इसकी समग्र तथ्यात्मक जानकारी पत्रकारिता देती है। समाज तथा व्यक्ति के अच्छे-बुरे, सही-गलत, पहलुओं पर दृष्टि डालकर दिशा देने का काम पत्रकारिता करती है। इसीलिए चौथे आधारस्तंभ के रुप में जनसंचार माध्यम और पत्रकारिता को स्वीकार किया गया है।

छापखाने के अविष्कार ने पत्रकारिता को लोंगो से जोडा है। राष्ट्रप्रेम, अहिंसा, प्रसार, समाज-सुधार तथा भाषा प्रेम का उद्धेश लेकर चलने वाली पत्रकारिता में बाढ आ गई और नैतिक मूल्यों में परिवर्तन आने लगा। मुद्रण के क्षत्र में तकनीकी प्रगति हुई और पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन एक व्यवसाय बन गया। दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक, त्रेमासिक, वार्षिक आदि का विभाजन पत्र-पत्रिकांओं का हो जाने से इनके विषयवस्तु एवं प्रस्तुति पर भी प्रभाव पडा। ऐसी वैविध्यमयी सामग्री का यो परिष्कृत एवं सम्पादित रुप में प्रस्तुत करनेवाली की संख्या बहुत बडी होती है।

पत्रकारिता समाज के अच्छे, बुरे सभी पहलुओं पर नियंत्रण रखते हुए संतुलित दिशा देने की महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। महादेवी वर्मा के शब्दों में, "पत्रकारिता एक रचनाशील विधा है। इसके बगैर समाज को बदलना असंभव है। अतः पत्रकारों को अपने दायित्व और कर्तव्यों का निर्वाह निष्ठापूर्वक करना चाहिए, क्योंकि उन्ही के पैंरों के छालों से इतिहास लिखा जाएगा।"[१]

फीचर मुद्रित श्रव्य तथा दृश्य श्रव्य माध्यम की एक लोकप्रिय विधा है। मुद्रित माध्यम में दैनिक, मासिक, पत्र-पत्रिकाओं, रेडियो तथा टी.व्ही.के समाचारचैनलों में फीचर आनंद लिया जाता है। फीचर एक साहित्यिक विधा है पत्रकारिता की। रेडियों में 'रेडियो रुपक' के नाम से यह प्रसारित होते है, तो टी.व्ही.पर खास करके समाचार चैनलों पर भी फिचर प्रस्तुत हो रहे है। "सामाजिक घटनाओं और जीवन के विविध क्षेत्रो में होनेवाले अधुनातन परिवर्तनों के सचित्र और मनोरम विवरण को फिचर या रुपक कहा जाता है।"[२] घटना के अंत तक जाकर सत्य को ढूँढ निकालना फिचर का प्रमुख गुण है। इसी कारण पाठकों के कौतुहल और सहानुभूति में वृध्दि होती है। फिचर पत्रकारिता किसी घटना का शोध-परक तथा गहराई से अध्ययन करके उसे विस्तार के साथ प्रस्तुत करती है। किसी विषय की विस्तृत और रोचक प्रस्तुतीकरण फीचर के प्रमुख तत्व है।

फीचर शब्द लैटिन के 'थ्ंबजनतं' शब्द से बना है।प्ससनेजतंजमक वगवितक क्पबजपवदंतल में इसका अर्थ है, "। कपेजपदबजपअम वि बींतंबजमतपेजपब चंतज वि जीपदहए कपेजपदबजपअम चंतज वि जीम बिमए ं कपेजपदबजपअम वत तमहनसंत ंतजपबसे पद ं दमूचंचमत वत उंइंपदम"[३]फिचर आज मुद्रित माध्यम की महत्वपूर्ण विधा के रुप में देखा जाता है। समाचार पत्र के चार प्रमुख अंग है, समाचार, लेख, फिचर एवं चित्र। फीचर में अन्य तीनों की विशेषताओं को पाया जाता है, इसीलिए वह अधिक लोकप्रिय है। डॉ.विवेकी राय ने फीचर की परिभाषा देते हुये कहा है, "फीचर समाचारात्मक निबंध रुपक है। और यह विभिन्न क्षेत्रों की नविनतम हलचलों का शब्दचित्र होता है।यह आधुनिकता का अनिवार्य आग्रह है।"[४] तो प्रेमनाथ चतुर्वेदी लिखते है, "फीचर समाचार मूलक यथार्थ भावना प्रदान और सहज कल्पनावली रसमय एवं संतुलित गद्यात्मक दृश्यात्मक शाश्वत कोटि की निस्संग और मार्मिक अभिव्यक्ति है।"[५]उक्त परिभाषा में फिचर के लिए रुपक, सकारात्मक निबंध रुपक यथार्थ भावना-प्रधान आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है। इन शब्दों में से रुपक शब्द का प्रयोग रेडियो फीचर के लिए प्रयोग किया जाता है। इससे स्पष्ट होता है कि फीचर में पत्रकारिता और सृजनात्मक लेखन का सुंदर समन्वय दिखाई देता है। साथ ही फीचर पर कहानी, लेख, ललित निबंध, निंबंध, संस्मरण, व्यंग्य, रेखाचित्र आदि का प्रभाव देखा जाता है।

किसी भी विशय पर फीचर लिखे जा सकते है। घटना, स्थान, वस्तु, व्यक्ति विचार से संबंधित किसी भी पहलू को फीचर का विशय बनया जा सकता है। विषय की नवीनता फीचर को सफल बनाती है। साथ ही पाठकों की रुची का ध्यान रखते हुए विषय चयन किया जाना चाहिए। इस संदर्भ में डॉ.हरिमोहन कहते है, "फीचर का विषय ऐसा होना चाहिए जो लोकरुचि का हो लोकमानस को छुए पाठकों में जिज्ञासा जगाए और कोई नई जानकारी दे।"[६] फीचर लेखन करते समय हमें यह ध्यान में रखना चाहिए कि, यह सत्यपर आधारित हो। वह एक यथार्थवादी विद्या है। इसीलिए विषय प्रस्तुति में सत्य की रक्षा होनी चाहिए। इसमें कल्पना के या रंजक के फूल नहीं बांधे जाते। अगर हम ऐसा करते है तो उसकी

विश्वसनीयता नष्ट हो सकती है। विषय के संबंध में एक तरह का संशोधन ही करना पडता है, किसी स्थल पर फीचर की सामग्री लेनी है तो वहॉं पूरी तैयारी के साथ जाना पडता है। जैसे कलम, नोटबुक, कैमरा, टेपाईकार्डर आदि। साथ ही लोगों से मिलना पडता है। सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक या ऐतिहासिक पृष्ठभूमी के लिए फीचर लेखक को तत्कालीन समाज का अध्ययन करना पडता है।

संवेदना फीचर का प्राण होता है। इसलिए भाव फीचर का अभिन्न अंग है। इसमें क्रोध, हास्य, व्यंग्य, दया, घृणा का भाव प्रकट हो सकता है। फीचर में कुछ ना कुछ प्रकट होना चाहिए। क्योंकि उसमे ही बॉकपन दिखाई देता है। फीचर और समाचार में प्रमुख अंतर यह है कि, समाचार तथ्यात्मक रिपोर्ट मात्र है, परंतु फीचर तथ्यों का ललित भाषा और वैयक्तिक शैली में भाव का प्रकटीकरण होता है। एस्मो स्कॉट वाटसन के शब्दों में, "फीचर किसी भावना के इर्द-गिर्द चक्कर काटता है। समाचार को ऐसा रुप दिया जाता है कि वह और आकर्षक बनें, पाठक का ध्यान खींचे और सामान्य पाठक के भावनाओं को छू जायें।"[७] फीचर को प्रभावषाली बनाने के लिए तथ्य के साथ विधायनी कल्पना की आवश्यकता होती है, आज का समाचार कल बासी होता है, पर फीचर हर समय नये लगते है।

फीचर की अपनी एक विशिष्ट संरचना होती है। जिसके प्रमुख पॉंच अंग है- शीर्षक, प्रस्तावना, मुख्य कलेवर, उपसंहार, छायांकन। शीर्षक फीचर का प्राण होता है। शीर्षक सम्पूर्ण फीचर के कथ्य का व्यंजक होना चाहिए। फीचर का अग्रांश को हिन्दी में प्रस्तावना या भूमिका कहा जाता है। यहीवह मुख्य भाग है, जो पाठकों की जिज्ञासा को जगाता है।अग्रांश में फीचर को इस प्रकार प्रस्तुत किया जाता है कि, उसमें समाचार के छह प्रकार कौन, कहॉं, क्यों, कब, केसे, क्या का उत्तर मिल जाता है। इस प्रकार के अग्रांश से आगे के घटनाक्रम को जानने की उत्सुकता जगाती है। इसमें पाठक को मुख्य विषय के तथ्य से परिचित किया जाता है, स्पष्ट है कि लेखक अपनी प्रतिभा और लेखन कौशल के आधार पर अग्रांश को आकर्षक स्वरुप प्रदान कर सकता है।

अग्रांश फिचर के मुख्य कलेवर का ही विकास होता है। विषय की क्रमबध्दता फीचर को सफल बनाती है। फीचर लेखक इसके लिए सामग्री संकलन और उसकी सत्यता की जॉंच करके ही उसका प्रयोग करना पडता है। विषय प्रतिपादन में कलात्मकता, जिज्ञासा, उत्तेजना विश्वसनीयता, मार्मिकता आदि के यथा प्रयोग से फीचर प्रभावी बनता है। स्थितियों, क्रिया-प्रतिक्रियाओं, घटनाओं का क्रमबध्द विकास और उसकी कलात्मक प्रस्तुति फीचर के कलवर को पुष्ट बनाती है। अगर सूचनाओं को जबरदस्ती से डालने के प्रयास से फीचर नीरस और शिथिल बन जाता है। साथ ही उपदेषात्मक मुद्रा से भी फीचर लेखक को बचना चाहिए। विषय की सच्चाई एवं कलात्मक प्रस्तुती से फीचर का लेवर संपन्न बनता है।

फीचर का उपसंहार उसके विषय और प्रस्तुती पर निर्भर करता है। इसमें फीचर लेखक कभी प्रश्न उपस्थित करता है, तो कभी निष्कर्ष, तो कभी पाठकों को सोचने के लिए मजबूर करता है, तो कभी सुझाव भी देता है। कुल मिलाकर हम कह सकते है कि, उपसंहार, अग्रांश की तरह फीचर लेखक की लेखन कौशल की कसौटी होती है। विषय और उध्देश्य की पूर्तता उपसंहार की विशेषता होती है।

फिचर लेखन में छायांकन का बहुत महत्व है। क्योंकि फीचर की प्रवृत्ती दृश्यमूलक होती है। फीचर का विस्तार करनेवाले सुंदर स्पष्ट जीवंत, परिपूर्ण छायाचित्र फीचर को प्रभावषाली बनातें है। डॉ.हरिमोहन के शब्दों में, "फीचर की आत्मा छायाचित्रों में विशेषरुपसे मुखर होती है।"[८] दृक-श्रव्य माध्यमों के फीचर की आत्मा ही छायांकन होती है।

साहित्यिक शैली में फीचर लेखन पत्रकारिता की एक विधा है। इसीलिए इसमें लेखन शिल्प-शैलियों का सुंन्दर समन्वय पाया जाता है। कलात्मक लालित्य, सरसता साहित्य लेखन की विशेषता है, तो सुबोधता, तथ्यपरकता, सहजता, सरलता पत्रकारिता लेखन की विशेषता है। यह दोनों विशेषतायें फीचर में देखी जाती है। इसी कारण फीचर समाचार जैसी पत्रकारिता की विधा से अपना अलग स्वरुप धारण करता है तो दूसरी और आलेख, लेख, संस्मरण, रेखाचित्र, निबंध, ललित निबंध आदि साहित्य विधाओं से अपने को अलग साबित करता है।

फीचर लेखन अपने छोटे-छोटे वाक्यों का उपयोग ही लेखन को प्रभावी बनाता है, सहज, सरल एवं रोचक शब्दावली के साथ ही हास्य, व्यंग्य, कल्पना, भावना आदि का मिश्रण फीचर को रोचक बनाता है। सुभाषितो, उक्तियों, कहावतो-मुहावरों, सुक्तियों आदि का उचित प्रयोग फीचर में प्रस्तुत तथ्य की सरस एवं प्रभावी अभिव्यक्ति होती है।

फिचर के विषय और शैलियों के आधार पर कई भेद हो सकते है। जैसे समाचार व्यक्ति संबंधी, चित्रात्मक, स्वच्छन्द, पौराणिक, मानवीय रुचिपरक, ऐतिहासिक, विज्ञान, यात्रा, पारिवारिक तथा व्यंग्यात्मक, व्याख्यात्मक, खेलकूद आदि। डॉ.मनोहर प्रभाकर ने फीचर के स्वरुप के आधार पर चार वर्गे में विभाजित किया है, घटनात्मक फीचर, चिंतनमूलक फीचर, विचित्रतामूलक फिचर, विशिष्टतामूलक फीचर।

स्पष्ट है की, फीचर मनोरंजन से परिपूर्ण सूचना या समाचार है। फीचर उस घटना का स्थल का चेहरा-मोहरा होता है। फीचर में तथ्य प्रधान के साथ मनोरंजन भी प्रधान होता है। सूचना तथा मनोरंजन दोनो ही फीचर के आवष्यक अंग है। किसी भी एक के अभाव में फीचर की कल्पना नहीं की जा सकती। फीचर लेखन को लोकप्रिय होने के लिए

आवश्यक है की उसका लेखन सरल और स्पष्ट हो। फीचर एक गद्य गीत है जो लम्बा, नीरस और गंम्भीर नहीं हो सकता।

संदर्भ संकेत :

१. जनसंचार माध्यमोंमें हिंन्दी-डॉ.शोभासुखलाल दिव्यवीर, समता प्रकाशन, कानपूर, पृष्ठ. ५६
२. प्रयोजन मुलक हिंन्दी अधुनातन आयाम - डॉ.अंबादास देशमुख, शैलजा प्रकाशन, कानपूर, पृष्ठ. २५८
३. हिंन्दी के अद्यतन अनुप्रयोग - डॉ.माधव सोनटक्के, छाया पब्लिशिंग हाऊस, औरंगाबाद, पृष्ठ. १०२
४. वही, पृष्ठ. १०३
५. वही, पृष्ठ. १०४
६. वही, पृष्ठ. १०५
७. वही, पृष्ठ. १०७

अकाल में उत्सव उपन्यास में व्यक्त किसान विमर्श

प्रा. राजेगोरे आर.व्ही.

शोधछात्र पीपल्स कॉलेज नांदेड

प्रस्तावना :

भारतकृषिप्रधानदेशरहाहै...देशकी अधिकांशजनसंख्या कृषि अर्थव्यवस्था पर निर्भर है...भारत में देशवासियों को भोजन की आवश्यक्ता कृषि से पूर्ण होती है...इसी कारण से देश के किसानों की पहचान उन्नदाता के रूप में रही है...वर्तमान समय में देश का अन्नदाता कृषि के विभिन्न चक्रव्युह में फस गया है...आजादी के बाद कृषि क्षेत्र और किसानों के जीवन में खुशहाली के दिन आने चाहिए थे परंतु भारत सरकारने अन्नसुरक्षा, आत्यावश्यक वस्तु जैसे कानुन बनाकर कृषि उत्पादनों को संविधान के नवम अनुसूचि में रख दिया...इस का परिणाम यह हुआ कि कृषि उत्पादनों के मूल्य सरकार तय करने लगी...जिस से कृषि और किसान विकास से पिछडता गया...सन 1990 के बाद मुक्त अर्थव्यवस्था को अपनाकर कृषि उत्पादनों का निर्यात करने के बजाय आयात निति को अपनाया गया...जिस से कृषि उत्पादनों को कम मूल्य मिलने लगा...जिस के परिणाम स्वरूप कृषि उत्पादनों का लागत मूल्य अधिक और उत्पादन आय कम हो गयी...जिस कारण किसान कर्ज से आत्महत्या की ओर बढ गया...देश के अन्य राज्यों की अपेक्षा महाराष्ट्र में किसान आत्महत्या अधिक है...किसान आत्महत्या के प्रश्न को लेकर हिंदी के संवेदनशिल साहित्यकारों ने हिसानों के समग्र जीवन संघर्ष को लेकर किसान विमर्श को चित्रित किया है...जिन में युवा साहित्यकार पंकज सुबीर प्रमख है...

'अकाल में उत्सव' किसान आत्महत्या पर लिखा गया पंकज सुबीर का चर्चित उपन्यास रहा है । इस उपन्यास को शिवना प्रकाशन, सीहोर (मध्यप्रदेश) 2016 में प्रकाशित किया है । उपन्यास का शिर्षक 'अकाल में उत्सव' किसान जीवन की त्रासदी और प्रशासन की गैर जिम्मेदारी पर विडंबन करता है । 'अकाल में उत्सव' उपन्यास की कथावस्तु पंकज सुबीर ने मध्यप्रदेश के एक गाँव सुखा पानी को आधार बना गया है । गाँव में खेती करने के अनुकूल परिस्थिति नही है, यह कथावस्तु से स्पष्ट होता है । सुखा पानी गाँव पहाडों से घिरा हुआ है, वहाँ पर वर्षा की कम होती है । खेती के लिए उपजाऊ जमिन भी नही है, साथ ही सिंचाई की कोई व्यवस्था है । गाँव में आदिवासी और मुस्लीम रहते है । सरकारी रेकॉर्ड पर यह आदिवासी गाँव है । जिला मुख्यालय से 40 किलोमीटर दूर से सूखा पानी ! इस से यह स्पष्ट होता है कि विकास के कोंसों दूर सूखा – पानी गाँव रहा है । उदा. "सूखा पानी ! एक छोटा – सा गाँव । जितना विचित्र नाम, उतना ही विचित्र गाँव । पहाडों से घिरा हुमा गाँव, जहाँ पर जमीन बहुत उपजाऊ नहीं है । एक तो मिट्टी भी पथरीली है और उस पर सिंचाई की भी कोई बहुत अच्छी व्यवस्था नहीं है । शायद इसी कारण इस गाँव का नाम सुखा पानी पडा होगा । सरकारी रिकार्ड में इसे आदिवासी गाँव के रूप में चिह्नित किया गया है । गाँव के चारो तरफ जंगल है, सागौन के वृक्षो का जंगल है । पीले सोने का जंगल ।" [1]

पंकज सुबीर ने 'अकाल में उत्सव' उपन्यास के माध्यम से भारतीय किसान जीवन संघर्ष की वास्तविक्ताओं को स्पष्ट किया है । यह उपन्यास वर्तमान समय के किसान जीवन को जीवंतता के साथ प्रस्तुत करता है । वास्तव में 'अकाल में उत्सव' आज के भारतीय किसान जीवन की करून दयनिय गाथा का अभिव्यक्त करता है । आज भारत में सब से अधिक खेती से परेशा छोटे किसान है । बडी मुश्किल से वह किसानी कर अपने परिवार का पेट भर रहे है ।

छोटे किसान खेती के विभिन्न संकटों के साथ जूझ रहे है, और अपने जीवन से हारकर आत्महत्या कर रहे हैं। यही केंद्रीय विषय 'अकाल में उत्सव' उपन्यास का रहा है। रामप्रसाद सुखा पानी गाँव का एक छोटा किसान है। दो एकड औसत जमीन का वह किसान है। सुखापानी गाँव के अधिकत्तर भी छोटी जोन के किसान है। गाँव के किसान सोमावीन और गेंहु की खेती करते है। रामप्रसाद किसान कम और मजदूर अधिक है वह दूसरों के खेत अधबटियों पर करता है साथ ही अपने खेत पर कम काम होने से दूसरों के खेतों पर मजदूरी भी करता है। रामप्रसाद के पत्नी का नाम कमला है। उन्हें विनोद राहुल और रोहीत है। रामप्रसाद को तीन बहने एक भाई भगीरथ है, अब तीनों बहनों की शादी हो चुकी है। पिताजी के मृत्यु के बाद रामप्रसाद ही परिवार का मुखिया बन जाता है। सारी जिम्मेदारी उसी के कंधों पर आती है। सही अर्थों में रामप्रसाद आज के भारतीय किसानों का प्रतिनिधित्व पात्र है। उपन्यासकार ने छोटे किसानों के जीवन संघर्ष को बडी सुक्ष्मता से चित्रित किया है। उदा. "इसी गाँव में बहुत छोटे से रकबे का किसान रामप्रसाद। छोटा रकबा मतलब दो एकड या बीघे में कहे तो लगभग पाच बीघा। किसी – किसी के पास जमीन एकड़ में नही बल्कि डेसीमल में ही मिलेगी। गाँव के किसान दो फसले लेते है। एक सोयाबीन और दूसरी गेंहू की।... गाँव की जमीन सोना नाही उगलती, बस जीवन चलाने भर को पैदावर हो जाए, तो बहुत है। छोटा किसान जब तक लड़ सकता है, तब तक किसान रहता है और फिर घर मजदूर बन जाता है।" [2]

उपन्यासकार पंकज सुबीरजी ने 'अकाल में उत्सव' उपन्यास में किसानों की कर्ज की समस्या को चित्रित किया है। किसान खेती के कामों के लिए और अपनी बेटी के विवाह के लिए बँक तथा साहुकारों से कर्ज लेते है। रामप्रसाद के पिता जब मृत्यु होती है तो वह राप्रसादर के कंधों पर बँक, सोसायटी तथा साहुकारों का कर्ज छोड जाते हैं। रामप्रसाद के पिता के पास अच्छी जमीन थी पर बिमारी, बेटियों की शादी आदि के कारणों से कर्ज लेते रहे और जमीन कर्ज में ही डुबती गयी। गाँवों में अपने मन पर साहुकार किसानों को ब्याज से कर्ज दे कर किसानो की जमीन हड़प लेते है। यही रामप्रसाद के पिता के साथ भी होता है। किसानी जीवन से संघर्ष करते हुए रामप्रसाद के पिता की मृत्यु होती है, वह भी कर्ज में ही। कर्ज इतना किसानों के सिर पर बैठा है। उदा. "कर्ज तो कर्ज था, कब तक देखता, अंतत: वह जमीनों को हड़प कर अपना पेट भर लेता। छोटी जोन किसान के सिर पर आपको हर प्रकार का कर्ज मिलेगा। जितना छोटा उस का रकबा, उतने तरह का कर्जा।" [3]

'अकाल में उत्सव' उपन्यास में किसानी जीवन संघर्ष के फरवरी से मार्च तक के केवल दो महिनों को बखुबी चित्रित किया है। फसले किसानों के जीवन में आनंद लाती है। रामप्रसाद के खेतों पर गेंहु की फसल है सब फसल आने की देर है। गेंहु की बालियों में मोतियों समान दाने भरने की आवस्था में फसल है। रामप्रसाद ने गेंहु की फसल पर विभिन्न सपने संझोये है। सही ढंग से रहने के लिए उस के पास मकान भी नही, गेंहू की फसल पर घर को भी ठिक करना चाहता है। रामप्रसाद की पत्नी कमला रामप्रसाद के साथ खेती करते हुए अच्छा साथ देती है। अपने खेतों पर काम कर दूसरों के खेतों पर मजदूरी भी करती है। रामप्रसाद अपने बच्चों की शिक्षा गाँव के सरकारी स्कुल में करता है। बच्चों को मिलनेवाला निष्कृष्ठ मध्यान भोजन का जिक्र भी उपन्यास में किया गया है। किसानों के जीवन में एक संकट समाप्त नही हुआ की दूसरा संकट उपस्थित हो जाता है। वर्तमान समय में किसान खेती के संकटों के चक्रव्युह में फस गये है। रामप्रसाद के सामने भी खेती को पानी देने के लिए गये बिजली का बिल की समस्या है। मेहनत और संघर्ष के बलबुते पर उसने गेंहु की अच्छी फसल लायी है। फसल आते ही फसल पर बिजली का बिल भी रामप्रसाद जमा करना चाहता हैअ पर इलेक्ट्रीसिटी वालों का इतना भय है कि बिल नही भरा तो कुर्की करनेवाले है। इतना अनमानवीय शोषण सरकारी बिजली विभाग का किसानों से है। बिजली का बिल जमा नही किया तो फसलों को पानी भी नही मिल सकता है, ऐसी परिस्थिती से किसान जीवन संघर्ष कर रहे

है। सुलतानी और अस्मानी संकटों से किसान परेशान है। बिजली का बिल नही जमा किया जाएतो कुर्की किसान की जाती है। देश के अन्नदाता यह व्यथा है, खेती करना कोई पाप तो नही है ? उदा. "हाँ.... बिजली वाला लोग – होन आया था, कागज पत्तर लेकर। कई रिया था कि अबार – के – जो पैका जमा नी किया, तो कुर्की कर दाँगा।" [4] राप्रसाद को फसल आने तक का समय बिल जमा करने के लिए नही दिया जाता है। यह स्थिति देश के लगभग सभी राज्यों के किसानों की है। तेलंगना और अंध्रप्रदेश में किसानों को खेती के लिए मुफ्त में बिजली मिलती है।

रामप्रसाद बिजली का बिल जमा करने के लिए चिंतीत है। उसकी पत्नी कमला रामप्रसाद के भाई भगीरथ से मदत माँगने के लिए कहती है। रामप्रसाद को मालूम है कि भगीरथ भी उसे पैसे देनेवाला नही है। ऐसे हालात में कमला अपने पती के आँखों के आँसु समझती है और अपनी तोडी सुनार के पास गिरवी रखने के लिए कहती है। रामप्रसाद कमला की तोडी गिरवी रखने के लिए तैयार नही है। तोडी कमला को रामप्रसाद की माँ देती है। कमला की तोडी रामप्रसाद की माता की होने के कारण उस के प्रति बडी आस्था उसे है। रामप्रसाद को मालुम है कि एक बार किसान के गहने सुनार के पास गिरवी रखने के लिए गये तो वह वापिस नही आते है। गिरवी रखकर जो पैसे लिये जाते है, उस का ब्याज बढ़ने से ही गहना सुनार का हो जाता है। रामप्रसाद सोचता है कि फसल आने पर तोडी वापस ले आयेगा। परंतु किसान के जीवन में खेती के अनेक प्रश्न रहते है, इसलिए उस के पास पैसे ही नही आते है, इस कारण वह गहनों को पुन: ला नही सकता है। इस तरह रामप्रसाद की पत्नी कमला गेहुं की फसल पर भरोसा कर अपने पैरों की तोड़ी निकालकर रामप्रसाद के हातों में सौंपती है। उपन्यासकार ने कमला के पैरों से निकलती हुयी वे तोड़ी के वर्णन मे सहृदय पाठक को पिड़ा होती है। बिजली का बिल जमा करने के लिए अपने पत्नी का आखिरी गहना तोडी गिरवी रखकर बिजली का बिल जमा करता है। बचे पैसों से अपने परिवार के लिए कपडे खरिदना चाहता है, परंतु कपडे भी नही खरीद पाता है। कितना ईमानदार है भारतीय किसान अपने पत्नी का आखिरी गहना (तोड़ी) गिरवी रखकर बिजली का बिल जमा कर रहा है। दूसरी ओर देश के उदयोगपती, बिजली चुराकर या (सबसिड़ी) पाकर अपनी कंपनिया चला रहे है। यह विडंबना आज भारत में चल रही है। उपन्यास का उदा. "कमला के पास बचा यह आखिरी जेवर है तोड़ी। एक – एक करके चीजें जो गई, तो वापस नही आई। किसान का सबसे ज्यादा नुकसान करती है फसल अच्छी आने की उम्मीद। अगर यह उम्मीद नही हो, तो वह कम से कम पूरी रक्कम तो एक बार में हाथ हा जाए।" [5]

राप्रसाद कमल की तोड़ी गिरवी रखकर बिजली का बिल जमा करता है ।सुनार के दुकान में जब रामप्रसाद कमला की तोड़ी को गिरवी रखने जाता है, और तोड़ी को जब सुनार पिघलने लगता है तो रामप्रसाद के मानसिक संघर्ष भी स्पष्ट हो जाता है। वह तोडी उस के पुरखों की होती है। छोटे किसान अपनी पत्नी को विविद समय ही जेवर करते है। खेती के अनेक संकटों के समय वही जेवर वह बेच देता है। किसान से मजदूर न बनाने से जेवर रामप्रसाद को बचा लेते है। रामप्रसाद तोड़ी गिरवी रखकर जो पैसे मिलते है उससे अपनी पत्नी को पायल भी खरिदना चाहता है, जब पैसों का हिसाब लगाता है तब चाहते हुए भी पायल खरिद नही पाता है। तोड़ी कमला के पैरो में नही हो तो सामाजिक मानपान का खयाल भी रामप्रसाद रखता यह भय भी उस के मन में है। तोड़ी को सुनार के पास पिघलाना अत्यंत कुरूप दृश्य है। यह तोड़ी ही नही भारतीय किसानों के हिम्मत और कर्म को भी पिघला रही है। उदा. "रामप्रसाद चुपचाप उकडूँ बैठा, घुटनों पर सिर रखकर उस पिघलाए प्रक्रिया को बाहर निकलने की उस प्रक्रिया को बाहर निकलने से रोकते हुए, जो उस के अंदर घट रही थी।" [6]पंकज सुबीर ने 'अकाल में उत्सव' उपन्यास में किसानों के पारिवारीक संघर्ष को चित्रित किया है। भारत में आज भी छोटी जोत के किसानों को अपने परिजनों को बिमारी में अच्छा इलाज करने के लिए खुद किसान के पास अपने रूपये है न

सरकारी अस्पताल । रामप्रसाद के पास कमला की तोडी अच्छा बचाकर कुछ रूपये बचते है, परंतु उसकी बहन सुमन की सास बिमार रहती है । रामप्रसाद का बहनोई राजेश के पास अपनी माता के इलाज के लिए रूपये इसलिए रामप्रसाद को ही सारा खर्च बिमारी के लिए करना पडता है । रामप्रसाद जब बहन के गाँव पहुँचता है, वो तभी बहन की सास को शहर ले जाने की तैयारी की जाती है । किसान के जीवन में एक समस्या समाप्त न हुयी की दूसरी तैयार हो जाती है । रामप्रसाद अपने बहन की मदत इमानदारी के साथ करता है । रामप्रसाद अपने बहन की सास को जब शहर में सरकारी अस्पताल में ले जाता है तो वहाँ पर इलाज के लिए डॉ. नही है । वार्ड बॉय सरकारी डॉ. के प्राइवेट अस्पताल में इलाज के लिए ले जाने की सलाह देता है पर प्राइवेट अस्पताल में जो तीन हजार रूपये खर्च आनेवाले है वह राजेश और रामप्रसाद के पास नही है । ऐसी हालात में रामप्रसाद के निर्वाचन क्षेत्र के ही राज्य के मुख्यमंत्री रहे है, जिन के नगरउत्सव के बडे – बडे शहर में पोस्टर लगे हुए है । वह राजेश की माँ का इलाज के लिए सरकारी डॉ. कहते है । समय पर इलाज न होने से राजेश की माता की मृत्यु होती है । उदा. देखिए - "शाम छ: बजे दोनो एक बार फिर उसी चबूतरे पर होर्डिंग के नीचे बैठे थे । दोनो नही तीनों राजेश की अम्मा भी थी। लेकिन वह अब थी ही । एक सफेद चादर में लिपटी, उत्सव के होर्डिंग से सटी हुयी चिर निद्रा में सोई हुई थी ।" [7]

इस पारिवारीक जिम्मेदारी के संघर्ष में रामप्रसाद के सारे रूपये खर्च हो जाते है । राजेश की माँ के मृत्यु के बाद जो मृत्युभोज होता है, उस में भी आर्थिक रूप से सहायता रामप्रसाद को करनी पडती है । पारिवारिक रिश्तों की जिम्मेदारी संभालने के लिए रामप्रसाद अपने बाल बच्चे परिवार की चिंता न करते हुए अपने बहनोई की मदत करता है, परंतु आर्थिक परिस्थिति का सामना तो रामप्रसाद को ही करना पडता है । पारिवारिक रिश्तों को संभालनेवाले संघर्षशिल किसान का चित्रण देखने को मिलता है ।

सरकार को किसानों को परियोजना देने के लिए निधी नही है, परंतु 'नगर उत्सव' मनाने के लिए यहाँ बजर लॅप्स हो जाते है, यह स्थिति भारत में देखने को मिलती है । कलेक्टर श्रीराम परिघर, मार्च से पहले बजर लॅप्स न हो इसिलिए शहर में 'नगर उत्सव' का आयोजन करते है । 'नगर उत्सव' से प्रशासन में व्याप्त भ्रष्टाचार तथा किसान विरोधी निति देखने को मिलती है । प्रशासन तंत्र में किसानों के प्रति जो अच्छी संवेदना है वह समाप्त हो गयी है यह देखने को मिलता है । जब ओलावृष्टी से गेंहू की फसल बर्बाद हो जाती है तब प्रशासन 'नगर उत्सव' में मना रहा है । नगर उत्सव की साज – सज्जा ओलावृष्टी से तुटी हुयी गेंहू की बालियों से की जाती है । अच्छा मुवावजा देने के लिए प्रशासन किसानों की बर्बाद फसलों का पंचनामा भी नही करती है । यह बहुत बडी अन्यायपूर्ण घटना किसानों के साथ है । उदा. "उत्सव की रात.... गेंहू की बालियों का बहुत ही सुंदर तरीके से उपयोग किया गया है, कही पर उन बालियों से फूल बनाये गए है, तो कहीं पर उन्हीं बालियों से नगर उत्सव भी लिखा गया है ।" [8] यथार्थ रूप में उपन्यास में चित्रित नगर उत्सव किसानों के विपक्ष में है, जो भारतीय प्रशासन व्यवस्था की ऐयाशी को दर्शाता है ।

इस तरह 'अकाल में उत्सव' उपन्यास में पंकज सुबीर ने किसान विमर्श को बडी यथार्थ के साथ चित्रित किया है । रामप्रसाद पारिवारिक जिम्मेदारीयाँ तथा खेती करने के सुलतानी और अस्मानी संकटों से संघर्ष कर अत: आत्महत्या करता है । प्रस्तुत उपन्यास में रामप्रसाद कर्ज, बिजलीकी समस्या, ओलावृष्टि, ओलावृष्टि के मुआवजे के लिए घुस और अंतिमता हताश होकर आत्महत्या करना पड़ा यह करून दृश्य है । वर्तमान समय में 28 नवंबर 2023 को महाराष्ट्र में बेमोसम वर्षा से लाखो हेक्टेयर कृषि उत्पादन बर्बाद हुआ । सरकार इस पर चर्चा करने और मुआवजा देने को तैयार नही है । चुनाव जितने के लिए किसानों के प्रश्नों की राजनीति चल रही है ।

आवश्यकत: यह है कि खुद किसानों ने संगठीत होकर चुनाव में खडा होना चाहिए। जब देशवासियों को खाने के लिए अन्न नही मिलेगा तभी कृषि और किसानों को सम्मान मिलेगा।

संदर्भ :

1) पंकज सुबीर – अकाल में उत्सव पृ.07
2) पंकज सुबीर – अकाल में उत्सव पृ.07
3) पंकज सुबीर – अकाल में उत्सव पृ.08
4) पंकज सुबीर – अकाल में उत्सव पृ.08
5) पंकज सुबीर – अकाल में उत्सव पृ.20
6) पंकज सुबीर – अकाल में उत्सव पृ.24
7) पंकज सुबीर – अकाल में उत्सव पृ.108
8) पंकज सुबीर – अकाल में उत्सव पृ.205

B.Aadhar' International Peer-Reviewed Indexed Research Journal

Impact Factor -(SJIF) –8.632, Issue NO, (CDXLVI) 451-A

ISSN : 2278-9308 December, 2023

मुस्लिम होने के मायने : 'सूखा बरगद

प्रो.डॉ. संतोषकुमार यशवंतकर
(हिंदी विभागाध्यक्ष)
जभशिप्रमं. कलाव विज्ञान महाविद्यालय, शिवाजीनगर,
गढी, गेवराई। तहसील-गेवराई, जिला-बीड।

डॉ. मुखत्यार शेख
(हिंदी विभागाध्यक्ष)
एशिप्रमं. कला महाविद्यालय, बिडकीन।
तहसील-पैठण, जिला-औरंगाबाद।

1947 में बृहत्तर भारत एक बार पुनः खंडित हो गया। अफगानिस्तान सहित अन्य आसपास के पड़ोसी देश बहुत पहले ही इससे हो चुके थे, पर यह अतीत और इतिहास का विषय है। इनकी अपेक्षा 1947 का विखण्डन अपेक्षाकृत पर्याप्त नया था और नया घाव अधिक कसकता है। इस विभाजन का सर्वाधिक विपरीत असर पड़ा दो वर्गों की भावनात्मक एकता पर। भावना का सीधा सम्बन्ध हृदय से है और जब तक हार्दिक एकता नहीं होगी तब तक दोनों समुदाय एकता के नाम पर संदेह की नाव में बैठकर मंझधार में भटकते रहेंगे, किनारे का स्पर्श नहीं कर सकते। 1947 के घावों को भरने के लिए अर्द्धशताब्दी से भी अधिक समय से सामाजिक, आर्थिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक प्रयास जारी हैं, पर हुआ क्या? वहीं हैं, जहां से चले थे और दर्द बढ़ता गया ज्यों-ज्यों दवा की! सन् 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के समय तक मुगलिया सल्तनत का दमकता हुआ आफताब सदैव को डूब गया। यद्यपि अस्तांचलगामी तो वह औरंगजेब के इंतकाल के बाद से ही होने लगा था। 1857 की क्रांति की क्षणिक सफलता के पश्चात् क्रांति में सम्मिलित तमाम हिन्दू राजे-रजवाड़ों ने बिना किसी विरोध और प्रतिरोध के बहादुरशाह को दिल्ली के सिंहासन पर आरुढ़ कराया। अंग्रेजों को भारत से खदेड़ने के लिए दोनों ने समवते स्वर में हुंकार भरी। तब आभास भी नहीं था कि दोनों के हृदय भविष्य में दरक जाएंगे। इस दरकन की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई 1857 की क्रांति के शमन के पश्चात्। जब दरारें पड़नी प्रारम्भ हुई तो उन्हें भरने के प्रयास भी हुए, परन्तु शुन्य परिणाम के कारण क्या रहे?इन कारणों को व्याख्यायित करते हुए प्रसिद्ध पत्रकार व लेखक श्री राजकिशोर, डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी को उद्धत करते हुए लिखते हैं- "बहुत से लोग हिन्दू-मुस्लिम एकता को या हिन्दू संघटन को ही लक्ष्य मानकर उपाय सोचने लगते हैं। वस्तुतः हिन्दू मुस्लिम एकता भी साधन है, साध्य नहीं। साध्य है मनुष्य को पशु सामान्य स्वार्थी धरातल से ऊपर उठाकर 'मनुष्यता' के आसन पर बैठाना। हिन्दू और मुस्लिम अगर मिलकर संसार में लूट खसोट मचाने के लिए साम्राज्य-स्थापना करने निकल पड़े तो उस हिन्दू मुस्लिम मिलन से मनुष्यता कांप उठेगी, परन्तु हिन्दू मुस्लिम का उद्देश्य है- "मनुष्य को दासता, जड़िया, मोह, कुसंस्कार और परमुखपिक्षिता से बचाना, मनुष्य को छुद्र स्वार्थ और अहमिका की दुनियां से ऊपर उठा कर सत्य, न्याय और औदार्य की दुनिया में ले जाना, मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण को हटाकर परस्पर सहयोगिता के पवित्र बंधन में बांधना। मनुष्य का सामूहिक कल्याण ही हमारा लक्ष्य हो सकता है। वही मनुष्य का सर्वोत्तम प्राप्य है।"1 आचार्य द्विवेदी ने जो विचार व्यक्त किये हैं वे उदात्त आदर्शों को ध्वनित करते हैं। उपर्युक्त प्राप्यार्थ तो 'मनुष्यता' का लक्ष्य है। परन्तु ज्वलंत प्रश्न तो यह है कि क्या यह लक्ष्य विना हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्राप्त किया जा सकता है? व्यावहारिक धरातल पर ऐसा संभव नहीं है कि हिन्दू मुस्लिम एकता के चिथड़े उड़ते रहें और हमें मनुष्य के सामूहिक कल्याण का उद्देश्य प्राप्त हो जाए! महात्मा गांधी सहित विश्व के तमाम महापुरुषों की सोच का लक्ष्य ही मनुष्य का सामूहिक कल्याण है। कठिनाई तो इसके क्रियान्वयन में है। इसी मानसिकता को उद्घाटित करता है मंजूर एहतेशाम का 'सूखा बरगद'उपन्यास।

उपन्यास, साहित्य का सशक्त कला माध्यम है। जीवन जगत की सच्चाईयों को व्यापक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करना उपन्यास का पहला लक्ष्य है। मंजूर एहतेशाम मानवीय जीवन की आन्तरिक अनुभूति को करीने से व्यक्त करते हैं। धार्मिक रुढ़ियां कोमल अनुभूतियों को दबा नहीं पातीं। यह अनुभूति एक से दूसरे में आंखों के माध्यम से संचारित होती हैं। प्रेम, धर्म और जाति के संकीर्ण गलियारे में कहां फंसता है। वह तो अपने में व्यापकता को समाहित करना चाहता है। रशीदा और सुहेल दोनों का पहला प्रेम हिन्दू लड़के विजय और लड़की गीता से क्रमशः होता है। हिन्दू-मुस्लिम प्रेम को सामाजिक मान्यता न मिलने के कारण वह बीच में ही दम तोड़ देता है। प्रेम में असफल होने के कारण सुहेल बिखर जाता है परंतु रशीदा नए तरीके से अपने आप को संगठित करती है। अब्दुल वहीद भले ही इनके विवाह को मंजूरी दे दें परंतु ऐसा करते ही वे समाज से बिलकुल कट जाते। यह बात सही है कि समाज में समानता लाने के लिए विवाह संस्कार की परंपरागत संस्कृति में परिवर्तन लाना होगा। परंतु विवाह जैसे गंभीर मुद्दे पर जाति के आधार पर ही परिवर्तन संभव नहीं है, धार्मिक आधार तो दिवास्वप्न जैसा होगा। हिन्दू मुस्लिम में यदि विवाह संस्कार हो भी जाता है तो दोनों में से किसी एक को अपना धर्म परिवर्तन करना ही पड़ेगा। 'सूखा बरगद' में इस विषय पर विजय अपने विचार प्रकट करते हुए कहता है -"मुझे बताओ, है कोई मुसलमान माँ-बाप जो अपनी बेटी का हाथ हंसी-खुशी किसी हिंदू लड़के को थमा दें ? घर बैठे-बैठे उनका बूढ़ा होना, बिना ब्याहे मर जाना कबूल कर लेंगे, मगर यह नहीं !'2 भारतीय सामाजिक संरचना में विजय के यह विचार बिलकुल सही प्रतीत होते हैं। सब के अपने-अपने कुनबे हैं, अपने मकड़जाल और हम उसी में निरंतर कैद होने की प्रक्रिया में हैं। कोई इससे बाहर आये भी तो कैसे ?

हिन्दू मुस्लिम वैमनस्यता का आधार मध्यकाल की जड़ों में है ऐसा माना जाता है। जैसे-जैसे समय बीतता गया यह खाई और बढ़ती गई। भारत-विभाजन इसी वैमनस्यता का परिणाम है। आजादी के बाद हिन्दू-मुस्लिम सौहार्द का दिखावा तब किया जाता है जब कोई बड़ी घटना घट चुकी होती है। सांप्रदायिकता अपना रंग कब दिखा जायेगा, यह केवल दंगा करवाने वाले को ही पता होता है।भारत में साम्प्रदायिकता फैलने के तीन स्त्रोत है- पहला अंग्रेजों की सुनियोजित नीति, दूसरा पाकिस्तान का जन्म और तीसरा धर्म का राजनीतिक हथियार बनना। हिंदू और मुसलमान दो मिन्न विरोधी समुदाय है, इस मनोवृत्ति का जन्म अंग्रेजों के शासनकाल से शुरु होता है। जब अंग्रेजों का शासन 1858 में शुरु हुआ तो उन्हें यह अहसास हुआ कि हिंदू और मुसलमान दो भिन्न और विरोधी समुदाय है। उनमें सांस्कृतिक एकता अवश्य है लेकिन धार्मिक ढंग से वे दो धडों में विभक्त है। इन दोनों समुदायों की सांस्कृतिक एकतामें राजनैतिक में समरुपता की भरपूर रुझान है। लेकिन धार्मिक भिन्नता के कारण फुट डालने के भी अनंत अवसर है। साम्राज्यावाद को इस देश में जडें जमाने के लिए इस तत्व का बोध हुआ जिसका शासन और शोषण के लिए बखुबी इस्तेमाल किया जा सकता था। धर्म को औपनिवेशिक शासन का औजार बनाने का मंसूबा अंग्रेजों को दोस्त्रोतों से मिला- पहला बांटो और राज करो की रणनीति, और दूसरा युरोपिय समाज में धार्मिक युध्दों का अनुभव। ब्रिटेन के विस्तृत साम्राज्य में, जिसमें सूर्य अस्त नहीं होता था, भारत का सर्वोपरि स्थान था। साम्राज्यवाद स्वभावगत किसी भी देश में एकता स्थापित नहीं करता क्योंकि विभाजित समाज ही इसके शासन को कारगर और इसको स्थायित्व प्रदान करता है। धार्मिक समुदयों और देशी रजवाड़ों के बीच चला आ रहा तनाव बहुत ही मुफीद सामाजिक धरातल था। अंग्रेजों ने इसे अपने साम्राज्य की स्थायी नीति बनाया और विभिन्न समुदायों को अलग इकाई मानकर उनसे सलुक किया। इस साम्राज्यवादी रणनीति के अलावा अंग्रेजों के भारत के विभिन्न समुदायों को अलग अलग इकाई के रुप में देखने का एक स्वाभाविक कारण भी था। युरोप में विभिन्न धार्मिक समुहों के शान्तिपूर्ण सह-जीवन का कोई स्थायी अनुभव नहीं है। ईसाइ समुदायों के बीच आपसी लड़ाई का

लंबा इतिहास रहा है। धार्मिक उत्पीडन, धर्मयुध्द और सामाजिक विभाजन युरोपिय जन-जीवन में स्थायी अंग रहे हैं। अंग्रेजों के पास भारत के विभिन्न धर्मों में के संबंधों के चरित्र को युरोपिय नजरिये से देखने के सिवाय कोई दूसरी दृष्टि नहीं थी।

अंग्रेजों ने भिन्न-भिन्न धर्म के लोंगों को एक दूसरे के खिलाफ भड़काया। इस देश की ऐतिहासिक घटनाओं की नयी व्याख्या की। कम्युनल अवार्डजैसी राजनीतिक नीति का सहारा लिया। साम्राज्यवादियों ने इस भावना को सुदृढ किया कि इस देश के हिंदू लोग मुसलमानों के गुलाम रहे है और दूसरी ओर हिंदू यहां के मूल निवासी है, अंग्रेजों के पहले मुस्लिम शासन में उन्हें सताया गया है। इस प्रकार इतिहास की व्याख्या तथा साम्प्रदायिक राजनीति के कारण एक मानसिक विभाजन सुनियोजित ढंग से किया गया जिसका प्रतिफल हिंदू और मुसलमान के बीच बढ़ती सामाजिक खाई में हुआ जिसका बहुत ही सुन्दर और बेबाक चित्रण मंजूर एहतेशाम अब्दुल वहीदखां वकील सहाब के माध्यम से "सूखा बरगद" उपन्यास में करते है। जैसे - "तुम लोग खुद सोंचो, कितनी दिलचस्प हालत थी। दिलचस्प आज तो कहा जा सकता है, उस वक्त कितना हौसला पस्त करने, कमजोर कर देनेवाली रही होगी। अंग्रेज बहादुर की अदालत में एक मुकदमा - हिंदू और मुसलमान के बीच अपनी आखिरी स्टेज में पहुंचा हुआ था। दोनों की कौमें मुकदमा जीतने के लिए बड़े से बड़ा गुनाह करनेपर आमादा थी..।"3 अपनी धार्मिक-सांप्रदायिक मान्यताएं थोपने की कोशिश दुराग्रह को जन्म देती है। चाहे हिंदू हो या मुसलमान कोई भी गलती करे तो गलती का जवाब गलती कर के देना उचित नहीं होता। ऐसे समय आदमी भावना के बदले तर्क से काम लेना चाहिए जैसे अब्बू ने सुहेल और रशिदा को संबोधित करते हुऐ कहा - "किसी मुसलमान में कौम परस्ती अच्छी मान ली जाए, तो फिर इसी तरह का जज्बा किसी हिंदू में बुराई की नजर से क्यों देखा जाय? जितने अच्छे मुसलमान असगर साहब है उतना ही अपने भाईयों की हिमायत में मुसलमानों को कत्ल करनेवाला हिंदू अच्छा हुआ? अच्छा हिंदू-अच्छा मुसलमान, रहा इन्सान तो वह भाड़ में जाये, उससे असगर साहब को क्या लेना ?"4 और सचमुच कुछ लोग तर्क के आधार पर ही सोंच समझकर विभाजन के बाद भी हिंदुस्तान में ही रहे थे। हिंदुस्तान में रहना उनके लिए मजबूरी नही थी, बल्कि अनदेखे मुल्क को अपनाना उन्हें बेचारगी लग रही थी। जो लोग स्वेच्छा से यहां बस गये थे उनका एक स्वप्न था वह कहां तक आगे साकार हुआ इत्यादी बाद के प्रश्न है। लेकिन जब यहां रह रहे हैं तो इस धरती को पूर्ण मनोयोग से अपनी ही मातृभूमि समझना चाहिए बात को अब्दुल वहीद खां सहाब के माध्यम से लेखक ने बतलाने का प्रयत्न किया है- "मैं किसी मजबूरी में यहां नहीं रुका। चाहता तो खुला रास्ता था। पाकिस्तान जाने का। मालो-असबाब के नाम पर ऐसी कौन सी जागीरें मेरे नाम थी कि पैर पकड़कर जाने से रोकती। लेकिन मै वहां अजनबियों के बीच क्यों जाता और जाकर क्या करता ?"5

आजादी के बाद मुसलमानों के मन में अपने धर्म और देश प्रेम को लेकर जो द्वन्द्व शुरु हुआ, उसे मंजूर एहतेशाम 'सूखा बरगद' में व्यक्त करते हैं। उपन्यास अपने विस्तृत कैनवास पर समाज उन समस्याओं के माकूल समाधान की ओर बढ़ता है। विभाजन के बाद भारतीय मुसलमानों के सामने सबसे बड़ा यक्ष्य प्रश्न उनके शैक्षणिक आर्थिक स्थिति को लेकर थी। विभाजन के साथ उच्च आय वर्ग मुसलमान पाकिस्तान जा चुके थे और मध्य आयवर्गीय मुसलमान भारत में रह गए थे। कुछ उच्चवर्गीय मुसलमान जो भारत में रह गए थे, उनकी आर्थिक स्थिति निरन्तर खोखली होती जा रही थी क्योंकि जमींदारी प्रथा तो पहले ही समाप्त हो चुकी थी। उपन्यास में वकील अब्दुल वहीदखां की स्थिति ऐसी ही है। प्रगतिशील मुसलमान होते हुए भी आर्थिक रुप से पंगु होने के कारण अपने बच्चों के लिए उच्च शिक्षा की व्यवस्था नहीं कर पाते हैं। फिर भी रशीदा अंग्रेजी में एम.ए. और सुहेल इंजीनियरिंग की पढ़ाई करता है। सुहेल के पिता अब्दुल वहीद के लिए धर्म ईमान की चीज है। वह इंसान को

तहजीब और संस्कृति से जोड़ती है, दूसरों की मदद करने की प्रेरणा देती है। जबकि सुहेल के लिए धर्म उसकी पहचान है। (आइडेंटीफिकेसन) भारत में उसे दूसरे दर्जे का नागरिक समंझा जाता है। वह कहता है - "यही कि यह इंडिया है और मैं यहां का एक सेकेंड क्लास सिटीजन! मैं चाहे जो भी सोचूं, जो भी करुं, जिनका मुल्क है, उनकी चलेगी !"6 यदि हर मुसलमान ऐसा ही सोचने लगे तो भारत का सबसे बड़ा अल्पसंख्यक समुदाय भारतीय विकास की गति में अपना योगदान नहीं दे पाएगा। एक प्रश्न यह भी है कि कोई मुसलमान यह सोच ही क्यों रहा है ? कहीं न कहीं उसे दोहरे मापदण्ड का शिकार होना पड़ा है इसलिए। परंतु मंजूर एहतेशाम स्पष्ट कहते हैं कि - "टुच्चेपन की बात सोचने के लिए हिंदू होना, या मुसलमान होना जरुरी नहीं ! दुच्चापन तो खुद अपने-आप में एक क्लास है। इस पर मुसलमान का लेबिल लगाकर केपिटलाइज करने की कोशिश मत करो !"7 अबुल कलाम आजाद, बदरुद्दीन तैयबजी एवं सर सैय्यद अहमद खां के विचार मुसलमानों को धर्म की परिधि से बाहर निकालकर, प्रगतिशील भारत के साथ जोड़ने वाले थे। यही कारण है कि इनके आदर्श आज भी जीवित है।

इस यथार्थ से मुंह छिपाना या इस तरह के कट्टरतावाद का जवाब और अधिक कट्टरता से देना इसका अर्थ है अपनें आप को बेइमान बना लेना। मुस्लिम समाज आज भी आत्ममंथन करने को तैयार नहीं है, यह भी एक वास्तविकता है। जो लोग कहते है कि मुस्लिम समाज आत्ममंथन करने को तैयार है, उनका आकलन सही नहीं है। जिस दिन मुस्लिम समाज आत्ममंथन करने का निर्णय ले लेगा उसी दिन आधी समस्या अपने आप सुलझ जाएगी इस तरह का आशावाद जगह जगह "सूखा बरगद" उपन्यास में चित्रित हुआ है जो कडुवा होते हुये भी बहुत सच लगता है। जैसे- "बंगला देश बनवाने के पीछे पाकिस्तान की कमर तोड़ने की, हिंदुस्तानी साजिश। सभी को अंदाज था कि पूरबी पाकिस्तान को कभी न कभी पश्चिमी पाकिस्तान से अलहदा होना है। फिर अगर हिंदुस्तान ने दो में से किसी एक की मदद की तो उसका दुःख क्यों? थे तो दोनो तरफ मुसलमाना भाई ही। और देखा जाये तो हिंदुस्तान ने उनका साथ दिया जिनपर जुल्म हुआ था, जिनकी मदद की जानी चाहिए थी। अगर कोई और बड़ी ताकत यह करती तो शायद आपको पाकिस्तान टुटने का इतना दुःख भी नहीं होता।हिंदुस्तान से मदद मांगने वाला "आधा काफिर" तो वैसा ही हो गया।"8 इसलिए आज आवश्यकता है तो सिर्फ इस बात कि, आज दोनों कौमों में बढ़ती हुई कट्टरता की दीवार को यदि दुहना है तो कट्टरतावाद को जीत ना है तो प्यार और खुलुस से, नफरत और आशंका के बवाल से यदि बचना है तो मुस्लिम समाज को स्वस्थ पक्षपात रहित आत्ममंथन करने की आदत लगानी चाहिए।

भारत की आजादी की लड़ाई सबने मिलकर लड़ी। किंतु यहीं कहीं ऐतिहासिक मूल हो गयी। अंग्रेज शासकोंने भारतीय मन को इतिहास में फिर एक बार फिर हिंदूमन और मुसलमान मन में बॉटा । परिणाम स्वरुप मुस्लिम भारत या पाकिस्तान बना। इसें यु समझा जा सकता है कि भारतीय मानसिकता खंडित हो गयी। इस खंडित मानसिकता ने एक दूसरे के मन में अविश्वास संशय तथा पूर्वाग्रह पैदा किए। इसकी दुःखद परिणति हम साम्प्रदायिक दंगो के रुप में देखते है । पाकिस्तान के अलग राज्य बन जाने के बाद भारत की साम्प्रदायिक समस्या अपने आप हल हो जाएगी, सरासर गलत और निराधार साबित हुआ। स्वतंत्रता के 47 वर्षों के इतिहास पर सबसे अधिक काला धब्बा उन अनगिनत साम्प्रदायिक दंगों का है जो है जो हर वर्ष दर्जनों की संख्या में देश के कोने-कोने में भड़कते रहते है। एक तरफ पाकिस्तान के उदय और दूसरी तरफ हिंदू सम्प्रदाय में पुनरुत्थान के जोरदार और विधिवत खड़े किये गए आन्दोलन के कारण भारतीय मुसलमान उसी भांति अलग-थलग पड़ गए जैसे रेल का कोई डिब्बा मुख्य रेल से कट जाय और शर्टिंग के लिए पड जाय। इसलिए भारतीय मुसलमानों के सामने एक तरफ की राजनीति में शुन्यता सी पैदा हो गई और देश के विभाजन के बाद तो वे अपने को ठीक से सामायोजित ही नहीं कर सके। इसकी वजह से उनमें असंतोष, निराशा और हताशा की भावना पैदा हो गई। श्री सुगतदास गुप्त ने अपने लेख - "एक नयी राजनीतिक व्यवस्था"में कहा है कि - "इस तथ्य के बारे में शंका की कोई गुंजाइश नहीं कि आज भारतीय मुसलमान अलग-अलग और निराश पडा है। राष्ट्र के प्रति उनका दृष्टिकोण अभी भी अनिश्चित है। और

उसके इस अनिश्चय के लिए हिंदू उत्तरदायी है। अनेक मुसलमानों द्वारा इस देश को अपनी मातृभूमि मानने का प्रयत्न किये जाने के बावजूद सीमा के उस पार रहनेवालों से उनकी नाते-रिश्तेदारी उनपर एक आन्तरिक मनोवैज्ञानिक दबाव डालते रहती है।"9अतः श्री प्यारेलाल के शब्दों में - "संप्रदायवाद एक कुचक्र है। एक बार उसे चला दिया जाय तो वह अपने अपने आप घुमता रहता है और आगे बढ़ता रहता है। वह विरोधी सम्प्रदायवाद को जन्म देता है और फिर दोनों अधिकाधिक जोर के साथ एक-दूसरे पर क्रिया प्रतिक्रिया करते रहते है। साम्प्रदायिकता का जहर, समाज के कट्टरतावादीयों की धर्म के नामपर होनेवाली अवसरवादी नीति धर्मनिरपेक्षता वादी आदमी की समाज के रुढिवादियों के समक्ष होनेवाली पीछेहाट आदि बातों का बड़ी सूक्ष्मता से "सूखा बरगद" मे चित्रण मिलता है।"10

निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि गंभीर एवं ज्वलंत समस्याओं के प्रति लोगोंं का ध्यान आकर्षित करना यथार्थवादी उपन्यासकार का मुख्य उद्देश होता है। इस दृष्टि से मंजूर ऐहतेशाम का उपन्यास "सूखा बरगद" पाठकों पर गहरा प्रभाव डालता है। इस उपन्यास में उपन्याकार नेमुस्लिम समाज की मानसिकता, धर्मनिपेक्षता व्यक्ति का एकदम धार्मिक बन जाने का कारण, हिंदू-मुस्लिम एकताआदि बातों का चित्रण यथार्थ की धरातलपर किया है। नैतिकता के यथार्थ चित्रांकन के साथ राजनीतिक और सामाजिक जीवन की बड़ी ही कड़वी सच्चाईयांं चित्रित करने में लेखक सफल हुऐ है जो आज भी प्रासंगिकता आज भी नजर आती है। "सुखा बरगद" के माध्यम से न केवल ऐसे तथ्यो एवं सत्योंं से हमें परिचित कराते है, जो इस उपन्यास का सबसे बड़ा आकर्षण है। उपन्यास का शिल्प भी प्रभावी है। क्योंकि इस उपन्यास के पात्र इने-गिने भले ही है, लेकिन वे अपना व्यक्तिगत जीवन जीतें हैं। उनका पतन तथा उनकी स्थिति का निर्णय उनके अपने सामाजिक जीवन एवं वैयक्तिक अस्तित्व के माध्यम से ही होता है। उपन्यास की पृष्ठभूमि में जगह जगह पढ़ने मिलता है। चंद मुट्ठी भर लोग जो अपने फायदे के लिए किसी धर्म को सुखाने का प्रयास कर रहे हैं उन्हें बांट कर। मंजूर एहतेशाम हमें आगाह करते हैं पहले हम हिन्दुस्तानी हैं इसके बाद हम किसी जाति या मजहब के हैं।'सूखा बरगद' जिस समय की कहानी कहता है, वह हमेशा प्रासंगिक रहेगा। समसामयिक स्थितियों से जुड़ा इस उपन्यास का कथानक इसे श्रेष्ठ उपन्यासों की श्रेणी में ले जाता है। उपन्यासकार उपन्यास के माध्यम से यह बताना चाहते हैं कि मुस्लिम होने का अर्थ एक हिन्दुस्तानी होना भी है।

संदर्भ ग्रंथ

1. हिन्दू होने का मतलब - सं. राजकिशोर, पृ.सं.14
2. सूखा बरगद - मंजूर एहतेशाम, राजकमल प्रकाशन, पृ.सं.121
3. सूखा बरगद - मंजूर एहतेशाम, राजकमल प्रकाशन, पृ.सं.69
4. सूखा बरगद - मंजूर एहतेशाम, राजकमल प्रकाशन, पृ.सं.95
5. सूखा बरगद - मंजूर एहतेशाम, राजकमल प्रकाशन, पृ.सं.113
6. सूखा बरगद - मंजूर एहतेशाम, राजकमल प्रकाशन, पृ.सं.119
7. सूखा बरगद - मंजूर एहतेशाम, राजकमल प्रकाशन, पृ.सं.120
8. सूखा बरगद - मंजूर एहतेशाम, राजकमल प्रकाशन, पृ.सं.127
9. स्वतंत्र भारत में हिंदू-मुस्लिम समस्या के आयाम : डॉ. अखिलेश्वर पाण्डेय, पृ.सं.128
10. भारतीय मुसलमान : मिथक और यथार्थ -सं. राजकिशोर, पृ.सं.147

नारी मनोविश्लेषण व विघटन का कलात्मक प्रमाण : "कुलटा"

डॉ. सैबाशिरीन हारुनरशीद शेख

(हिंदी विभाग) मौलाना आजाद कॉलेज, औरंगाबाद। जिला-औरंगाबाद

राजेन्द्र यादव हिन्दी कथा साहित्य के प्रमुख हस्ताक्षर है। स्वातंत्र्योत्तर कथा साहित्य में राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश तथा कमलेश्वर के नयी कहानी आन्दोलन की बृहत्रयी भी कहा गया है। तीनों रचनाकारों ने नयी परिस्थितियों नयी विचारधाराओं, मान्यताओं तथा इए मान-मूल्यों को अपनी रचनाओं में कलात्मकता से प्रस्तुत किया है। राजेन्द्र यादव का कथा साहित्य बहुआयामी है। वे कहानी, उपन्यास, संस्मरण, रेखाचित्र, आत्मकथा, अनुवाद और संपादन के क्षेत्र में अपनी सक्रिय हस्तक्षेप क्षमता के कारण कमलेश्वर और मोहन राकेश की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण माने गए है।प्रत्येक रचनाकार के व्यक्तित्व की निर्मित में उसकी वंश परम्परा, संवेदनागत अनुभव तथा सामाजिक प्रदेय का योगदान होता है। साथ ही साथ वह अपनी अध्ययनशीलता, विचारधारा एवम् दर्शन सम्बन्धी 'विजन' से अपन् व्यक्तित्व को विशिष्ट निर्मित प्रदान करता है।

राजेंद्र यादव ने स्वतंत्रता मिलने के दो-चार वर्ष पहले लिखना आरंभ किया। उन दिनों वह कॉलेज में शिक्षा प्रद प्राप्त कर रहे थे उन्होंने शुरु में तीन सामाजिक उपन्यास लिखें, कहानियां बाद में लिखी। हिंदी कथा जगत में राजेंद्र यादव का स्थान अग्रगण्य है। कविता, संकलन, संपादन कार्य, संस्मरण, आलोचना तथा अनूदित कृर्तियों के माध्यम से उन्होंने हिंदी साहित्य जगत को एक समृद्धता एवं सम्पन्नता प्रदान की।राजेंद्र यादव का उपन्यास साहित्य भी हिंदी जगत में अपना उल्लेखनीय स्थान रखता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय जीवन पर आधारित उनके उपन्यासों में प्रकृतिवादी चिंतनधारा अपनाते हुये मध्यमवर्ग का जीवंत चित्रण किया गया है। राजेंद्र यादव का उपन्यास संसार युवा पीढ़ी के संघर्ष, स्वप्न, बेरोजगारी, हताशा, आत्महीनता के साथ-साथ जिजीविषा, आंतरिक मनोविश्लेषण व विघटन का कलात्मक प्रमाण है।अभिव्यक्ति और उदात्तीकरण की प्रक्रिया, युगीन परिवेश एवम् युगबोध का प्रभाव कम महत्वपूर्ण नहीं होता। जैसा कि राजेन्द्र यादव ने कहा है कि - "हर पीढ़ी की अपनी भावनात्मक सम्बद्धताएं और प्रतिबद्धताएं होती है। एक ही समय के हवा-पानी की हिस्सेदारी कही मानसिक बनावट को भी निर्धारित करने लगती है। कहना चाहिए कि एक समय और परिवेश की उपज, हम सब एक ही कांच के बने होते हैं। सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक परिवेश हमारे व्यक्तित्व के पहलू और कटाव भी करीब एक जैसे ही तराशते है। हां, अपनी-अपनी स्थित, करवट, दूरियां और मुंह की दिशाओं के कारण बदलती किरणों के प्रिज्म पहलु, परछाइयां, नक्शे, छाप और बूटे अलग-अलग बनाने लगते हैं।"1 राजेन्द्र यादव ने अपने कृतियों में मध्यवर्गीय पात्रों की अन्तर चेतना, हीन भावना, अग्रसारिता, उदात्तता, कलासृजन आदि की भावनाओं एवम् जिजीविषा को मनोविश्लेषण के आधार पर विश्लेषित किया है। जिसमें विशेष रुपसे 'कुलटा' उपन्यास नारी मनोविज्ञानिक द्रष्टिकोण को अभिव्यक्त करता है।

राजेंद्र यादव द्वारा लिखित 'कुलटा' उपन्यास की मैसेज तेजपाल मनोवैज्ञानिक पात्र है। मिसेज तेजपाल अंत में आन्तर्वेदना तथा भावनाओं के दमन से वह पती को त्यागकर चली गई। धन-दौलत, शोहरत, इज्जत प्राप्त मिसेज तेजपाल आन्तरिक द्वन्द्व से पीड़ित पात्र है। 'कुलटा' उपन्यास में लेखक का उद्देश्य मानव के बाह्य रुप की अपेक्षा मन की आन्तरिक परतों को खोलकर दिखाना है। मनोविश्लेषणवादी लेखक पात्रों में अन्तर्मुखी व्यक्तित्व को रुपायित

करता है। उसकी दृष्टि चेतन मन की क्रियाओं के प्रति सजग रहती है। "मनोवैज्ञानिक कथाकार मनुष्य के बाहरी क्रिया-कलापों को छोड़कर उसकी चेतना को ही अपने वर्णन का आधार बनता है।"2 'कुलटा' में मिसेज तेजपाल की आन्तरिक उथल-पुथल प्रारम्भ से अन्त तक वर्णित है। "पति-पत्नी में तनाव न होकर रस्साकशी है। कही दोनों के वर्गीय संस्कारों की टकराहट उन्हें उलझन में डाले रहती है। तो कही तीसर के प्रवेश की आहट उनके बीच दरार डाल देती है।"3

'कुलटा' राजेन्द्र यादव की तीसरी औपन्यासिक कृति है। उक्त रचना के अन्तर्गत लेखक ने मानव की संकुचित वृत्ति के प्रति अपना विद्रोह प्रकट किया है। साथ ही अनमेल विवाह की भीषण स्थिति की ओर ध्यान खींचने का प्रयास किया है। 'कुलटा' उपन्यास में मिसेज तेजपाल के रोमांटिक एवं दुःसाहसी चरित्र का वर्णन है जो अपने संवेग, आवेग, यौन अतृप्ति की पूर्ति हेतु एक वायलिन वादक के साथ अन्यत्र चली जाती है। यह नारी वर्ग की स्वतंत्र चेतना एवं इच्छित जीवन शैली का प्रतीकात्मक उपन्यास है। मनोविश्लेषण के दृष्टिकोण से यह कुण्ठित मनोदशा 'फ्रस्ट्रेटेड चरित्र' की गाथा है।

'कुलटा भी कोई दुःसाहसी नारी चरित्र निर्मित नहीं कर पाती है। मिसेस तेजपाल का उग्र और प्रदर्शनकारी चरित्र लोगों में बहस का माध्यम है पर वह तूफानी मर्मान्तक मनोविज्ञान की नारी नहीं है। किसी स्त्री का पुरुषोचित वेशभूषा पहनना, कुतिया को लेकर हुगली किनारे टहलना संभवतः सातवें दशक में आश्चर्य का विषय हो पर पांडिचेरी, बम्बई, दिल्ली, शिमला, और गोवा में अनेकानेक उच्च वर्ग की नारीयां नये-नये फैशन के परिधान पहनती है। प्रचलन के अनुसार पार्टी क्लब में शराब और सिगरेट पीने की प्रवृत्ति अपना लेती है जो सामान्य पाठकों के लिए कौतुहल व बहस का विषय है।

'कुलटा' उपन्यास की "मिसेज तेजपाल हिपोक्रेट पात्र नहीं है पर वह अपने आप में उच्चता-भ्रान्ति विकसित कर लेती है। वह अपने सौन्दर्य, शारीरिक वैशिष्ट्य के कारण नर्सिसिज्म आत्मरित की प्रवृत्ति अपना लेती है।"4 इसी कारण वह तेजपाल की भावनाओं के विपरित परिधान धारण करती है। उपन्यास के अन्त में सामान्य पाठक यह जानकर हतप्रभ रह जाता है कि मिसेज तेजपाल ने अपने पति पर नपुसंकता का आरोप लगाया है। मिसेज तेजपाल अपने विवाह पूर्व जीवन को छिपाना चाहती है। अपने हृदय की पीड़ा को वह घुट-घुट कर स्वयं ही भोगती है। विवाह पूर्व भी वह वाक्चातुर्यपूर्ण और मिलनसार थी। किन्तु घर में उनका दबदबा था। "एक बात थी, घर में बड़ा रौब था -.....मम्मी, फादर, भाई सभी डरते थे, क्या मजाल जो मैं कह दूँ और वह न हो ... । पर उन लोगों ने मेरा बड़ा नुकसान कर दिया। अब अगर मेरी कोई इच्छा पूरी न होती तो मन होता है गोली मार लूँ..... ।"5 मनोवैज्ञानिक दृष्टि से बचपन के लाड़ प्यार की अधिकता के कारण मिसेज तेजपाल अब विवाहोपरान्त एक हठीली नारी हो गई जो अपनी इच्छा के विरूद्ध कोई बात होते हुए देखना नहीं चाहती। इसलिए पति की कही हुई बात को नकारती है। स्पष्ट है मिसेज तेजपाल निर्भिक विचार की है जो इच्छा को दमन किए जाने पर विद्रोही हो उठती है - "कुलटा उपन्यास की नायिका मिसेज तेजपाल का व्यक्तित्व एवं चरित्र सामान्य पाठक को अटपटा और इरोटिक महसूस होता है जो दरअसल अपनी आकांक्षाओं के पूर्ण न होने पर दुराग्रही बन जाती है। वह अग्रेसिव मूड की पात्रा नजर आती है।"*6

'कुलटा' उपन्यास के प्रारंभिक विवेचन में मेजर तेजपाल और मिसेज तेजपाल में वे सारे गुण विद्यमान रहते हैं जो नारी-पुरुष को आकर्षित कर एक दूसरे में बांधने के लिए आवश्यक होते हैं। पर कालानुसार दोनों अपने जीवन में खुश नहीं रह पाते। परिवार तथा समाज से समायोजन के अभाव में 'नामर्द' तथा 'कुलटा' नाम से सम्बोधित किये जाते है। मिसेज तेजपाल अफसर लोगों की जिन्दगी से उसे घृणा करती है, स्वच्छन्द वातावरण में जीना चाहती है,

जो उसे अपने आस-पड़ोस में नहीं मिलता। वह वही कार्य करती है जो मेजर को पसन्द न हो और अंततः अभावग्रस्त जिन्दगी का खोखलापन दूर करने के हेतु वॉयलिनस्ट के साथ भाग जाती है। मेजर तेजपाल का पुरुष इस अप्रत्यक्ष आरोप को स्वीकार नहीं कर पाता और पागल हो जाता है। दाम्पत्य जीवन में प्रेमाभाव के चलते उत्पन्न वैषम्य, असामंजस्य इस उपन्यास में पेश किया है। साथ ही वे नारी के अन्तर्मन में प्रतिक्रियावादी विक्षोभ एवं आक्रमण भाव के कार्य-कारण की ओर भी मनोविश्लेषणात्मक संकेत करते हैं।

मिसेज तेजपाल अपने व्यक्तित्व के प्रति ज्यादा सजग है, आत्ममुग्धता की स्थिति तक सीमित है - "आत्ममुग्धा स्त्री का दुर्भाग्य है कि वह अपने वास्तविक अभाव को जानते हुए भी अपने खालीपन के प्रति जागरुक रहती है। उसके लिए किसी भी व्यक्ति और उसके प्रतिरुप का अस्तित्व ही नहीं रहता। आत्ममुग्धा स्त्री को हमेशा निराशा ही मिलती है। वह अपने को पूर्ण रुप में कभी नहीं देख सकती। उसका अकेलापन मानो आकस्मिक होता है इसीलिए जब तक उसमें परिवर्तन न आये, तब तक वह अशान्त होकर लफंगों की ओर भागती रहेगी। यह सोचना गलत होगा कि वह अन्यों पर आश्रित रहना नहीं चाहती क्योंकि वह अपने को ही जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य मानती है। ठीक इसके विपरित वह तो अपने को पूर्ण दासता में जकड़ लेती है। वह अपनी स्वतंत्रता पर नहीं टिक सकती। वह तो स्वयं अपने को ऐसी 'वस्तु' बना लेती है जो विश्व के अन्य चेतना अस्तित्व द्वार संकट में डाल दी जाती है।"7

मिसेज तेजपाल ने वायलिन वादक के साथ फरार होकर अमला ने विवाहित अमर के साथ वैचारिक एवं स्नेहिल सम्बन्ध विकसित कर अपने अस्तित्व को खतरे में डाला है। पर एक बार भी प्रेम सम्बन्धों में डूबने के बाद सामान्य जीवन के खतरे उसे अपने उद्देश्य से विमुख नहीं कर पाये है। सीमोन द बोउआर ने कहा भी है कि - "प्रेम में लीन स्त्री अपने द्वारा जगाये गये प्रेम के ही माध्यम से देव-तुल्य हो जाती है। हर्षोल्लास में डूबी हुई स्त्री कहती है- मैं स्वीकार करती हूँ मैंने समर्पण किया। मैंने इस व्यक्ति को दूसरे दिन आने की अनुमति दी। मेरी इच्छा थी कि वह पने में केवल एक प्रेमी और मित्र को न देखे बल्कि एक ऐसे उत्सुक दर्शक को भी देखे जो मुझे और मेरे जीवन को देखता है। इससे कटु और कोई भी अनुभव नहीं होता कि कोई व्यक्ति जो फूल और रत्न के समान हो, उसका चाहने वाला कोई न हो? यह कैसी सम्पत्ति है जो मुझे सम्पन्न नहीं करती और न जिसके वरदान की कोई कामना करता है।"8

मनोविश्लेषण के क्षेत्र में पर्सोना और शडो (मुखौटा और छापा) की चर्चा होती है कभी-कभार व्यक्ति अपने दर्द को छिपाने हेतु मुखौटा धारण कर लेता है। 'कुलटा' उपन्यास में मिसेज तेजपाल का गाना, खूंखारपन और कठोरता भी असली नहीं होता। दोनों अपने-अपने नकली हथियारों से एक दूसरे से लड़ते हैं और जानते हैं कि उनके पास नकली हथियार है, लड़ाई खुद नकली है। पर यह मुखौटा भी बहुत समय तक नहीं रह पाता। इसी बात का उल्लेख 'कुलटा' उपन्यास में हुआ है।

प्रस्तुत उपन्यास की मिसेज तेजपाल असीम सौन्दर्य सम्पन्न सुकोमल, शिष्ट और सहज स्वाभाविक अतृप्ति का शिकार तथा पति से असन्तुष्ट अतृप्त, एक सभ्रान्तं आधुनिक महिला है जो हंसमुख चेहरे पर बनावटी मुस्कान लिए हुए भीतर-ही-भीतर त्रस्त रहती है। वह अपनी मानसिक वेदना को गीतों में छिपाये हुए हर क्षण उल्लासित रहने का आभास देती है। पति के सामने डरी व सहमी हुई मिसेज तेजपाल वास्तव में स्वतंत्र विचारधारा की है। जो हर बात में पति की उपेक्षा किया करती है। मेजर तेजपाल और उनके अफसर शाही वातावरण के प्रति उसके मन में घृणा थी। निःसन्तान मिसेज तेजपाल अपनी रिक्तता की पूर्ति गुड्डी से बातचीत में पूरी करती है। अपनी सम्पूर्ण वात्सल्य उसके प्रति लुटाती हुई उसमें उलझी हुई मन रमाये रहती है।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि 'कुलटा' अत्याधुनिक नारी के मनोवैज्ञानिक को उभारने वाला उपन्यास है। वह पाश्चात्य भौतिकवाद और खाओ-पिओ मौज करो के सिद्धान्त में आस्था रखने वाली मन:स्थिति की जांच पड़ताल करने वाला उपन्यास बनकर रह गया है। मिसेज तेजपाल के स्वतंत्र विचारों से उत्पन्न मानसिक तड़प और विद्रोह पूरे उपन्यास में वर्णित है। दाम्पत्य-जीवन के मन-मुटाव को, विषमता को, असमझौते से उत्पन्न होने वाली टीस को उपन्यास का आधार बनाया गया है। मिसेज तेजपाल के मनोभावों की गहरी पकड़ राजेन्द्र यादव में है। मिसेज तेजपाल में काम-भावना का दमन है। मानसिकरुप से पीड़ित दिखाई देने वाली मिसेज तेजपाल अनेक कुण्ठाओं से ग्रस्त है।

संदर्भ ग्रंथ

1. औरो के बहाने 'अन्वेषण का क्रम' - राजेंद्र यादव, पृ.सं. 181
2. जैनेंद्र के उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन - देवराज उपाध्याय, पृ.सं.3
3. कथा यात्रा,डॉ वेदप्रकाश अमिताभ - डॉ राजेंद्र यादव, पृ.सं.35
4. औरो के बहाने 'अन्वेषण का क्रम' - राजेंद्र यादव, पृ.सं.182
5. कुलटा - राजेंद्र यादव, पृ.सं.164
6. कुलटा - राजेंद्र यादव, पृ.सं.176
7. कुलटा - राजेंद्र यादव, पृ.सं.179
8. स्त्री उपेक्षिता - प्रभा खेतान, पृ.सं.307

21वीं सदी के हिंदी उपन्यासों में मुस्लिम समाज की समस्याएं

प्रा. डॉ. मुल्ला मुस्तफा लायक

हिंदी विभाग, महाराष्ट्र महाविद्यालय, निलंगा जिला. लातूर

Email ID (mulla.sir123@gmail.com) मो. नं. 9527682647

साहित्य समाज का अभिन्न अंग है। साहित्य किसी भी समाज को अनदेखा का नहीं कर सकता। साहित्य की प्रत्येक विधा में मुस्लिम समाज को अभिव्यक्त किया गया है। विशेष रूप से उपन्यास साहित्य में मुस्लिम समाज के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है। 21वीं सदी के हिंदी उपन्यासों में मुस्लिम समाज की विभिन्न समस्याओं को चित्रित किया गया है। वर्तमान समय में मुस्लिम समाज बेरोजगारी, निर्धनता, अशिक्षा, अन्धविश्वास एवं अज्ञानता, तलाक़, दहेज, सांप्रदायिकता, असुरक्षा की भावना आदि समस्याओं को लेकर जूझ रहा है।

संविधान की संपूर्ण व्यवस्थाओं के बावजूद भी मुस्लिम समाज की स्थिति अत्यंत भयावह और चिंता जनक है। सच्चर समिति (2005) ने मुस्लिम समाज की सामाजिक,आर्थिक एवं शैक्षणिक स्थिति पर रोंगटे खड़े करने वाली तस्वीर पेश की है। आज मुस्लिम समाज में दिन-ब-दिन गरीबी का प्रमाण बढ़ता जा रहा है। मुस्लि नौजवानों के लिए सरकारी नौकरियां तो दूर की बात है, उन्हें आसानी से कोई काम तक नहीं मिलता। पढ़े- लिखे मुस्लिम युवाओं को बेरोजगारी का दंश झेलना पड़ रहा है। इसकी पुष्टि 'घर का आखिरी कमरा' उपन्यास में की जाती है। इस उपन्यास का नायक अमजद मियां उच्च शिक्षित होने पर भी बेरोजगार है। "मैंने विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया था तो कितना आत्मविश्वास था मुझ में मैं सोचा करता था कि दुनिया मेरी मुट्ठी में है और मैं जो चाहूंगा प्राप्त कर लूंगा मगर धीरे-धीरे मुट्ठी खुलती गई और आज मेरी मुट्ठी पूरी तरह से खुल चुकी है। कहाँ तो मैं आई. ए. एस. पी. सी. एस बनने का ख्वाब देखा करता था और कहां आज की तारीख तक मैं पूरी तरह बेरोजगार हूं।" 01.

मुस्लिमों के साथ प्रत्येक क्षेत्र में भेदभाव किया जाता हैं। रोजगार के क्षेत्र में भी भेदभाव होना अत्यंत स्वाभाविक है। मुसलमान युवक किसी क्षेत्र में नौकरी पाने के लिए इंटरव्यू देने जाता है तो उन्हें पाकिस्तान में जाकर नौकरी मांगो कहकर भगा दिया जाता है। "मेरे चाचा को एक जगह इंटरव्यू में यह कहकर भगा दिया था कि जाओ पाकिस्तान में जाकर नौकरी मांगो, जब लड़कर पाकिस्तान तो लिया, तो यहां क्यों नौकरी मांग रहे हो।" 02 'अपवित्र आख्यान' उपन्यास में इकबाल अहमद को शहर में कोई नौकरी नहीं देता; इसलिए वह अपना नाम बदलकर इक़बाल बहादूर राय हिन्दू नाम रखता है तब जाकर उसे भाग्य - विधाता अख़बार में नौकरी मिलती है। वह स्वयं को मारकर जीता है ; क्योंकि उसे अपना पेट जो पालना है- जैसे," मगर मैं इक़बाल बहादूर राय नाम से काम करता हूं, क्योंकि और कोई चारा नहीं है।" 03

मुस्लिमों के साथ प्रत्येक क्षेत्र में भेदभाव किया जा रहा है। उनके साथ दूसरे दर्जे का बर्ताव किया जाता है। इस सन्दर्भ में सतीश कुमार अपने शोध आलेख में लिखते हैं - "शासन, सत्ता तथा सरकार के साथ मुसलमान के रिश्तों के लिहाज़ से भी हालत किसी माने में बेहतर नहीं है। उनके के खिलाफ हर क्षेत्र में भेदभाव होता है। चाहे निजी क्षेत्र में हो या या सरकारी क्षेत्र मे मुसलमान आख़िरी विकल्प होगा। इसकी भी कोई गारंटी

नहीं है कि पदोन्नति आदि के मामले में उसे उसका हिस्सा मिलेगा हाँ अगर वह सोर्स सिफारिश की जुगाड कर सकता है तो दूसरी बात है।" 04

गरीब मुसलमान रोटी, कपड़ा, मकान इन प्राथमिक आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर सकता तो उसकी दूसरी आवश्यकताओं को कैसे प्राप्त कर सकता है। जो निर्धनता के कारण असुविधाओं और अभावों में जीवन व्यापन कर रहा है। अनवर सुहैल के 'पहचान' उपन्यास में मुहम्मद युनूस का परिवार निर्धन परिवार है। जिसके परिवार की पूरी गृहस्थी दो कमरे में समाई हुई थी। उसके माता-पिता के बीच प्रेम और घृणा प्रकट करने के लिए पृथक व्यवस्था नहीं थी। जैसे, - "युनूस एक ऐसे निम्न- मध्यवर्गीय परिवार में पैदा हुआ था। जहाँ दो कमरे में पूरी गृहस्थी समाई हुई थी। जहां माता-पिता के बीच प्रेम और घृणा प्रकट करने के लिए पृथक व्यवस्था न थी।" 05

. गरीबी के कारण मुस्लिम समाज में शिक्षा का अभाव नजर आता है। गरीबी के कारण मुस्लिम समाज के बच्चे शिक्षा ग्रहण कर नहीं पाते। उन्हें गरीबी के कारण कम उम्र में ही छोटे-छोटे काम करके अपने मां-बाप की आर्थिक मदद करनी पड़ती है। अनवर सुहैल के 'पहचान' उपन्यास का पात्र मुहम्मद युनूस गरीबी के कारण शिक्षा ग्रहण कर नहीं पाता। वह कम उम्र में ही मन्नू भाई की गैरेज पर काम करता है। "मन्नू भाई के आने से पूर्व यदि कोई कस्टमर आता तो वह उनकी समस्या सुनता और उसके लायक रिपेयर का काम होता तो कर देता । इस छोटी-मोटी रिपेयरिंग से अपना जेब-खर्च बनाता।"06

. मुस्लिम समाज के धार्मिक-रूढ़िवादी लोग दीनी शिक्षा को ही पढाई- लिखाई का हिस्सा मानते हैं। दीनी शिक्षा मज़हबी जरूरत होती है, उसे पढ़ाई-लिखाई नहीं कहा जा सकता। इसीकारण भी मुस्लिम समाज में शिक्षा का अभाव दिखाई देता है। जैसे, "कौन कह रो है के छोरी अनपढ़ है? हमने तो सुनी है के ऊ चार जमात पढ़ी है। सारी कुरान ए पढ़ लेवे है।" 07

आज मुस्लिम महिलाओं की सबसे बड़ी समस्या तलाक़ है। मुस्लिम पुरुष मन में आया तब एक साथ तीन बार तलाक़ शब्द का उच्चारण करके अपने पत्नी से छुटकारा पाता है। शरीयत के अनुसार इस प्रकार से तलाक़ देना जायज नहीं है। भगवानदास मोरवाल के ' बाबल तेरा देश में' उपन्यास में मुबारक अली तीन बार तलाक़ तलाक़ कहकर अपनी पत्नी को तलाक़ देता है। तभी उपन्यास की नायिका शकीला इसका विरोध करते हुए कहती है - "अम्मा ऐसे तलाक जायज नहीं माने गए हैं कि जब मन में आया तीन बार एक साथ तलाक़ तलाक़ कह दिया।"08 तलाक़ के कारणों में धर्म के पाखंड के साथ-साथ दहेज भी प्रमुख है। दहेज़ की लालसा के कारण मुस्लिम पुरुष अपनी पत्नी को तलाक़ दे रहा है। जैसे, "जमीला के उस भतीजे ने जो दिल्ली पुलिस में सिपाही के पद पर तैनात हैं। नोकरी लगते ही पहली बीबी को यह कहते हुए तलाक़ दे दिया कि दिल्ली जैसे शहर में उसके साथ निबह बहुत मुश्किल है। जबकि सच्चाई यह है कि इस तलाक़ के पीछे दहेज बड़ा कारण था।"09

वर्तमान समय में सांप्रदायिकता ने विकराल रूप धारण किया है। सोचा गया था कि स्वतंत्रता के पश्चात सांप्रदायिक शक्तियां कमजोर पड़ेगी। देश विभाजन के बाद धार्मिक उन्माद घटेगा। धर्मनिरपेक्षता में भारत चयन की सांस लेगा। मध्यकालीन सोच का निराकरण होगा। आधुनिक दृष्टि विकसित होगी। भारतीय स्वतंत्रता के जन्म काल से ही सांप्रदायिकता ने तमाम उम्मीदों पर पानी फेर लिया। देश को आजादी मिलने के बाद सांप्रदायिकता की समस्याएं ने विकराल रूप धारण किया। सांप्रदायिक राजनीति ही सांप्रदायिकता की जड़ बनी हुई है। चंद्र सांप्रदायिक राजनेता वोट की खातिर हिंदू मुसलमानों में दंगा करवाते हैं-"आप को पता है बनारस में दंगा हुआ है। अरे का दंगा। ऊहां तो हर साल होता है। अच्छा कइसे? इन सब भोंसड़ी वाले नेता करवाते हैं। क्यों? वोट की

खातिर! खाली बनारस में होता है कि दूसरे शहर में में भी । हर जगह होता है।"10 बार-बार होने वाले सांप्रदायिक दंगों के कारण मुस्लिम समाज में असुरक्षा की भावना निर्माण हो रही है। भारतीय समाज द्वारा मुसलमानों की राष्ट्रीयता पर शक –संदेह

और नफरत की दृष्टि से देखा जाता है। मुसलमानों ने अपनी पहचान भारतीय बना ली है; फिर भी उन्हें संदेह-नफरत की दृष्टि से देखा जाता है। जैसे,"बाहर के पाकिस्तान को तो खत्म कर देंगे, मगर देश के अंदर जो पाकिस्तान है उसका क्या करेंगे।"11 अत: भारतीय मुस्लिम समाज सम्मान पूर्वक निर्भीक, जिम्मेदार नागरिक बनने और मुख्य धारा से जुड़ने के लिए संघर्ष कर रहा है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि, संविधान की संपूर्ण व्यवस्थाओं के बावजूद भी मुस्लिम समाज की स्थिति अत्यंत भयावह व चिंताजनक है। सच्चर समिति ने मुस्लिम समाज के सामाजिक आर्थिक एवं शैक्षणिक स्थिति पर रोंगटे खड़े करने वाली तस्वीर पेश की है। मुस्लिम समाज का अन्य जाति – धर्मो से पीछे रहने का कारण केंद्र सरकार और राज्य सरकारों का उन पर कम ध्यान देना ही है। इसके लिए स्वयं मुस्लिम समाज भी जिम्मेदार है। 21वीं सदी के हिंदी उपन्यासों में मुस्लिम समाज की विभिन्न समस्याओं को चित्रित किया गया है।

संदर्भ:

1. घर का आखिरी कमरा, प्रियदर्शन मालवीय, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली-2012 पृ.34,35
2. वही पृ.40
3. अपवित्र आख्यान, अब्दुल बिस्मिल्लाह, राजकमल प्रकाशन, नईं दिल्ली -2010 पृ.35
4. वाङ: मय (त्रैमासिक हिंदी पत्रिका), संपा. डॉ. एम. फिरोज अहमद, वर्ष 11जुलाई 2014 पृ.07
5. पहचान, अनवर सुहैल, राजकमल प्रकाशन, नईं दिल्ली -2009 पृ.28
6. वही पृ.74
7. बाबल तेरा देश में, भगवानदास मोरवाल, राजकमल प्रकाशन, नईं दिल्ली -2004 पृ.223
8. वही पृ.343
9. वही पृ.305
10. दोजख , सैयद जैगम इमाम राधाकृष्ण प्रकाशन, नईं दिल्ली -2009
11. . घर का आखिरी कमरा, प्रियदर्शन मालवीय राजकमल प्रकाशन, नईं दिल्ली-2012 पृ.93

देवनागरी लिपि: चिंतन और चुनौतियाँ

डॉ. मुकुंद कवडे

स्नातकोत्तर हिंदी विभाग एवं अनुसंधान केंद्र पीपल्स महाविद्यालय, नांदेड, महाराष्ट्र .

मानव सभ्यता के विकास के साथ-साथ भाषा का उद्भव एवं विकास भी एक युग प्रवर्तक घटना है। जिस प्रकार भाषा का उद्भव एवं विकास मानव जाति में महत्वपूर्ण बदलाव साबित हुआ है उसी तरह भाषा का मूर्त रूप अर्थात लिपि के जन्म ने मानव जाति एवम् सभ्यता की दिशा ही बदल दी है। लिपि के द्वारा ही मानव अपने अनुभव, ज्ञान-विज्ञान को स्थायित्व प्रदान करने लगा है। आने वाली पीढ़ी के लिए मानव सभ्यता एवं इतिहास को पहुंचाने का महत्वपूर्ण साधन लिपि बन गई है। लिपि भाषा को मूर्त रूप प्रदान करती है। वस्तुत भाषा के दो रूप होते हैं,एक मौखिक जिसे महत्वपूर्ण और प्रमुख भाषा का रूप माना जाता है तो दूसरा लिखित रूप जिससे मौखिक की तुलना में गौण रूप माना जाता है। "भाषा के उच्चरित रूप को निर्धारित प्रतीक चिन्हों के माध्यम से लिखित रूप देने का साधन ही लिपि है अर्थात भाषा के लिखने का ढंग लिपि है।"1 इस तरह से लिपि का संबंध भाषा के लिखित रूप से है जिसके माध्यम से आज हम ने अपनी सभ्यता ज्ञान, अनुभव, परंपरा एवं समग्र इतिहास को सुरक्षित कर पाए हैं। इसलिए भाषा का लिखित रूप अर्थात लिपि का अपना अलग एवं विशेष महत्व है, हालांकि लिपि के द्वारा मौखिक भाषा की समस्त भाव भंगीमा के साथ पूर्ण अभिव्यक्ति नहीं हो सकती,फिर भी लिपि के सामर्थ्य की सीमा होने पर भी इसका कोई पूर्ण विकल्प अब तक तो विश्व में निर्माण नही हो सका है।

देवनागरी लिपि निरंतर विकसित और परिष्कृत होती गई है। समय-समय पर उसमें कई सुधार करने के सफल प्रयास भी हुए हैं। भारतीय स्वाधीनता आंदोलन में हिंदी भाषा के साथ-साथ देवनागरी लिपि को भी महत्व दिया जाने लगा था। स्वाधीनता आंदोलन की प्रमुख संवाहिका हिंदी भाषा ही थी। स्वाधीनता के पश्चात हिंदी भारत की राष्ट्रभाषा और देवनागरी राष्ट्रीय लिपि के रूप में प्रतिष्ठित हुई है। किसी संदर्भ में डॉ उदय नारायण तिवारी कहते हैं कि " भारत के संविधान ने इसे राष्ट्रलिपि के पद पर आसीन किया गया है और संस्कृति तथा संस्कृत लिखने के लिए प्रयुक्त होने के कारण यह अखिल भारतीय लिपि है।" 2 आज देवनागरी विश्व की श्रेष्ठतम तथा वैज्ञानिक लिपि के रूप में प्रतिष्ठित हुई है । इस दृष्टि से कई चिंतन हुए हैं।यही नहीं तो कई अनुसंधानों के द्वारा भी यह निष्कर्ष निकाले गए हैं कि देवनागरी लिपि वैज्ञानिक लिपियों में से एक लिपि है । उसमें सभी भाषाओं की ध्वनियों को व्यक्त करने का सामर्थ्य है। साथ ही ध्वनियों की समृद्धता के कारण विश्व की प्रमुख लिपियों में अपना स्थान बना चुकी है। इसी संदर्भ में लक्ष्मी लाल वैरागी कहते है कि, " नागरी की वैज्ञानिकता और पर्याप्त समृद्ध वर्णमाला में विश्व की अधिकांश भाषाओं की अधिकांश ध्वनियाँ विद्यमान है और किंचित परिवर्तन-परिवर्धन करने पर यह विश्व की समस्त भाषाओं के लिए अंतरराष्ट्रीय लिपि बनने की सामर्थ्य रखती है।" 3

हिंदी विश्व की प्रमुख भाषाओं में से एक भाषा है। विश्व में बोलने वालों की संख्या की दृष्टि से भी प्रथम तीन भाषाओं में एक है। साहित्य, संस्कृति, इतिहास तकनीकी सभी दृष्टि से समृद्ध भाषा की देवनागरी लिपि भी एक समृद्ध लिपि है। ऐसी समृद्ध लिपि को कई चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। इस विषय पर कई दृष्टियों से चिंतन करने की आवश्यकता है। नागरी लिपि का विरोध इसलिए नहीं हो रहा है कि वह एक कमजोर लिपि है या दोषपूर्ण है। अपितु इसलिए हो रहा है कि अंग्रेजी भाषा की तरह रोमन लिपि में लिखना भी प्रतिष्ठित समझा जा

रहा है। इस वास्तविकता को हम अस्वीकार नहीं कर सकते। यह कहना गलत नही होगा कि अंग्रेजी में बोलना और लिखना आजकल ज्ञान प्रदर्शन करने का फैशन जैसा हो गया है।

वस्तुत: अंग्रेजी भाषा एवं रोमन लिपि के प्रति अतिरिक्त मोह बढ़ता जा रहा है। आज भी हम देखते हैं कि अंग्रेजी बोलने एवम् लिखने में जो मान-सम्मान मिल रहा है वह हिंदी या अन्य भारतीय प्रादेशिक भाषा में नहीं मिल पा रहा है। अंग्रेजी माध्यम से सीखने की होड सी लग गई है। वस्तुत: "अपनी भाषा और लिपि हर व्यक्ति को प्यारी होती है और उससे संबंधित प्रश्नों में से वह किसी प्रकार का समझौता करने को तैयार नहीं होता क्योंकि वह उसकी सांस्कृतिक, सामाजिक और जातिगत अस्मिता का प्रतीक होती है।" 4 इस सच्चाई को स्वीकार करते हुए भी अंग्रेजी भाषा एवं रोमन लिपि के प्रति अतिरिक्त मोह बढ़ता ही जा रहा है और इस वास्तविकता को भी स्वीकार करना पड़ेगा। आज भी हम इस मानसिकता से मुक्त नहीं हो पाए है कि अंग्रेजी बोलने वाला और रोमन लिखने वाला व्यक्ति की प्रतिष्ठा और सम्मान अधिक होता है। अंग्रेजी बोलने का और रोमन में लिखने का जो अधिक मोह है, वह देवनागरी के सामने एक चुनौति से काम नहीं है। हालांकि विश्व में देवनागरी के वैज्ञानिक होने का दावा अधिक प्रबल रहा है । वस्तुत: "नागरी लिपि एक व्यवस्थित और वैज्ञानिक लिपि है।विश्व के भाषाविदों ने नागरी की इस विशेषता को मुक्त हृदय से सराहा रहा है। यह दूसरी बात है कि भारत के कुछ अंग्रेजी पसंद लोग इसेमें दोषान्वेशन का .असफल प्रयास करते रहे।" 5

देवनागरी लिपि के समक्ष हमेशा ही रोमन लिपि के सामर्थ्य एवं समृद्धता की चर्चा होती रही है। रोमन से तुलना करते हुए देवनागरी लिपि के संबंध में अनेक तर्क वितर्क दिए जाते हैं। यहाँ तक कहां जाता है कि रोमन की अपेक्षा देवनागरी अधिक क्लिस्ट लिपि है। जैसे 'वसुंधरा' शब्द को देवनागरी में लिखते समय 'स' के नीचे मात्रा और ऊपर अनुस्वार तथा ऊपर से शिरोरेखा खींचने में जो समय लगता है वह रोमन में लिखते समय नहीं लगता है। जैसे wasundhara किंतु यहाँ इस बात पर भी विचार करने की आवश्यकता है कि 'वसुंधरा' केवल चार वर्ण का हिंदी शब्द है तो रोमन में इसे 10 वर्ण लगते हैं और लिखने के लिए जगह भी अधिक लगती है। ऐसे कई उदाहरणों द्वारा हम देवनागरी लिपि के समक्ष रही चुनौती पर विचार कर सकते हैं।

नगरी लिपि में वर्णों की अधिकता तथा उसे सीखने तथा टंकण मुद्रण आदि न में कठिनाई होती है। इस पर और अधिक व्यापक दृष्टि से विचार विमर्श हुआ है । साथ ही शिरोरेखा के प्रयोग से लेखन में अतिरिक्त श्रम पढ़ने की भी चर्चा होती रही है। संख्या की दृष्टि से रोमन में भले ही 26 वर्ण हो किंतु सिखाने वाले व्यक्ति को स्मॉल और कैपिटल ऐसे मिलकर 52 वर्णों को सिखाना पड़ता है किंतु देवनागरी की तुलना में रोमन में इस दृष्टि से सुलभता लाने का सफल प्रयास हुआ है। नागरी के वर्णो की अधिकता और लिखने के कई रूपों संबधी आवश्यक सुधार हुए है। वस्तुत: "नागरी के लेखन में बार-बार हाथ ऊपर उठाना पड़ता है, कभी मात्रा के प्रयोग के लिए,कभी शिरोरेखा देने के लिए, कभी अनुस्वार और चंद्रबिंदी लगाने के लिए और कभी विराम चिन्ह के लिए। इसलिए इसमें अधिक श्रम करना पड़ता है और गति मंद हो जाती है।"6

देवनागरी लिपि के सामने एक नई समस्या उभरकर आ रही है। विशेष रूप से सोशल मीडिया की भाषा की दृष्टि से हिंदी का प्रयोग तो किया जा रहा है किंतु लिखा रोमन में जा रहा है जैसे 'तुम कहां जा रहे हो' की जगह 'Tum kaha ja rahe ho' का प्रयोग किया जा रहा है। इतना ही नहीं तो कई किताबें भी इस तरह से प्रकाशित हो रही है। मैंने हाल ही में एनसीसी की एक किताब इसी तरह की देखी है। यह केवल हिंदी के लिए ही नहीं हो रहा है बल्की इस पर भारतीय प्रादेशिक भाषाओं के लिए भी चिंतन करने की आवश्यकता है। देवनागरी लिपि की दृष्टि से सामान्यतया ऐसा देखा गया है कि विज्ञान, अभियांत्रिकी और प्रौद्योगिकी शिक्षा से जुड़े लोग अंग्रेजी के

अलावा अन्य भाषा या हिंदी सीखने में कम रुचि लेते हुए दिखाई देते हैं। इस संदर्भ में विनोद कुमार प्रसाद कहते हैं कि "आधुनिक विज्ञान और अभियांत्रिकी में प्रयुक्त संकेत, सूत्र, प्रतीक इत्यादि यूरोपीय भाषा में ही है और वर्षों से तकनीकी शिक्षा का माध्यम .अंग्रेजी भाषा होने के कारण अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा प्राप्त अध्यापक के लिए अपने विषय का अध्यापन करना अपेक्षाकृत आसान होता है।" 7

राष्ट्रभाषा हिंदी और राष्ट्रलिपि देवनागरी के विकास में प्रांतियता की संकीर्ण मनोवृत्ति का भी परिणाम दिखाई देता है। विशेष रूप से दक्षिण भारत में चलाए गए हिंदी विरोधी आंदोलन और भारत के दलगत राजनीति का बुरा असर हिंदी भाषा एवं देवनागरी पर दिखाई देता है। हालांकि वर्तमान में इसमें काफी सुधार होता हुआ दिखाई दिया। फिर भी अन्य भाषा-भाषी को हिंदी भाषा सीखने-सिखाने की दृष्टि से और कई सुधार करने की आवश्यकता है। हिंदी भाषा के संदर्भ में तटस्थ विवेचन शक्ति का अभाव दक्षिण भारत में दिखाई देता है। इतना ही नहीं तो राष्ट्रीयतावादी उदार दृष्टिकोण का अभाव भी देवनागरीके लिए चिंतन का विषय रहा है। हम आज भी देवनागरी लिपि के ऐतिहासिक विकास क्रम से अनभिज्ञ रहे हैं। आज भी हम अपनी विशिष्टता प्रदर्शन करने के लिए अंग्रेजी भाषा एवं रोमन लिपि का प्रयोग करते हैं। हालांकि इस भाषा में उच्चारण एवं लेखन में जो भ्रम की स्थिति की चर्चा हुई है उस पर और अधिक चिंतन कर सर्व समावेशक रास्ता निकालने की आवश्यकता है। विशेष रूप से तकनीकी विषय विशेषज्ञ द्वारा तकनीकी लेखन की सुविधा निर्माण करनी चाहिए। जिसके अंतर्गत तकनीकी पाठ्य सामग्री शब्दावली और उसके प्रचलन पर भी विशेष ध्यान देना आवश्यक है।

अतःदेवनागरी लिपि श्रेष्ठतम और वैज्ञानिक लिपि के रूप में प्रतिष्ठित हो रही है। निरंतर विकसित और परिष्कृत देवनागरी में कई भाषाओं की ध्वनियों को लिपिबद्ध करने की क्षमता है। नागरी लिपि में हर ध्वनि के लिए अलग-अलग लिपि चिन्ह भी विद्यमान है फिर भी इसमें समयानुकूल और यथासंभव परिष्कार एवं परिवर्धन करने की आवश्यकता है। संयुक्त वर्णों की दृष्टि से, मात्राओं की दृष्टि से जो वर्ण के चारों ओर लगती है, जिसमें और अधिक परिष्कार करने की आवश्यकता है । विज्ञान एवं तकनीकी शिक्षा,कानून कृषि,औद्योगिक एवं सेवा क्षेत्र का समग्र कामकाज जो रोमन में होता रहा है इस दृष्टि से भी देवनागरी लिपि के सामने कई चुनौतियां दिखाई देती है। अतः आवश्यक परिष्कार एवं परिवर्धन के द्वारा हम देवनागरी को रोमन की तुलना में और अधिक समृद्ध एवं संपन्न लिपि बना सकते हैं।

संदर्भ:

1)देवनागरी लिपि तथा हिंदी वर्तनी का मानकीकरण- केंद्रीय हिंदी निदेशालय, पृ.सं 01

2)हिंदी भाषा का उद्गम और विकास-उदय नारायण तिवारी, पृ.सं 440 .

3)हिंदी भाषा और देवनागरी लिपि-डॉ लक्ष्मी लाल वैरागी, पृ .सं 121 .

4)भाषा और प्रौद्योगिकी - डॉ.विनोद कुमार प्रसाद, पृ.सं 318.

5)हिंदी भाषा और देवनागरी लिपि -डॉ लक्ष्मी लाल वैरागी, पृ.सं140 .

6)हिंदी भाषा और देवनागरी लिपि -डॉ लक्ष्मी लाल वैरागी, पृ.सं 125 .

7)भाषा और प्रौद्योगिकी -डॉ.विनोद कुमार प्रसाद पृ.सं 289 .

मालवी बोली और हमारा समाज

डॉ. अशोक बैरागी 'एबी'

सहा. प्राध्यापक (हिन्दी विभाग) श्री शिवनारायण उदिया शासकीय महाविद्यालय, गरोठ ४५८८८० (म.प्र.) मो. 8878635259] av.bairagi@gmail.com

सारांश

मालव, गुजरात, राजस्थान एवं महाराष्ट्र आदि प्रदेशों की एक ही भाषा रही। आधुनिक भाषाओं की प्रेरणास्त्रोत एक ही है, इसमें कोई सन्देह नहीं। प्रदेशगत भेद तो कालान्तर में विकसित हुए। गुजरात के सुप्रसिद्ध साहित्यकार कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी ने गुर्जर प्रदेश की आद्य भाषा के संबंध में विचार प्रकट करते हुए मालवी की भाषा के लिए भी यही अभिमत प्रकट किया है कि राजपूताना, मालवा और आधुनिक गुजरात में बसने वाले लोग एक ही संस्कृति और परम्परा से आबद्ध थे एवं एक ही प्रकार की भाषा का प्रयोग करते थे। यह स्थिति ह्वेनत्सांग के समय से अर्थात छठी शताब्दी से १३०० तक बनी रही। जब पश्चिमी राजस्थानी और स्वर्गीय दिवेहिया के शब्दों में गौर्जरी अपभ्रंश का प्रारंभ हुआ इसके पश्चात ही आधुनिक काल की गुजराती, मालवी और जयपुरी के रूप अलग हुए। मालवी का समाज भाषा के रूप में अध्ययन करना मालवी बोली को एक विशिष्टता प्रदान करता है। किसी भी बोली या भाषा का समाज से बहुत गहरा संबंध होता है। किसी बोली या भाषा का अध्ययन करना है, तो उस बोली के समाज का अध्ययन भी करना पड़ेगा। मनुष्य भाषा का व्यवहार स्वयं से ही बातचीत करने के लिए नहीं करता। मूलतः भाषा एक से अधिक मनुष्यों के बीच बातें कहने-सनुने का साधन है। इसलिए एक ही व्यक्ति जीवन की विभिन्न अवस्थाओं में अपनी बोली में चाहे जितने परिवर्तन करे। जिस समाज में वह रहता है उसमें उसकी बोली समझ ली जाती है। इसी तरह वह दूसरों की बोली समझ लेता है। इसलिए महत्व व्यक्ति द्वारा व्यवहृत बोली का नहीं है। समुदाय द्वारा व्यवहृत बोली का है, जैसे भाषा का व्यवहार करते समय मनुष्य जब ध्वनियों से काम लेता है, तब अपनी बात कहने और दूसरों की बात समझने के लिए इन ध्वनियों के सभी भौतिक लक्षण उपयोगी नहीं होते। वह उनमें कुछ लक्षणों पर ही ध्यान देता है, जो सामाजिक स्तर पर आदान-प्रदान के लिए महत्वपूर्ण होते हैं। जैसे ही व्यक्तिगत स्तर पर वह भाषा में जो भी परिवर्तन करता है वह महत्वपूर्ण नहीं होता। महत्वपूर्ण वह परिवर्तन होता है जो सामाजिक स्तर पर भाषा के बोलने वाले समुदाय के लिए आवश्यक होता है।

भाषा मनुष्य का एक बहुत आवश्यक गुण है, भाषा मुनष्य का धन है, भाषा क्के बिना मनुष्य मिट्टी का पुतला है, जो समाज और संसार के किसी विशेष काम का नहीं। भाषा मनुष्य की मनुष्यता का ही एक रूप है। मनुष्य जाति किसी कारण से अपनी भाषा को भूल जाए तो संसार के तमाम काम एकदम बंद हो जाए और ईश्वर की मानव सृष्टि एकदम उथल-पुथल हो जाए। श्पशु पक्षी भी बोलते है, परन्तु उनकी बोली को हम भाषा नहीं कहते है। बालक की भी शुरू-शुरू की बोली को, जो हँसने रोने की कुछ ध्वनियों के अतिरिक्त कुछ नहीं होती हम भाषा नहीं कहते।श मालवी बोली की भी अपनी एक विशेषता है, जो इसे समाज भाषा वैज्ञानिक रूप प्रदान करती है। वर्तमान में जिस समाज भाषा विज्ञान की चर्चा की जाती है वह समाजशास्त्र और भाषा विज्ञान के मात्र न तो अवमिश्रण का परिणाम है और वह न ही सामाजिक व्यवस्था और भाषिक व्यवस्था की कोई संकल्पना है। वह यह मानकर चलता है कि भाषा समाज सापेक्ष प्रतीक व्यवस्था है और इस प्रतीक व्यवस्था के मूल में ही सामाजिक तत्व निहित रहते हैं।

मालवी में किसी एक व्यक्ति के लिए कहते हैं- 'आप अंई आई जाओ' तो दूसरे व्यक्ति के लिए कहते हैं कि- 'तू अईं आ'। किसी सम्मानीय या आदरणीय व्यक्ति के लिए 'आप' का प्रयोग करते हैं, जबकि किसी निम्न वर्ग या छोटे बच्चों के लिए 'तू' शब्द का प्रयोग किया जाता है। निम्न वर्ग में जैसे- धोबी, तेली, चमार, बलई, भंगी के लिए अलग-अलग बोली का प्रयोग करते हैं, जबकि उच्च वर्ग के लिए अलग।

शुद्ध भाषा विज्ञान के भाषा विश्लेषण की महत्तम इकाई वाक्य होता है। अतः वह भाषा को एकालाप की तरह देखता है। समाज भाषा विज्ञान में विश्लेषण की महत्तम इकाई शाब्दिक घटना या प्रोक्ति होती है, क्योंकि

वह भाषा के मूल में वार्तालाप की सत्ता स्वीकार करता है। वह यह जानता है कि मनुष्य केवल बोलने वाला पशु न होकर बातचीत करने वाला प्राणी है। यह कहा जा सकता है कि जिस प्रकार वाक्य व्याकरण की सार्थक इकाई है, उसी प्रकार शाब्दिक घटना सम्प्रेषण व्यवस्था की सार्थक इकाई है। शुद्ध भाषा विज्ञान केवल कथ्य एवं अभिव्यक्ति के संबंधों का अध्ययन करता है। अतः उसकी सीमा व्याकरण है। वह व्याकरण के आधार पर यह पता लगाता है कि भाषा की प्रकृति क्या है।

मालवी बोली और समाज का अध्ययन करने के लिए प्रोक्ति विचार करना आवश्यक है। भारत के लिए प्रोक्ति की संकल्पना बिल्कुल नयी नहीं है। श्विष्वनाथ के साहित्य दर्पण में महावाक्य प्रायः इसी को कहा है।२ प्रोक्ति तर्कपूर्ण, कर्मयुक्त और आपस में आंतरिक रूप से संबद्ध एकाधिक वाक्यों की ऐसी व्यवस्थित इकाई को प्रोक्ति कहते हैं, जो सन्दर्भ विशेष में अर्थद्योतन की दृष्टि से पूर्ण हो।

संवाद के द्वारा मालवी का अध्ययन प्रोक्ति के आधार पर किया गया है। वाक्यों की सुसम्बद्ध ऐसी इकाई को प्रोक्ति कहते है, जो अर्थ की दृष्टि से पूर्ण हो प्रोक्ति में प्रायः एकाधिक वाक्य होते हैं, किन्तु कभी-कभी एक वाक्य की भी प्रोक्ति होती है। इसी तरह अनेक लोकोक्तियों जैसे- 'एक ओर एक इग्यारा वे' या 'एक हाथ ती ताली नी वाजे', 'सच कड़वो रे', लोड़ा ती लोड़ो कटे' आदि की एक-एक वाक्यीय प्रोक्ति होती है। यही स्थिति सार्वभौम सत्य को व्यक्त करने वाले वाक्यों की भी होती है। उदाहरणार्थ- दन मराज पूरब में ती निकेल, दो ओर दो चार वे, आदि।

प्रोक्ति के वाक्य ऊपरी तौर पर सुसम्बद्ध हो या नहीं। आंतरिक रूप में अवश्य सुसम्बद्ध होते हैं। यों सामान्यतः तो प्रोक्ति के वाक्य तो बाह्यतः भी आपस में सम्बद्ध होते हैं। किन्तु कभी-कभी ऐसे उदाहरण भी मिलते हैं, जब वाक्य आपस में ऊपरी तौर पर बिल्कुल भी जुड़े नहीं होते। जैसे- दन मराज डूबीरिया है, आसमान लाल है, जानवर दन भर बाने चरी ने घरे आईरिया है। इसे प्रोक्ति में तीनों वाक्य बाहर से अलग-अलग है। किन्तु भीतर से जुड़े है। क्योंकि सभी अपने-अपने ढंग से एक ही बात 'सांझ वईगी है' को ध्वनित कर रहे हैं।

भाषा या बोली के अध्ययन की दो स्पष्ट दृष्टियाँ उभरकर सामने आई हैं। एक दृष्टि भाषा का अध्ययन भाषा के लिए या बोली बोली के लिए के आधार पर करती है। उसका लक्ष्य बोली की अपनी आंतरिक व्यवस्था पर प्रकाश डालना है। वह अपने अध्ययन को केवल इस प्रश्न से जोड़ती है कि बोली स्वयं में है क्या? इस दृष्टि से बोली को सम्प्रेषण व्यवस्था का एक अन्यतम साधन मानती है। अतः वह बोली का अध्ययन बोली के लिए के आधार पर नहीं करती। वह सम्प्रेषण के लिए बोली के अध्ययन करने के पक्ष में है। इस दृष्टि के अनुसार सम्प्रेषण व्यवस्था का अन्यतम उदाहरण बोली और समाज के अंतःसंबंधों को देखने की दो प्रमुख दृष्टियाँ हैं। एक दृष्टि का संबंध बोली का समाजशास्त्र से है और इसी बोली का संबंध समाजोन्मुखी बोली विज्ञान से है।

बोली भाषा विज्ञान ने भाषा रूप और उसके प्रयोग संदर्भों को घात-प्रतिघात के रूप में स्वीकार किया। और यह दिखलाने का प्रयास किया कि किसी एक सामाजिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए किसी एक से अधिक बोली रूपों का प्रयोग संभव है। उसने व्याकरणिकता के अतिरिक्त औचित्य और स्वीकार्यता के अभिलक्षणों की चर्चा करते हुए अनुपातिक क्रमिकता की संकल्पना को प्रस्तुत किया। शिष्टाचार की विनम्र अभिव्यक्ति के संदर्भ में कुछ वाक्य-

(१) छोरां ती अईस्तर वगाड्यो नी जावे। (कर्मवाच्य)
(२) छोरां ती अईस्तर नी वगाड़नो। (सामान्य वर्तमान)
(३) छोरां ती अईस्तर नी वगाड़ा करे। (क्रिया न करना)
(४) छोरां ती अईस्तर नी वगाड़े। (इच्छार्थक)
(५) छोरां ती अईस्तर मत वगाड़ो। (आज्ञार्थक)

मानवशास्त्र समाज की भूतकाल की सभ्यता एवं संस्कृति को लेकर चलता है, तो समाजशास्त्र वर्तमान समाज की सभ्यता एवं संस्कृति का विश्लेषण करता है। लोकवार्ता दोनों ही के अध्ययन का एक अंग बन जाता है। समाजशास्त्र एक विषय सामाजिक मानवशास्त्र में लोकवार्ता का अध्ययन भी प्रमुख रूप से किया जाता है। श्आदिकालीन मौखिक साहित्य का अध्ययन करते समय समाजशास्त्री लोककथाओं का अध्ययन किए बिना नहीं रह सकते। इसी प्रकार समाजशास्त्र का भी लोकवार्ता से घनिष्ठ संबंध है।२

समाज का बोली के साथ घनिष्ठ संबंध है। बोली के समाजशास्त्रीय अध्ययन में बोली के इसी गुण का अध्ययन किया जाता है। बोली भाषा विज्ञान में मात्र सामान्य वाक्यपरक अर्थ को ही अध्ययन विश्लेषण का विषय नहीं बनाया जाता। वाक्यपरक अर्थ का समन्वय उस वाक्य के साथ रहता है। जिसे वक्ता की बोली की शाब्दिक व्यवस्था के रूप में व्यक्त एवं सम्प्रेषित करता है। उदाहरण के लिए-'काले आजो' का शाब्दिक अर्थ काले और आज क्रिया के संभावार्थक बहुवचन संयोग से बने वाक्यार्थ तक सीमित माना जाएगा। इसके विपरित वाक्यों उक्तिपरक अर्थ होता है। जिसका संबंध वक्ता के उस अभिप्रेत से रहता है, जिसे वह श्रोता तक सम्प्रेषित करना चाहता है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि व्यापक अर्थ की दृष्टि से असंदिग्ध होते हुए भी उक्तिपरक अर्थ के स्तर पर वाक्य अनेकार्थी उदाहरण के लिए आएगा। यही वाक्य प्रयोग लें- 'काले आजो' तो इस उक्तिपरक अर्थ की दृष्टि से इसके तीन अर्थ संभव है-

(१) म्हारी थाँसे विनती है कि आप) काले आजो।
(२) म्हारी मरजी है कि आप) काले आजो।
(३) कई वई सके कि आप) काले आवो।

यहाँ बाहरी स्तर पर एक सा दिखने वाला यह वाक्य (काले आजो) अभ्यंतर स्तर पर तीन विभिन्न प्रकार की संरचना की ओर संकेत करता है। शाब्दिक अर्थ और उक्तिपरक अर्थ के अतिरिक्त वाक्य का अंतर्वैयक्तिक अर्थ भी होता है। जिसका संबंध सामाजिक अर्थ के उस पक्ष से रहता है। जिससे यह पता चलता है कि बोलने वाले के बीच के सामाजिक संबंध की प्रवृत्ति क्या है। बोलने वाले की दृष्टि कथन के प्रति क्या है आदि। उदाहरण के लिए- काले आजो के शाब्दिक अर्थ को समान रूप से बनाए रखकर अंतर्वैयक्तिक अर्थ को भिन्न बता सकते है- (१) काले आईएगा, (२) काले आओ, एवं (३) काले आ।

मालवी का समाज भाषा के रूप में अध्ययन करना मालवी बोली को एक विशिष्टता प्रदान करता है। किसी भी बोली या भाषा का समाज से बहुत गहरा संबंध होता है। किसी बोली या भाषा का अध्ययन करना है, तो उस बोली के समाज का अध्ययन भी करना पड़ेगा। मनुष्य भाषा का व्यवहार स्वयं से ही बातचीत करने के लिए नहीं करता। मूलतः भाषा एक से अधिक मनुष्यों के बीच बातें कहने-सनुने का साधन है। इसलिए एक ही व्यक्ति जीवन की विभिन्न अवस्थाओं में अपनी बोली में चाहे जितने परिवर्तन करे। जिस समाज में वह रहता है उसमें उसकी बोली समझ ली जाती है। इसी तरह वह दूसरों की बोली समझ लेता है। इसलिए महत्व व्यक्ति द्वारा व्यवहृत बोली का नहीं है। समुदाय द्वारा व्यवहृत बोली का है, जैसे भाषा का व्यवहार करते समय मनुष्य जब ध्वनियों से काम लेता है, तब अपनी बात कहने और दूसरों की बात समझने के लिए इन ध्वनियों के सभी भौतिक लक्षण उपयोगी नहीं होते। वह उनमें कुछ लक्षणों पर ही ध्यान देता है, जो सामाजिक स्तर पर आदान-प्रदान के लिए महत्वपूर्ण होते हैं। जैसे ही व्यक्तिगत स्तर पर वह भाषा में जो भी परिवर्तन करता है वह महत्वपूर्ण नहीं होता। महत्वपूर्ण वह परिवर्तन होता है जो सामाजिक स्तर पर भाषा के बोलने वाले समुदाय के लिए आवश्यक होता है।

कुछ समाजशास्त्री पहले समाजी भाषा विज्ञान की ओर झूके फिर उन्होंने उसे अपूर्ण समझकर भाषा के समाजशास्त्र का नाम देकर विवेचन को अधिक व्यापक और तार्किक बनाने का प्रयत्न किया। फिशमैन ने इस विषय की एक पुस्तक दो खण्डों में सम्पादित की है, जिसका नाम है 'एडवान्सेज इन द सोशयोलोजी ऑफ लैंग्वेज'। इसकी भूमिका में उन्होंने इस बात की कैफियत दी है कि श्सोशियोलिंग्विस्टक की जगह सोशयोलोजी लैंग्वेज का व्यवहार करना क्यों अधिक उपयुक्त है। उनका कहना है कि समाजी भाषा विज्ञान शब्द से ही काम चल जाएगा। लिंग्विस्टिक में अलग से सोशयो जोड़ने की आवश्यकता नहीं है।श फिशमैन के मत से जिन लोगों ने समाजी भाषा विज्ञान का नामाकरण संस्कार किया था। वही अब उसे निरस्त कर रहें हैं या आगे कर देंगे। पर समाजशास्त्र के निरस्त होने का प्रश्न नहीं। अतः भाषा का समाजशास्त्र नाम चलेगा। भाषा के समाजशास्त्र ने इस बात पर जोर दिया है कि भाषा विज्ञान और समाजशास्त्र इन दोनों विज्ञानों को मिलकर काम करना चाहिए। यह धारणा स्वागत योग्य है।

अवंतिजा जिस प्रकार संस्कृत शब्द से शिष्ट समाज की भाषा का भाव ध्वनित होता है प्राकृत को साधारण जन की भाषा कहा गया है। भरतमुनि ने सात प्राकृतों का उल्लेख किया है। सम्भवतः वे बोलियाँ मात्र थी। साहित्यिक ग्रंथों में प्रयुक्त होने के कारण उनका स्वरूप भी प्रवरूद्ध हो गया था और जन भाषाओं से मानों उनका संबंध टूटता गया। मध्यकाल की प्राकृतों का समय प्रथम शताब्दी ईस्वी से प्रारंभ होता है।

वैयाकरणों ने इन भाषाओं पर कुछ विचार भी किया है। श्वररूचि ने प्राकृत क केवल चार ही भेद माने महाराष्ट्री, पैशाची, मागधी और शौरसेनी। भरत को छोड़कर अवन्तिजा का उल्लेख किसी भी लेखक ने नहीं किया और संस्कृत के नाटकों में जो प्राकृत के विभिन्न रूपों का प्रयोग मिलता है वह भी कृत्रिम ही लगता है।१ मृच्छकटिकम नाटक में विदूषक प्राच्य भाषा का प्रयोग करता है, तो विरक अवन्ती का। किन्तु इस संदर्भ में अवन्ती प्राकृत का स्वरूप स्पष्ट नहीं हो पाता। स्टेन फोर्ड ने पालि और पैशाची के सादृश्य की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए पैशाची प्राकृत को उज्जैन की बोली बतलाया है। इस मत से निःसंदेह भाषा शास्त्रीयों के सम्मुख एक नवीन समस्या खड़ी होती है कि पैशाची का आदि गृह उज्जैन को कैसे माना जावे।

जिस समय अपभ्रंश के आँचल को छोड़कर उत्तर भारत की वर्तमान भाषाओं का जन्म हो रहा था। उस समय मालव, गुजरात, राजस्थान एवं महाराष्ट्र आदि प्रदेशों की एक ही भाषा रही। आधुनिक भाषाओं की प्रेरणास्त्रोत एक ही है, इसमें कोई सन्देह नहीं। प्रदेशगत भेद तो कालान्तर में विकसित हुए। गुजरात के सुप्रसिद्ध साहित्यकार कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी ने गुर्जर प्रदेश की आद्य भाषा के संबंध में विचार प्रकट करते हुए मालवी की भाषा के लिए भी यही अभिमत प्रकट किया है कि राजपूताना, मालवा और आधुनिक गुजरात में बसने वाले लोग एक ही संस्कृति और परम्परा से आबद्ध थे एवं एक ही प्रकार की भाषा का प्रयोग करते थे। यह स्थिति ह्वेनत्सांग के समय से अर्थात छठी शताब्दी से १३०० तक बनी रही। जब पश्चिमी राजस्थानी और स्वर्गीय दिवेहिया के शब्दों में गौर्जरी अपभ्रंश का प्रारंभ हुआ इसके पश्चात ही आधुनिक काल की गुजराती, मालवी और जयपुरी के रूप अलग हुए।

इस प्रसंग में डॉ. सुनीतिकुमार चटर्जी के परस्पर विरोधी दो मत भी विचारणीय है। एक तो यह कि पश्चिमी या शौरसेनी अपभ्रंश शूरसेन या मध्यप्रदेश की चालू बोली के आधार पर मुख्यतया बनी थी। उनके अनुसार इधर पंजाब, राजस्थान तथा गुजरात की ओर उधर कौशल की अपभ्रंश या अंतिम युग की प्राकृत का उस पर प्रभाव पड़ा था। डॉ. चटर्जी का दूसरा मत है कि शौरसेनी अपभ्रंश प्रारंभ में किसी खास प्रांत की अधिकृत लौकिक कथ्य या चालू भाषा नहीं थी। यह भाषा मुख्यतः गुजरात, राजस्थान, अन्तर्वेद तथा पंजाब में प्रचलित बोलियों के आधार पर स्थापित एक मिश्रित भाषा थी। डॉ. चटर्जी तथा के. एम. मुंशी की मान्यताओं से एक बात स्पष्ट हो जाती है कि मालवी का सीधा संबंध किसी एक अपभ्रंश भाषा से अवश्य है। उसको राजस्थानी के अन्तर्गत एक उपभाषा या बोली नहीं मान सकते। इस कथ्य की गहराई में जाने के लिए अपभ्रंश एवं प्राकृत के वैयाकरणों द्वारा प्रस्तुत सामग्री का विश्लेषण कर लेना आवश्यक है।

मार्कण्डेय एवं 'कुवलयमाला कथा' के रचयिता उद्योतन सूरी ने जिस अपभ्रंश भाषा एवं उसके उपभेदों का विवरण प्रस्तुत किया है। वह लोकभाषा का विकसित रूप है। मार्कण्डेय ने अपभ्रंश के तीन भेद नागर, उपनागर, और ब्राचड़ के अतिरिक्त लगभग २७ विभिन्न बोलियों के नाम भी गिनायें है। उनमें अवन्त्य और मालव को दो भिन्न रूपों में स्वीकार किया है। कुवलयमाला-कार ने एक कथा का मालवी में प्रयुक्त होने का उल्लेख भी किया है, किन्तु इन प्रमाणों का भाषा के लिखित साहित्य के अभाव में कोई महत्व नहीं है।

आधुनिक भाषा शास्त्रीयों ने स्थूल रूप से हिन्दी की विभिन्न बोलियों अथवा उपभाषाओं को क्षेत्रीय आधार पर पूर्वी हिन्दी और पश्चिमी हिन्दी इन दो भागों में विभाजित कर पुराने पंडितों की तरह भाषाओं के अनेक भेद, उपभेद, और विभेद प्रस्तुत किये हैं। मालवी का भाषा विज्ञान की दृष्टि से सर्वप्रथम अध्ययन डॉ. ग्रियर्सन ने सन् १९०७-०८ के लगभग प्रस्तुत किया। सम्पूर्ण भारत की विभिन्न भाषा और बोलियों के अध्ययन का यह कार्य अपने आप में एक विशिष्ट आयोजन था।

अतः मालवी के विभिन्न भेदों और उपभेदों का व्यापक विस्तृत अध्ययन करना उस समय सम्भव नहीं था। फिर भी डॉ. ग्रियर्सन ने मालवी का जो अध्ययन प्रस्तुत किया उससे प्रेरणा पाकर, मागदर्शन लेकर मालवी के वैज्ञानिक अध्ययन का मार्ग अधिक प्रशस्त ही हुआ है। भाषा के अध्ययन के क्षेत्र में तुलनात्मक एवं विवरणात्मक पद्धति को प्रारंभ करने की दृष्टि से ग्रियर्सन महोदय का यह प्रयास महत्वपूर्ण कहा जाएगा। संक्षिप्त में मालवी के संबंध में उनके द्वारा प्रस्तुत किए गए अध्ययन का सार-श्मालवी- वास्तविक अर्थ में मालवी मालवा की भाषा है, जिस क्षेत्र की यह भाषा है उस क्षेत्र की सीमाओं का यह सही विवरण प्रस्तुत करती है। मालवी का क्षेत्र विस्तार- यह मालवा के पठार में बोली जाती है। अर्थात इन्दौर, भोपाल, भोपावर और मध्यभारत क्षेत्र के पश्चिमी मालवा की ऐजेंसी के क्षेत्र भी इसमें सम्मिलित है। पूर्व में इसका विस्तार ग्वालियर ऐजेंसी के दक्षिण-पश्चिम भाग एवं राजपूताना के संलग्न भाग कोटा तक पाया जाता है।२

(१) मेवाड़ की पूर्वी सीमा पर स्थित टोंक रियासत में निम्बाहेड़ा परगने में यह बोली जाती है। भौगोलिक दृष्टि से यह भाग पश्चिमी मालवा का है।

(२) नर्मदा को पार कर होशंगाबाद जिले के पश्चिमी भाग में एवं बैतूल जिले के उत्तरी क्षेत्र में विकृत रूप में बोली जाती है। छिंदवाड़ा और चांदा की कुछ जातियों में भी इसका प्रचलन है। इस तरह मालवी मालवा प्रदेश के अलावा स्थानीय क्षेत्रों पर भी अपना प्रभाव बनाये हुए है।

समाज में मालवी की स्थिति जानने के लिए उसकी बोली में बोले गये वाक्यों का समाज भाषा विज्ञान के आधार पर बोलने की प्रवृत्ति का अध्ययन आवश्यक होता है। जिसमें भाषा विज्ञान के विभिन्न अंगो यथा- वाक्य विज्ञान, ध्वनि विज्ञान, रूप या पद विज्ञान, अर्थ विज्ञान, शब्द विज्ञान एवं प्रोक्ति के आधार पर अध्ययन किया जाना चाहिए।

मालवी में हिन्दी के प्रत्यय, उपसर्ग, कारक, विभक्तियाँ, स्वर, व्यंजन, शब्द के प्रकार, संज्ञा, सर्वनाम आदि जैसे के तैसे मिलते दिखाई देते हैं, पर कुछ विशेष शब्दों के मालवी में होने से उपर्युक्त व्याकरण प्रकारों में मालवी भिन्नता लेते हुए प्रकट होती है। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि मालवी की अन्य भाषा बोलियों से समानता होते हुए भी अपनी अस्मिता है।

संदर्भ ग्रंथ

1. आर्य भाषा और संस्कृति, रामकुष्ण शुक्ल, त्रिसत्य ब्रदर्स पब्लिशर्स, इलाहबाद, सन् १९६०, पृष्ठ क्रमांक ०३
2. भाषा विज्ञान, डॉ. भोलानाथ तिवारी, किताब महल प्रकाषन, इलाहाबाद, सन् २००९, पृष्ठ क्रमांक २१४
3. भारतीय संस्कृति और हिन्दी प्रदेष, डॉ. रामविलास शर्मा, किताबघर प्रकाषन, दिल्ली, सन् २००९, पृष्ठ क्रमांक ६२१
4. लोक साहित्य के प्रतिमान, कुन्दनलाल उप्रेती, भारत प्रकाषन मंदिर, अलीगढ, सन् १९७१, पृष्ठ क्रमांक २९
5. भाषा और समाज, डॉ. रामविलास शर्मा, राजकमल प्रकाषन, दिल्ली, पृष्ठ क्रमांक १०
6. भाषा और समाज, डॉ. रामविलास शर्मा, राजकमल प्रकाषन, दिल्ली, सन् २००८, पृष्ठ क्रमांक ४८
7. मालवी का भाषा शास्त्रीय अध्ययन, डॉ. चिंतामणि उपाध्याय, मंगल प्रकाषन, जयपुर, सन् १९६०, पृष्ठ क्रमांक ०९
8. लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया, डॉ. जॉर्ज ए. ग्रियर्सन, ग्रंथ ९ भाग २, राजस्थानी जयपुर, पृष्ठ क्रमांक ५२

राष्ट्रभाषा हिंदी चिंतन औरचुनौतियां

विजय पाटिल

(शिक्षक सहसाहित्यकार) उच्च.माध्य.विद्या.गवाड़ी जिला बड़वानी, मप्र 9407170999

Email patilvijay43053@gmail.com

प्रस्तावना :__

हिंदी भाषा में चुनौतियां कम नहीं है। वैचारिक ,राजनीतिक, आर्थिक ,भाषिक या आर्थिक हो लेकिन साथ में सृजनात्मक और वैचारिक चुनौती भी है ।अगर उसमें गंभीर चिंतन नहीं होगातो भाषा खत्म हो जाएगी। चाहे कोई भी हो हिंदी खुद में पूरी संपूर्ण भाषा है ।हर साल हिंदी भाषा हिंदी दिवस के अवसर पर इसकी दशा और दिशा पर चिंतन किया जाता है ।हिंदी भाषा को राष्ट्रभाषा का दर्जा मिलना चाहिए हिंदी की चुनौतियां भी सोशल मीडिया हो या पत्रकारिता सिनेमा हो या साहित्य हर जगह हिंदी का प्रयुक्त बड़ा है। लेकिन इसकी गंभीरता और शोध की गुणवत्ता घटी भी है। हिंदी कई सारी भाषा बोलियां से मिलकर बनी है ,जिसे हम खड़ी बोली कहते हैं। यह गद्य या पद्य नवजागरण काल की देन है।

ध्यान देने योग्य बात है कि दुनिया की किसी भी भाषा की उम्र हजार वर्षों से कम नहीं है, लेकिन डेढ़ सौ वर्षो में हिंदी की जो यात्रा है वह कमाल की है। उसने अपनी सृजनात्मता में लेखन, में विचार में जो यात्रा तय कर ली है वह अद्‌भुत है ।हिंदी की चुनौतियां जो है वह भूमंडलीकरण उसकी संस्कृति थी उसकी पूंजी और मीडिया है ।जो अंग्रेजी का वर्चस्व है ,वह भी चुनौती है। अध्यापन और शोध का स्तर लगातार गिर रहा है इन सभी चीजों पर आपको नजर रखनी होगी हिंदी वालों को अपने साहित्य और भाषा के प्रति प्रेम करना पड़ेगा। अभी हिंदी के प्रति ईमानदारी से पेश आए तो हिंदी का वर्चस्व ओर आगे बढ़ेगा।

***राष्ट्रभाषा हिंदी की विभिन्न चुनौतियां:**____*हिंदी में स्त्री रचना में ,स्त्री अनुभव, स्त्री स्वर ,स्त्री दृष्टि का अपना महत्व है। लेकिन असली चुनौती इस समाज की अंतर्वृति जटिलताओं की पहचान करने की है ।जो है उससे अधिक महत्वपूर्ण सामाजिक प्रक्रिया को अनावृत्त करना जो उसे समाज के ऐसा होने के लिए उत्तरदाई है। पितृ सत्ता और उसका विरोध जितना बड़ा सत्य होता है उससे बड़ा सत्य समाज का वह ढांचा है जो पितृ सत्ता मातृ सत्ता जैसे वर्चस्व को मूलतः बनाता है। हिंदी को तकनीकी भाषा के रूप में उपयोग करने में कठिनता, भारतीय भाषाएं ,हिंदी कलाओं को भी तकनीक क्षेत्र में उपयोग करने में अनुपयुक्त देखा गया है।। जो की एक चुनौती है अतः पश्चिमी भाषाओं का उपयोग भाषा शब्द एवं प्रभाव तकनीक क्षेत्र में प्रयोग किया जाता है। उनका कारण वह हिंदी अनुवाद कठिनता की एक बड़ी चुनौती है। अंग्रेजी भाषा की चुनौती, वैश्वीकरण की दौड़ में अंग्रेजी का प्रभाव पड़ता जा रहा है। यह एक तकनीकी भाषा के रूप में विश्व के सभी भाषा को चुनौती दे रही है। इसके अलावा भारत के राजकीय भाषा अंतर्राष्ट्रीय एवं अन्य भाषा के रूप में भी इसका उपयोग बढ़ता जा रहा है ।अन्य क्षेत्र भाषाओं की भावनाओं का असर जब भी हिंदी को राष्ट्रभाषा दर्जा देने की कोशिश की गई इसका व्यापक राजनीतिक विरोध किया गया क्योंकि क्षेत्रीय भाषा एक संविधान से जुड़ा मुद्दा है ।और लोगों की भावनाओं से जुड़ा हुआ है ।हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने के लिए उसकी स्वीकारता को बढ़ाना होगा मीडिया एवं फिल्म द्वारा प्रोत्साहन देशव्यापीइलेक्ट्रॉनिक मीडिया के विस्तार में देश को हिंदी के कोने-कोने में उसे आसानी से पहुंचा दिया है। उसके व्यक्तिगत स्वीकारता को बढ़ाने का काम किया है इंटरनेट तकनीकी द्वारा चुनौतियां इंटरनेट एवं तकनीकी उपयोग में अधिकतर अंग्रेजी भाषा एवं अन्य भाषा का उपयोग तेजी से बढ़ रहा है ।जिससे हिंदी का प्रभाव कमतर हो रहा है सामाजिक कार्यों में हिंदी की उपेक्षा हमारे देश में जहां जनता की अधिकतर हिंदी जानती पड़ती बोलती है ।सामाजिक कार्य में हिंदी की जगह अंग्रेजी में कार्य करने का प्रचलन अधिक है। देश में तकनीकी और आर्थिक समृद्धि के साथ-साथ अंग्रेजी पूरे देश पर हावी होते जा रही है। हिंदी को संविधान में राज्य भाषा का दर्जा प्राप्त है ।हिंदी को दुनिया में लोग पढ़ते और समझते हैं।

राष्ट्रभाषा हिंदी की समस्या और समाधान :___

आज हिंदी की वर्तमान दशा या दुर्दशा का एक महत्वपूर्ण कारण सरकार की भाषा नीति भी है ।इसके कारण यह हिंदी का सरकारीकरण हुआ है ।और मात्र अनुवाद की भाषा बनकर रह गई है ।सरकार जिस रूप में हिंदी को लाने और लागू करने की कोशिश कर रही है वह भाषा के स्वाभाविक विकास प्रक्रिया के अनुकूल नहीं है। राष्ट्र को

मजबूत बनाने के लिए राष्ट्रभाषा हिंदी के प्रति उपेक्षा पूर्ण व्यवहार त्यागना पड़ेगा ।उसे सक्षम बनाने के लिए शासक वर्ग एवं भारतीय जनता का सम्मिलित सहयोग अपेक्षित है। हिंदी के प्रति आदर्शवादी दृष्टिकोण स्थान पर व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाया जाए की हिंदी केवल कागजों पर ही राष्ट्रभाषा बनकर रह गई है ।स्वतंत्रता के पश्चात हिंदी को शुद्ध करने एवं संपूर्ण भाषा बनाने के उत्साह में उसका संस्कृतिकरण आरंभ हो गया। सामान्य उपयोग के शब्द जो विभिन्न लोग अन्य भाषाओं एवं उर्दू से लिये गए थे ।उनका तिरस्कार किया जाने लगा जिससे हिंदी की कठिनाई बढ़ती गई ।और वह सामान्य लोगों की जन भाषा से दूर होती गई इसका लाभ अंग्रेजी भाषा ने उठा लिया। हिंदी भाषा का क्रियान्वयन पूरी पारदर्शिता एवं ईमानदारी के साथ किया जाए यह संपूर्ण भारतवर्ष के लिए विधिक अपरिहर्ता हो ।सभी विद्यालय चाहे वह परदेसी हो अथवा कॉन्वेंट अंग्रेजी के अध्यापन का सभी मे समान स्तर विकसित हो। सभी भारतीय भाषाओं को संविधान के आठवीं अनुसूची में डालकर विधि मान्य कर दिया जाए ।भारत के अंदर सभी वैज्ञानिकों, दार्शनिकों ,कलाकारों, बुद्धिजीवियों ,राष्ट्रीय चेतनाओं के मध्य परस्पर विचार से विमर्श एवं संप्रेषण संभाषण हिंदी में हो ।जिससे स्पष्टता के साथ एक स्वतंत्रता भी बनी रहे हिंदी को सभी प्रति के अंतर संबंधों एवं अंतर्देशीय पत्राचारों एवं संबंधों का व्यवहार पत्राचार हिंदी में हो। अंग्रेजी को रोजगार मूलक, अभिजात मूलक एवं विद्वता मूलक स्थिति से हटाया जाए। हिंदी राष्ट्र के गौरव का प्रतीक है।हिंदी के विकास में सभी भारतीयों को सहयोग देना चाहिए। हिंदी किसी प्रांत जाति अथवा संप्रदाय की भाषा नहीं है। यह विकसित और समृद्ध भाषा है और उसके रहते प्रांतीय भाषाओं का विकास ही होगा।

निष्कर्ष*

विश्व के 160 देशों में हिंदी देसी, विदेशी लोगों के बीच में भारतीय सभ्यता और संस्कृति के प्रति अपना प्रभाव को जगा रही है। हमारे लिए यह गौरव की बात है। कि भारत ही ऐसा एकमात्र देश है जिसकी पांच भाषाएं विश्व की 16 प्रमुख भाषाओं में सम्मिलित होते हुए भी भारत सरकार की उपेक्षा कारण अभी तक संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक 6 भाषा में शामिल नहीं हो पाई है। ।उसमें अपना नाम जुड़वाने का गौरव प्राप्त नहीं कर सकी है। यह शोध का विषय है कि 120 करोड़ से अधिक आम जनों का देश हमारी हिंदी भाषा को संयुक्त राष्ट्र संघ में स्थापित नहीं कर पाया है। इसके विपरीत क्रमशः 20, या 21, करोड लोगों द्वारा बोली जाने वाली रूसी ,अरबी भाषाओं का वैश्विक स्तर पर स्थापित होना निश्चित रूप से हमारे लिए लज्जा का विषय है। हिंदी भाषा विश्व पटल पर नवीन क्षेत्र के सामान अंकित हो रही है। आंकड़ों की बात करें तो यहां तक बताया जाता है कि बोलने वाले की संख्या के आधार पर चीनी के बाद विश्व के सबसे बड़ी भाषा हिंदी ही है। हिंदी विश्व के 73 देश में स्थान बना चुकी है ।भारत के प्राय सभी विश्वविद्यालय में हिंदी पढ़ाई जाती है ।इसके लाभ विश्व के 100 देश विश्वविद्यालय में भी हिंदी का अध्ययन अध्यापन होता है ।विश्व में जहां भी भारतीय मूल के निवासी है,भारत से बाहर भी हिंदी भाषा भारत के सामाजिक संस्कृति की भाषा बनी हुई है। उन देशों में हिंदी का प्रचार प्रसार आशातीत है। अकेले अमेरिका में लगभग 200 से ज्यादा शैक्षणिक संस्थानों में हिंदी का पैटर्न हो रहा है ।आज हम 21 वी सदी में वैश्वीकरण के दबाव को चलते विश्व के तमाम संस्कृति एवं भाषा के आदान-प्रदान और संवाद की प्रक्रिया से गुजर रहे हैं। हिंदी को विश्व मानचित्र पर अपनी विराटता के साथ विराजमान करवाने के लिए कई सरकारी,गैर सरकारी ,भारतीय प्रवासी ,भारतीयों के संस्थाएं एवं संस्थाएं शिक्षा अपना सहयोग दे रही है ।हिंदी आज भारत में ही नहीं विश्व के विराट फलक पर अपने अस्तित्व को आकर दे रही है ।आज वैश्विक स्तर पर सिद्ध हो चुका है कि हिंदी भाषा में लिपि और ध्वनि उच्चारण से सबसे शुद्ध और विज्ञान संबंध भाषा है ।देवनागरी एक वैज्ञानिक लिपि है। भारतीय भाषाओं, विश्वविद्यालय भाषाओं की तुलना में वाक्य विज्ञान ,ध्वनि विज्ञान, रैखिक दृष्टि से अधिक से अधिक सुसंयोजित है ।यह सत्य है कि हिंदी भाषा में अब ज्ञान विज्ञान से संबंधित विषयों पर भी उच्च स्तरीय सामग्री भी प्रकाशित हो रही है । हिन्दी के विकास की दिशा में सराहनीय प्रयास हो रहे हैं। यह हिंदी के बढ़ते वैश्विक स्तर का ही परिणाम है ,कि आज विश्व में सबसे ज्यादा पढ़े जाने वाले समाचार पत्रों में आधे से अधिक हिंदी के ही है।

शोध सार:_

हिंदी में अंग्रेजी पर बहस तो जारी है कई बार इस बात की आशंका जताई गई है ,की अंग्रेजी हिंदी को कम कर रही है.।लेकिन अंग्रेजी ने हिंदी में अपने पैर पसारे हैं। आज इंटरनेट मोबाइल पर हिंदी की खासी उपस्थिति है। अंतरराष्ट्रीय बाजार की नजर इस भाषा की संभावनाओं पर है ।आज जहां कई राज्यों में हिंदी को स्थानीय भाषा के अस्तित्व के रूप में खतरा माना जाता है ।आज की पीढ़ी को यह जानकर हैरानी होगी कि महात्मा गांधी ने जब हिंदी को राष्ट्रभाषा के तौर पर स्वीकार जाने के लिए पहल शुरू की थी। तब उन्होंने इस बात का ध्यान रखा है कि

हिंदी दक्षिण के राज्यों में भी समझी बोली जाती है ।भारत का इतिहास हिंदी साहित्य के साथ पौराणिक साहित्य आदि में उपलब्ध है। आज हिंदी पहले से प्रासंगिक होने के साथ ज्यादा प्रभावित होती दिख रही है। तथ्य आधार पर हिंदी विश्व भाषा है क्योंकि उसके बोलने समझने वालों की संख्या संसार में तीसरी है। विश्व के 132 देश में ज्यादा से भारतीय मूल के लगभग 2 करोड़ से अधिक लोग हिंदी माध्यम से अपना कार्य निष्पादित करते हैं ।एशियाई संस्कृती में अपनी विशिष्ट भूमिका कारण हिंदी एशियाई भाषाओं में अधिक एशिया की प्रतिनिधि भाषा है। आज विश्व में लगभग 7000 भाषा किसी ने किसी रूप में बोली और समझी जाती है। लेकिन आने वाले समय में 90% से अधिक भाषा का अस्तित्व खतरे में है भाषाओं के इस विलुप्तीकरण के दौर में हिंदी अपने को न केवल बचाने में सफल हो रही है ,बल्कि इसका उपयोग अनुप्रयोग निरंतर बढ़ता जा रहा है .आज के वैश्विक फलक पर हिंदी स्वयं को एक सशक्त संपर्क भाषा, प्रचार भाषा, राजभाषा के साथ-साथ वैश्विक भाषा के रूप में स्वयं को स्थापित करती जा रही है ।भारत में यह संभवत एक एकीकृत भाषा बनी रहेगी ।जो विविध भाषा समाज भूमि के लोगों को आपस में जोड़ने का कार्य करेगी ।आने वाले समय में हिंदी का उज्जवल भविष्य भारत में स्पष्ट दिखाई दे रहा है।***संदर्भ* :**_____

1. स्त्री चिन्तन की चुनौतियां _रेखा सेठी।
2. अखिलेश कुमार शर्मा आलेख।
3. ब्रजेश कुमार दिवेदी आलेख।
4. इंटरनेट लेख, विकिपीडिया।

हिंदी पत्रकारिता : चिंतन और चुनौतियां

डॉ. मिर्झा अनिस बेग रज्जाक बेग
सहयोगी प्राध्यापक एवं हिन्दी विभाग अध्यक्ष, महिला कला महाविद्यालय, औरंगाबाद
मो. ७६७२३८८८५०

कलम एक ऐसी तलवार है, जिसके माध्यम से लेखक किसी के शोर्य का बखान भी कर सकता है और चाहे तो किसी के अहंकार को कुचल सकता है। पत्रकारिता इसी तलवार को चलाने का धरातल देती है। जब देश गुलाम था तो अपने लेखन के माध्यम से ही देशभक्ति की भावना जाग्रत की गई। गांधीजी के समाचार-पत्र 'यंग जर्नल' और 'हरिजन' ने मुख्यधारा से टूटे हुए लोगों को आजादी की लड़ाई से जोड़ा और सम्पूर्ण देश को यह बताया कि हम गुलाम है और आजाद रहना हमारा अधिकार है। प्रेमचंद ने भी अपने समाचार पत्र 'हंस' से लोगों को इस तरह जागरूक किया कि वे देश की हर समस्या के लिए संवेदनशील बन गए। उन्होंने आम लोगों के मर्म पर चोट की। और उन्हें देश के वर्तमान गुलाम परिवेश से परिचित करवाया। पत्रकारिता को लोकतन्त्र का चौथा स्तम्भ भी कहा जाता है। पत्रकारिता ने लोकतन्त्र में यह महत्त्वपूर्ण स्थान अपने आप नहीं प्राप्त किया है बल्कि सामाजिक सरोकारों के प्रति पत्रकारिता के दायित्वों के महत्त्व को देखते हुए समाज ने ही दर्जा दिया है। कोई भी लोकतन्त्र तभी सशक्त है जब पत्रकारिता सामाजिक सरोकारों के प्रति अपनी सार्थक भूमिका निभाती रहे। सार्थक पत्रकारिता का उद्देश्य ही यह होना चाहिए कि वह प्रशासन और समाज के बीच एक महत्त्वपूर्ण कड़ी की भूमिका अपनाये।

इण्टरनेट और सूचना के आधिकार ने आज की पत्रकारिता को बहुआयामी और अनन्त बना दिया है। आज कोई भी जानकारी पलक झपकते उपलब्ध की और कराई जा सकती है। मीडिया आज बहुत सशक्त, स्वतन्त्र और प्रभावकारी हो गया है। संचार क्रान्ति तथा सूचना के आधिकार के अलावा आर्थिक उदारीकरण ने पत्रकारिता के चेहरे को पूरी तरह बदलकर रख दिया है। विज्ञापनों से होनेवाली अथाह कमाई ने पत्रकारिता को काफी हद्द तक व्यावसायिक बना दिया है। मीडिया का लक्ष्य आज आधिक से आधिक कमाई का हो चला है। मीडिया के इसी व्यावसायिक दृष्टिकोण का नतीजा है कि उसका ध्यान सामाजिक सरोकारों से कहीं भटक गया है। मुद्दों पर आधारित पत्रकारिता के बजाय आज इन्फोटेमेंट ही मीडिया की सुर्खियों में रहता है। पत्रकारिता की पहुँच और आभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता का व्यापक इस्तेमाल आमतौर पर सामाजिक सरोकारों और भलाई से ही जुड़ा है, किनतु आज इसका दुरपयोग भी होने लगा है। वर्तमान में पत्रकारिता की स्थिति को समझना होगा। पत्रकारिता कितना महत्वपूर्ण है। किस तरह से सत्य का उद्घाटन किया जा सकता है, समस्या का समाधान प्रस्तुत किया जा सकता है। पत्रकारिता पर वर्तमान में नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है और वह अवगुणों को नहीं रोक पा रही है।

आज की पत्रकारिता पर बाजार और व्यवसाय का दबाव बढ़ गया है। जिस कारण लोगों को जागरूक करने की अपनी आधारशिला से ही मीडिया भटक चुकी है और पेड न्यूज का रूप भव्यता से उभर कर आया है। मीडिया में 'पेड न्यूज' का बढ़ता चलन देश एवं समाज के लिए ही नहीं अपितु पत्रकारिता के लिए भी घातक है। 'पेड न्यूज' कोई बीमारी नहीं बल्कि बीमारी का लक्षण है। इसका मूल कहीं और है। इस दिशा में सकारात्मक रुप से सोचने की आवश्यकता है। मीडिया समाज का एक प्रभावशाली अंग बन गया है लेकिन आज इस आधारस्तंभ पर पूंजीपतियों का प्रभाव बढ़ता जा रहा है, जो देश एवं समाज के लिए घातक है। आज की मीडिया समाज को इस कदर प्रभावित कर चुकी है कि वह चाहे किसी को भी राजा और रंक की श्रेणी में खड़ी कर सकती है। बदलते युग और परिवेश के साथ मीडिया में बहुत बदलाव आया है। चाहे प्रिंट मीडिया की बात करें या अन्य माध्यमों की, आज हर जगह पत्रकारिता में आदर्शवादी सांस्कृतिक मूल्यों के स्थान पर व्यावसायिकता प्रमुख हो गयी है, जिसके कारण सच्ची पत्रकारिता अपना अस्तित्व खोती जा रही है और उसमें इतना बनावटीपन आ गया है कि आम आदमी बजाय सच्ची पत्रकारिता को समझने के, उसकी भूलभूलैया में ऐसा खो जाता है कि वह समझ नहीं पाता कि वह उसे विश्वसनीय समझे या फिर मनोरंजन का साधन मान कर एक कान से सुन कर दूसरे कान

से बाहर निकाल फेंके। आज का मीडिया आम आदमी के बारे में नहीं अपितु, आर्थिक बढ़त के बारे में ज्यादा प्रचार का साधन मात्र रह गया है।[१]

वर्तमान समय में लोकतंत्र का चौथा खंभा पूरी तरह जर्मींदोज नजर आ रहा है। एक वह समय था जब कोई मंत्री या सरकार किसी पत्रकार की तारीफ गलती से भी कर दिया तो उस पत्रकार की नौकरी जाना तय माना जाता था। मगर आज स्थिति उलट गई है, सत्ता की चाटुकारिता करने वाले अखबार और मीडिया घराने के मालिक अपने निर्भिक पत्रकारों को अखबार और चौनलों से बेदखल कर रहे। संपादक जब से अखबार के मैनेजर बनाये जाने लगे, सत्ता की चाटूकारिता की होड़ मच गई। मीडिया घराना धन-लिप्सा में लग गये तो पत्रकार भी कहाँ पीछे रहने वाले थे। अपनी सारी मर्यादा तोड़ कोठियां और फार्महाउस खड़ा करने में पत्रकारिता को जर्मींदोज करते चले गए। बढ़-चढ़कर सरकारी-कीर्तन करने वाली पत्रकारिता के इस दौर में जिन पत्रकारों का जमीर नहीं मरा या नहीं मार पाएं वो उन्हे दरकिनार किया जा रहा है। पेड न्यूज के शुरुआती खेल ने मालिकों के मुँह में धन-दोहन का ऐसा स्वाद चखाया कि धन से धान्य भरने का यह उनका न केवल खूबसूरत जरिया बन गया, बल्कि और भी कई-कई राह खोल दिये। अखबारों से पाठकों को जोड़ उसकी बिक्री बढ़ाना अब उनके लिए जरूरी नहीं रह गया, बल्कि सरकार से विज्ञापन बटोरना मूल मकसद हो गया। सामाजिक मुद्दों से भटकाने के लिए धन के वैभव का महिमामंडन, सरकारी अभ्यर्थना, नफरत को हवा देने, जाति में तोड़ने, मजहब में बांटने, ऐतिहासिक झूठ को सच की तरह बार-बार परोसने और सच को जोर शोर से दबाने छिपाने की होड़ अखबारों और चौनलों में मच गई। इस अंधी होड़-दौड़ में पत्रकारिता गिरते-गिरते इतनी नीचे गिर गई जिसका अनुमान किसी को भी न रहा होगा।[१]

लोकतंत्र के चौथे स्तम्भ 'मीडिया' की बातें और उसकी धुंधली होती कार्यशैली पर चर्चाएं अक्सर होती ही रहती हैं। कोई इसके लिए बदलते समय को दोषी ठहराता है तो कोई अर्थ की प्रधानता को। मुश्किल यह है कि इन चर्चाओं में किसी प्रकार का लब्बो लुआब निकल कर सामने नहीं आता, जिससे इन समस्याओं का निदान हो सके। अखबार मालिक और तमाम पत्रकार बंधु इस क्षेत्र में कमाई के स्रोत निरन्तर कम होने से खुद ही परेशान रहते हैं तो दूसरी ओर पीत पत्रकारिता एवं ब्लैकमेलिंग जैसे शब्दों ने इस पेशे को बदनाम करने में कोई कोर कसर नहीं छोड़ी है। कई मित्रों से मुलाकात में इन विषयों पर चर्चा होती ही रहती है, जिसमें डीएवीपी में विज्ञापन से लेकर, बदलती तकनीक का प्रयोग तक शामिल रहता है, जिससे लोकतंत्र के इस चौथे स्तम्भ की वर्तमान में जद्दोजहद सामने आती है। इन दिनों, जब मीडिया इंडस्ट्री को सबसे तेज भागती और नित नया रूप बदलती इंडस्ट्री का तमगा दिया जा रहा है, तब यह जरूरी हो जाता है कि इस मिशनरी व्यवसाय की न केवल गंभीर पड़ताल की जाए, बल्कि उसके उन तत्वों को खंगाला जाए, जिन्होंने इसे रचने और मांजने में योगदान दिया है। जाहिर है कि अगर मीडिया के भीतर से इसकी शुरुआत हो तो सही मायनों में हम मीडिया के बदलावों, उसमें पनपती नए जमाने की फितरतों और पूंजी और मुनाफे की मुठभेड़ में कहीं खोती जा रही असल खबरों की जरूरतों के साथ-साथ पत्रकारों के लिए तैयार हो रही पगडंडियों पर बेहतर बात कर पाएंगे।[२]

हाल के दिनो में प्रकाशित पुस्तक 'मीडिया हूं मैं' इसी तरह की पड़ताल की कमी को पूरा करती नजर आती है। यह किसी से नहीं छिपा है कि नया होता मीडिया अपने नए-नए उपक्रमों के सहारे तेजी से विस्तार ले रहा है। इंटरनेट ने मीडिया के कई खांचों को पूरी तरह बदल दिया है। संपादक नाम की संस्था अब असंपादित टिप्पणियों वाले आभासी साम्राज्य के आगे बेबस-सी है। सोशल मीडिया के नाम से अगर लोगों को वैकल्पिक माध्यम मिला है तो मोबाइल जैसे टूल ने नागरिक पत्रकारों और नागरिक पत्रकारिता जैसे नए आयाम हमारे सामने प्रस्तुत कर दिए हैं। फेसबुक और ट्विटर ने मीडिया के मायनों को फिर से परिभाषित करने पर मजबूर किया है।

जाहिर है कि समय बदला है और जरूरतें भी। ऐसे में वरिष्ठ पत्रकार जयप्रकाश त्रिपाठी की पुस्तक 'मीडिया हूं मैं' की कहानी को मीडिया की ही जुबानी सुनाने का प्रयास करती है। छह सौ से अधिक पृष्ठों वाली इस पुस्तक में श्री त्रिपाठी ने पत्रकारिता के अपने अनुभवों के साथ साथ कई अन्य नामचीन पत्रकारों के विचारों को भी संकलित करके प्रस्तुत किया है। मीडिया में अपना भविष्य खोज रहे युवाओं के लिए भी ढेर सारी ऐसी जरूरी जानकारियां इस पुस्तक में हैं, जो एक साथ किसी एक किताब में आज तक उपलब्ध नहीं हो सकी हैं।[३]

मीडिया के बनने और फिर नए रास्तों पर चलकर नई-नई मंजिलें पाने तक की रोचक यात्रा की झलकियां तथ्यतः इस पुस्तक में पढ़ने को मिलती हैं। पत्रकारिता का श्वेतपत्र, मीडिया का इतिहास, मीडिया और

न्यू मीडिया, मीडिया और अर्थशास्त्र, मीडिया और राज्य, मीडिया और समाज, मीडिया और कानून, मीडिया और गांव, मीडिया और स्त्री, मीडिया और साहित्य जैसे अध्यायों से गुजरते हुए लेखक के अनुभवों के सहारे इस पुस्तक में बहुत-कुछ जानने को मिलता है।

इन अध्यायों में जिस तरह समय के अनुरूप विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है, वह अंतरविषयक जरूरतों को तो पूरा करता ही है, मीडिया के साथ विषय-वैविध्यपूर्ण रिश्तों की आवश्यक पड़ताल भी करता है। लेखक ने अपनी बात को स्थापित करने के लिए जिस तरह अन्य पत्रकारों के उद्धरणों का सहारा लिया है, वह भी सराहनीय है। पहले-पहल तो पुस्तक किसी लिक्खाड़ की आत्मकथा-सी लगती है, लेकिन धीरे-धीरे पृष्ठ-दर-पृष्ठ यह एक ऐसे दस्तावेज की तरह खुलने लगती है, जिसमें विरासत की पड़ताल के साथ-साथ अपने समय और मिशन के साथ चलने की जिद की गूंज सुनाई देने लगती है। लेखक की पंक्तियों पर गौर करें तो वे मीडिया की बदलती तस्वीर से उसी तरह परेशान लगते हैं, जिस तरह समाज की विद्रूपता से हम सब।

मीडिया को लेकर लेखक की गंभीरता इन शब्दों में साफ झलकती है - 'मैं सिर्फ पढ़ने के लिए नहीं, लड़ने के लिए भी। मनुष्यता जिसका पक्ष है, उसके लिए। जो हाशिये पर हैं, उनका पक्ष हूं मैं। उजले दांत की हंसी नहीं, मीडिया हूं मैं। सूचनाओं की तिजारत और जन के सपनों की लूट के विरुद्ध। जन के मन में जिंदा रहने के लिए पढ़ना मुझे बार-बार। मेरे साथ आते हुए अपनी कलम, अपने सपनों के साथ। अपने समय से जिरह करती बात बोलेगी। भेद खोलेगी बात ही।...' तय है कि यह पुस्तक नये पत्रकारों और पत्रकारिता के प्रशिक्षुओं के साथ-साथ मीडिया को समझने की ललक रखने वालों से बेहतर संवाद करने और उन्हें कुछ नया बताने-सिखाने में सफल होगी।[४]

व्यावसायिकता के कारण हिन्दी पत्रकारिता पुनर्जीवित तो हो गई है और इसने अपनी जिजीविषा भी साबित कर दी है। किन्तु इसने अपनी जीवटता एवं अमरता खो दी है। हिन्दी पत्रकारिता आज श्रध्दा और आदर के स्थान पर लाभ - हानि का माध्यम बनकर रह चुकी है। इस पत्रकारिता से आज भी लोग भयभीत तो रहते हैं किन्तु सम्मान और आदर के स्थान पर व्यावसायिक दबाव के चलते इसको आत्मसात करना पड़ता है। आज पत्रकारिता का आलोचनात्मक पक्ष भी दुर्बल होता जा रहा है। यहाँ तक कि उसकी समीक्षा का स्तर भी गिरता जा रहा है। इसी के कारण न केवल पत्रकारिता बल्कि पत्रकार एवं सम्पादकों तक की गरिमा में गिरावट आ गयी है। आज या तो पत्रकार उस प्रकार की आलोचना या समीक्षा से बचना चाहता है अथवा फिर उनकी आलोचना और समीक्षा का स्तर गिरता जा रहा है।

संदर्भ -

१. मीडिया की बदलती भाषा -लेखक : डह्. अजय कुमार सिंह प्रकाशक : लोकभारती प्रकाशन
१. ग्लोबल मीडिया और हिंदी पत्रकारिता- लेखकः डह्. हरीश अरोड़ा
२. हिंदी पत्रकारिता का बदलता स्वरूप- लेखकः डह्. अर्चना मेहता
३. मीडिया हूं मैं -लेखकः जयप्रकाश त्रिपाठी प्रकाशकः अमन प्रकाशन, कानपुर
४. हिन्दी पत्रकारिता का नया स्वरूप- लेखकः बच्चन सिंह प्रकाशकः साहित्य संचय

बदलते परिवेश में हिन्दी पत्रकारिता : चुनौतियाँ तथा समाधान

प्रा. मजहर एम. कोतवाल

आझाद महाविद्यालय. औसा. जी. लातुर

Mob.no. 8180904399e.mail:Mazharkotwal123@mail.com

स्वाधीनता से पूर्व पत्रकारिता का स्वरूप सीमित था, साधन सीमित थे लेकिन आदर्श बड़े थे। आज पत्रकारिता के साधन और स्वरूप असीमित हैं लेकिन आदर्श अस्पष्ट। पत्रकारिता में हुए निरंतर विकास एवं स्पर्धा ने पत्रकारिता को एक व्यवसाय बना दिया है। आज़ादी से पूर्व पत्रकारिता का मिशन था गुलामी से मुक्ति। अधिकांश पत्र, पत्रकार इसी पावन उद्देश्य को लेकर पत्रकारिता से जुड़े थे। देश को आजाद कराने में पत्रकारिता के योगदान को नकारना असंभव है। आज आज़ादी के पांच दशक बीत जाने के बाद भी पत्रकारिता को अन्य बातों के साथ पुनः एक लक्ष्य सामने रखना है, और वह है, देश को मिली आज़ादी की नींव को मजबूत करने में योगदान देना, राष्ट्र-निर्माण तथा राष्ट्रीय एकता को बनाये रखने के साथ-साथ देश की अखण्डता को बचाए रखना। पत्रकारिता के लिए केवल बुद्धिगत प्रौढ़ता ही नहीं, चरित्रगत दृढ़ता भी आवश्यक है, जिसे किसी भी पुस्तक से या शिक्षण संस्थान द्वारा पढ़ाया नहीं जा सकता।

मनुष्य के जीवन में प्रारंभ से लेकर आज तक पत्रकारिता का बड़ा महत्त्व रहा है। भारतीय पत्रकार अपनी देशभक्ति, निष्ठा, लगन, परिश्रम एवं अपूर्व त्याग के लिए विख्यात रहे हैं। प्रारंभ में स्वाधीनता के लिए संघर्ष एवं राष्ट्रीयता के लिए प्रचार करना ही उनका कर्त्तव्य था। पत्रकारिता अपने ऊँचे आदर्शों का पालन प्रारंभ से ही करती आ रही है। प्रारंभिक पत्रकारिता के पत्रकारों के आदर्श महान् थे और साधन सीमित। पत्रकारिता के लिए अनेक पत्रकारों ने कष्ट एवं यातनाओं को सहते रहने के बावजूद अपने हौसले बुलंद रखे एवं अपने कर्त्तव्य से डिगे नहीं। सदैव ऊँचे मानदण्डों को अपनाकर पत्रकारिता निरन्तर बढ़ती रही। आधुनिक समय में जबकि पत्रकार-कला का पूर्ण विकास हो गया है तो क्या आज हम पत्रकारिता एवं पत्रकारों से संतुष्ट हैं। आइए, आपको उस समय के पत्रकारों के बारे में संक्षेप में बताया जाए जब मुद्रण-कला का विकास भी नहीं हुआ था एवं बिजली जैसी सुविधाएं भी उपलब्ध नहीं थीं। फिर भी उन्होंने अपने आदर्शों के लिए पत्रकारिता अपनाई। धन कमाना एवं नाम कमाना उनका मकसद नहीं था। ऐसे कई उदाहरण मिलते हैं जब दीपक की मंद रोशनी में रात-रात भर वे लिखते और सुबह घर-घर जाकर उन लिखे पत्रों को बांटते। निरंतर काम करते-करते उनकी आंखों की रोशनी जाती रही लेकिन वे अपनी कलम को मजबूती से थामे रहे। आचार्य देवीदत्त शुक्ल, बाबू राव विष्णु राव पराइकर, गणेश शंकर विद्यार्थी, अम्बिका प्रसाद वाजपेयी, पं. जुगल किशोर शुक्ल एवं शिव पूजन सहाय का नाम इस संदर्भ में विशेष रूप से लिया जा सकता है।

आज़ादी के बाद की पत्रकारिता के सामने कोई विशेष मुद्दा नहीं था। देश आज़ाद हो गया था। विधवा विवाह, बाल विवाह, शादी की उम्र क्या हो, सती प्रथा का विरोध-प्रदर्शन जैसे मुद्दों पर काफी लिखा जा चुका था और लिखना सार्थक भी रहा था। देश के नव-निर्माण एवं भविष्य की रूपरेखा पर फिलहाल कुछ था ही नहीं फलतः अखबार सुस्त पड़ते गये। उनके पास एक ही विषय था, उस समय की सरकार और सरकारी नीतियां। अखबार कब तक एक ही विषय पर लिखते? संपादकीय में यह प्रश्न बार-बार पूछे जाते कि उसकी

भूमिका क्या है? न कोई भूमिका थी न तड़प। सरकार ही खबरों का मुख्य स्रोत थी। धीरे-धीरे सामाजिक सरोकार की पत्रकारिता लुप्त हो गई, केवल राजनीतिक मुद्दे ही रह गये। जब कभी राजनीतिक विषयों का अभाव होता तो अखबार दूसरी खबरों पर गौर करते। पहले की पत्रकारिता उद्देश्यपूर्ण थी, उसका ध्येय पैसा कमाना ही नही था। आज की पत्रकारिता का उद्देश्य अधिक से अधिक अखबार बेचना है। इसके लिए चाहे उन्हें कुछ भी करना पड़े। ऐसा नहीं कि आज से पहले कभी ऐसा नहीं हुआ है लेकिन तब मुख्य ध्येय पत्रकारिता ही थी। ऐसे उदाहरण बहुत कम हैं, जब पत्रकारों/संपादकों/मालिकों ने अधिक से अधिक अखबार बेचने के लिए नुस्खे न अपनाये हों। आज की पत्रकारिता बहुआयामी है। समाज की आवश्यकता के अनुरूप इसके विविध नूतन-रूप विकसित हो रहे हैं। अनुसंधानात्मक या खोजी पत्रकारिता, विकास पत्रकारिता, वाणिज्य पत्रकारिता, फिल्म पत्रकारिता, आर्थिक पत्रकारिता, फोटो पत्रकारिता, सन्दर्भ पत्रकारिता, स्वास्थ्य पत्रकारिता, विज्ञान पत्रकारिता, रेडियो पत्रकारिता, संसदीय पत्रकारिता और दूरदर्शन पत्रकारिता आदि इसके नूतन सन्दर्भ हैं।

वर्तमान समय में पत्रकारिता के समक्ष तमाम चुनौतियां भी मुँह बाये सदैव खड़ी रहती है। सत्य की पैनी धार पर चलने वाले पत्रकार आज आँख की किरकिरी बनते जा रहे हैं। यहां तक कि कड़वा व सच्चा लिखने वाले पत्रकारों को कभी-कभी यमलोक भी भेज दिया जाता है। इसके अतिरिक्त राजनैतिक दबाव, धन की कमी, भौतिकवादी दृष्टिकोण, तरह-तरह के प्रलोभन, वेतन की अस्पष्ट नीति, शोषण, निरुद्देश्यता आदि अनेक ऐसे संकट हैं, जिनसे हिन्दी पत्रकारिता जूझ रही है।

जैसे-जैसे राजनीति में मूल्य-क्षरण होना आरंभ हुआ, वैसे-वैसे पत्रकारिता दुरूह होती जा रही है। आज राजनीति में एक दूसरे पर कीचड़ उछालना तो आम बात है। कब कौन किसकी बखिया उधेड़ डालेगा कोई नहीं जानता? व्यक्तिगत आरोपों-प्रत्यारोपों के इस युग में धिक्कार रैली, पर्दाफाश रैली, हल्ला बोल, साइकिल रैली, लाठी रैली, हुक्का रैली की रेलमपेल मची हुई है। कोई आदर्श नहीं, कोई शर्म नहीं, कोई लिहाज नहीं, कोई मर्यादा नहीं, कोई परहेज नहीं। ऐसे में पत्रकार भी दबाव महसूस कर सत्योद्घाटन से बचने लगे हैं। हिन्दी पत्र एवं पत्रिकाओं के सामने पैसे की कमी एक बड़ी चुनौती है। साहित्यिक हिन्दी पत्रिकाएँ सिसक-सिसक कर चल रही हैं। मैं स्वयं भी ऐसे कई संपादकों को जानता हूँ, जिन्होंने अपने घर की पूंजी लगाकर भी एक बार आरंभ हुई पत्रिका को केवल इसलिए जीवित रखा है कि वे इसे अपनी प्रतिष्ठा से जोड़े हुए हैं। हिन्दी का अखबार निकालना किसी भगीरथ प्रयत्न से कम थोड़े ही है। आपको न तो विज्ञापन मिलेंगे और न बिना चमचागिरी के अखबारी कागज का कोटा।

जब समाज का प्रत्येक वर्ग ऐशो-आराम की ज़िंदगी बिता रहा है, तो ऐसे में पत्रकार ही फटीचर क्यों बना रहे? आखिर उसे भी तो इसी समाज में रहना है। वैभव उसे भी तो आकर्षित करता है। उसका भी तो मन करता है कि कार में घूमे, क्लब ज्वाइन करे। मँहगे कपड़े पहने, जहाज में उड़े, कीमती सिगरेट पिए, मोबाइल पर बात करे। इसलिए जब कभी उसकी लेखनी को खरीदने की कोशिश की जाती है तो वह सहर्ष इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लेता है। कई मुख्यमंत्री, प्रधानमंत्री, राज्यपालों ने पत्रकारों को अपने पक्ष में करने के लिए अपने विवेकाधीन कोष का जमकर दुरुपयोग किया भी है। उद्योगपति, अधिकारी वर्ग तो इन्हें चांदी के सिक्कों में तौलता ही रहता है। पेट भरने के लिए अन्न आवश्यक है और अन्न की पूर्ति के लिए धन। कई नामी-गिरामी संपादकों ने बहुत कम वेतन पर अपने पत्रकारों का शोषण करने में ही अपना व अखबार का हित समझ रखा है। परिवार के उचित पालन-पोषण के लिए यदि पत्रकार किन्हीं अन्य स्रोतों से धन पैदा कर रहा है तो इसमें अप्रिय क्या है? क्या वह जीवन-भर तपस्या ही करता रहे?

एक और नया ट्रेण्ड इन दिनों पत्रकारिता के लिए खतरा बना हुआ है। जिसे लम्बी प्रतीक्षा के बाद भी कोई रोजगार नहीं मिलता, वह पत्रकार बन जाता है। अपने निजी वाहनों पर 'प्रेस' का बोर्ड लगाकर सवारियाँ ढोते हर शहर में हम देख सकते हैं। यह भी तो पत्रकारिता का दोहन ही है।

अंत में कहा जा सकता है कि कुछ आवश्यक कदम उठाकर, जैसे-वेतन एवं सेवा-शर्तों में सुधार, पर्याप्त कोष की व्यवस्था, पीत-पत्रकारिता से परहेज, पर्याप्त सुरक्षा का आश्वासन आदि के द्वारा हम पुरातन आदर्शों को पुनः प्राप्त कर सकते हैं क्योंकि पत्रकार को लेखन में ही नहीं बल्कि जीवन में भी संयम का पालन करना आवश्यक होता है। श्रेष्ठ पत्रकार होना किसी भी अन्य पेशे से कम महत्त्वपूर्ण नहीं होता। आत्मालोचन के लिए निम्नांकित दोहा बड़े काम का है-

बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय ।
जो दिल खोजा आपना, मुझसा बुरा न कोय ।।

-कबीर

सन्दर्भ :

1. आधुनिक जनसंचार और हिन्दी- प्रो. हरिमोहन
2. हिन्दी पत्रकारिता के सिद्धांत और स्वरूप , लेखक-सविता चड्ढा
3. हिन्दी विज्ञान पत्रकारिता, लेखक मनोज कुमार पटैरिया
4. नयी पत्रकारिता और समाचार लेखन सविता चड्ढा
5.भारतीय मीडिया अंतरंग पहचान, सं. डॉ. स्मिता मिश्र, पृ. 98
6. पत्रकारिता, जनसंचार एवं जनसम्पर्क, प्रो. सूर्यप्रसाद दीक्षित, पृ. 168
7. पत्रकारिता की विभिन्न विधाएं, डॉ. निशान्त सिंह, पृ. 163

हिंदी काव्य साहित्य चिंतन और चुनौतियां (राजनीतिक परिस्थितियों के संदर्भ में)

डॉ.रमेश शिवाजी बोबडे

(हिंदी विभाग) श्रीमंत भैय्यासाहेब राजेमाने महाविद्यालय म्हसवड, ता.माण,जि.सातारा, पिन-415509

rameshbobade37@gmail.com मो.नं.8080683049

प्रस्तावना:-

आज प्रतिकूल परिस्थितियों को अनुकूल बनाने की चुनौती साहित्यकारों के समक्ष है। भारतीय साहित्य में इतिहास, दर्शन और परंपरा का संगम होता है। लेकिन आज के साहित्य में यह संगम सिकुड़ता जा रहा है। समकालिन साहित्य के सामने और खतरा है, अभिव्यक्ति का खतरा । गंभीरता और जिम्मेदारी पर आज प्रश्न चिन्ह लग रहा है क्योंकि सही मायने में साहित्य के अंतर्गत लोकतंत्र का विस्तार नहीं हो रहा है। समाजों को केंद्र में लाना भी आज के साहित्य के समक्ष चुनौती का कार्य है। सौंदर्य और प्रेम साहित्य के बुनियाद है, जब तक उसके स्त्रोत तक नहीं पहुँचेंगे तब तक सिर्फ प्रवृत्ति के आगे चक्कर लगाते ही रहेंगे। साहित्य हाथ छुडाने - का काम नहीं बल्कि हाथ थामने का काम करता है। कविता के समक्ष कुछ शाश्वत चुनौतियाँ है- विषय चयन से लेकर भाषा, पढनीयता और संप्रेषण तक। मनुष्य का धर्म ममता को बचाना है, व्यक्ती को जागरूक बनाना है। कवि को अपने समय से दो चार होते हुए चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। कविता को लोकमंगल, लोकरक्षण की भूमिका निभाने लिए नए रास्तों को अपनाना होगा। समाज को टुकड़ों में बांटने वाली कविता नहीं चाहिए जबकि जोड़ने वाली कविता चाहिए। जीवन की जो भी चुनौतियाँ होगी वे सभी कविता की चुनौतियाँ होगी। भारत मौर विदेश में मूलभूत अंतर है। विदेश में संस्कृति, धर्म और दर्शन जीवन के हिस्सा है। लेकिन भारत में धर्म व्यापक है। संस्कृति, समाज और दर्शन सभी धर्म के हिस्से है। जीवन में जो आवरण होता है वह कहीं ना कही धर्म से जुडा हुआ होता है। अत: भारतीय साहित्य और कविता को इस दृष्टि से समझना अनिवार्य है।

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के काव्य में चिंतन और चुनौतियाँ

राजनीतिक चेतना:-

स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ ही हमारे मन में सुखद भविष्य की जो प्रतिक्षा थी वह आकाश में उड गयी है यह चिंतन का विषय है। हमारी वर्तमान राजनिती आज बहुत भ्रष्ट हो चुकी है। पार्टीओं की संख्या प्रतिदिन बढ़ती जा रही है यह एक चुनौतियां है। कवि कहता है, अड्डे पर चिल्लाते कुल्ली औंर मंचपर भाषण देनेवाला नेता में कोई अंतर नहीं है। सत्ताधारियों मे गांधीजी के आदर्श को धूल मे फेंका है। इस विचारों को सूचित के लिए कवि ने कहा गया है-

"अच्छा हुए,
तुम चले गए
अन्यथा तुम्बरे मन का
यह जननायक क्या करता पता नहीं।"

सर्वेश्वर के दृष्टि से हमारे देश के सत्ताधारियों से कहीं अच्छे थे जो बरमुंडो की मालाएं बनकर अपने शौर्य पर इतराते थे लोग क्योकि कम से कम बन्धुत्व और करुणा के गीत तो वे नहीं गाते थे। लोकतंत्र में जो विश्वास पहले थे, वह गए आज के नेता समाजवाद और समानता के आकर्षक नारे लगते है। लेकिन उनका एकमात्र भाज लक्ष वोट

पाना है। नेताओं के गिरमिटी स्वभाव पर बात हे सर्वेश्वर ले हमारी वर्तमान राजनीति के एक भ्रष्ट अंश का पर्दाफाश किया गया है जैसे-

"कुछ सीखो गिरगिट में
जैसी शाख वैसा रंग
जीने का यही है सही ढंग
अपना रंग दूसरों से अलग पड़ता है तो, उसे रगड धो लो।

इस सबको देखकर कवि को ऐसा लगा की हमारी स्वतंत्रता वरदान नहीं अभिशाप है। जो सुख बिना चाहे लाट दिया जाए यह संताप है। सर्वेश्वर ने युग पुरूषों को श्रध्दांजली अर्पित की है, यह एक चुनौतियां है। इतिहास युग पुरुषों का यथाविधी सम्मान नहीं किया इसपर कवि दुखी दिखाई पड़ता है।

शिक्षा पर विचार :

वर्तमान शिक्षा प्रणाली में शिक्षा का लक्ष्य ज्ञान का अर्जन करना नही ऊंचे अंक प्राप्त करना है। 'पड़ी गयी मूर्तियां' कविता में सर्वेश्वर ने संकेत किया है अंग्रेजियत में डूबी युवा पीढी से कवि ने कहा की एक गलत भाषा में "बयान देने से मर जाना बेहतर है।"

सांस्कृतिक चेतना :-

वर्तमान समाज मे अपने सांस्कृतिक आदशों को भुला रहा है चारों और भ्रष्टाचार बढ़ाया है। हमारी सभ्यता बहुत चालाकी से आदमी गुफाओं में बन्द कर देती है। देश के नक्शे का बदबुदार पैशाब कैली हुई है। वैवाहिक जीवन की पवित्रता नष्ट हो रही है। विवाह को आज बन्धन प्रेम के बीच तनाव की स्थिती है। यह पश्चात देश के अनुकरण का परिणाम है। विदेशीपण के विरोधी सर्वेश्वर ने इस बातों पर कहा गया है कि, -

जिस्म तो अपना है, कपडे भी अपने है,
क्या जरुरी बात है, उद्देश तो केवल
चाहिए होना आधुनिक देखिए लगा हूँ न ठीक।"

प्रगति के नाम पर विदेशों का केवल अनुकरण करना प्रगति नही है। स्वावलंबी बनना सच्ची प्रगती है। वर्तमान को प्रावदान बनाने के लिए हमको आपने अतीत की ओर देखना चाहिए। क्योंकि हमारे समाज में आदमी यहा तक मनुष्यत्व हीन हो गया है की यहाँ किसी का होना या न होना कोई मतलब नहीं रखता है। इस मृत नगर में कविता में कवि ने इन्ही विचारों की वाणी दी है।" यह एक हमारे सामने चुनौतिया नजर आती है।

मानवतावाद :-

विज्ञान के चमत्कार से मानवता का ऱ्हास हो गया है। यह एक चिंतन की बात है, यह ध्यान में रहकर कवि ने चेतावणी दी है की-

"इस गरीब धरती के
विहत्यों आदमियो की और से कह दो,
जब सारे अस्व जबाब दे जाए,
तब उस पत्थर से
वे इन्सासियत का सिर फोडे
जिसे वे चाँद से लाए हैं।"

आज प्रार्थना घरो मे घंटे तक जंगली जानवरों तरह दुर्गन्ध सुँघते मिलते है। ईश्वर का का नाम हर कुमीने पर मखौटा बन जाता है, सर्वेश्वर मूर्ति के पूजा के विरोधी थे

" क्योंकि मैने इसमें (पत्थर में) ईश्वर को नही देखा है
और इससे कुछली मांग है,
जो शब्दों और अनुभवों से परे है।"

कवि को विश्वास था की वर्तमान युग का नेतृत्व मनुष्य करता है इसलिए उन्होने किसी देवी देवता की अपेक्षा मनुष्य को अधिक महत्व दिया। यह एक जनता के आगे चुनौतियाँ है।

आस्था का स्वर :-

सर्वेश्वर की कविताओं में भविष्य के प्रति आस्था का स्वर सुनाई पडता है।

"मिटने दो आँखो की आगे का अधियारा
पथपर पूरापूरा प्रकाश हो लेने दो।"

युग सभी प्रकार की समस्याओं से वे सदा जागरूक रहे। 'गोवरैल', 'बॉसगौव', 'अभिशाप', 'सभ्य मत बोलो', 'यह खिडकी', 'पोस्टर और आदमी', 'स्थिती यही है', आदि राजनैतिक कविताएँ है।

निष्कर्ष:-

पिछले डेढ़ सौ दो सौ सालों में हमारे परिवेश और चिंतन से बडे बदलाव आ रहे है। वैज्ञानिक क्रांती के साथ आधुनिकता की आहटें सुनाई देने से लेकर आधुनिकता और उससे जुडे विमार्शों तक की इस यात्रा ने हमे आज जिस मुकाम पर ला खडा कर दिया है यहाँ हम सामाजिक आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक और मनोवैज्ञानिक मोर्चो पर नई-नई चुनौतियों का सामना कर रहे है। राष्ट्रीय और आंतरराष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में देखे तो भी सब और काफी धुदाल का बरसता दिखाई देता है। इस धुंधलके में रचनाकार को अपनी राह तलाशने की बडी चुनौति का सामना है। कविता में राजनितीक संदर्भो का साक्षात्कार किया है। मानव की स्वार्थवृत्ती अधिकार की लोलूपता भ्रष्टाचार को कविता का विषय बनाया गया है। कविता में जीवन का असंतोष, निराशा कडवाहट का दर्शन होता है। यह एक चिंतन का विषय है। कविता भारतीय समाज में व्याप्त, जडता, विसंगति, आक्रोश, विडम्बना को पूर्ण अभिव्यक्ति देती है।

संदर्भसूची :-

1) डॉ. कृपाशंकर पांडेय, हिंदी समस्या नाटकों की शिल्पविधि, अमन प्रकाशन कानपुर, प्रथम संस्करण 2011।
2) मीना चावला, हिंदी नाटक और संगीत वर्तमान परिप्रेक्ष्य, विकास प्रकाशन कानपूर, प्रथम संस्करण 2011।
3) डॉ.करूणा उमेर, हिंदी कविता भाषा और शिल्प विविध प्रतिमान, विकास प्रकाशन, कानपूर, प्रथम संस्करण 2011।
4) डॉ.पशुपतिनाट्य उपाध्याय, हिंदी नाटक और रंगमंच, विकास प्रकाशन, कानपूर प्रथम संस्करण 2012।
5) डॉ. ममता, साठोत्तरी हिंदी नाटक और राजनीति, अमन प्रकाशन कानपुर, प्रथम संस्करण 2010।